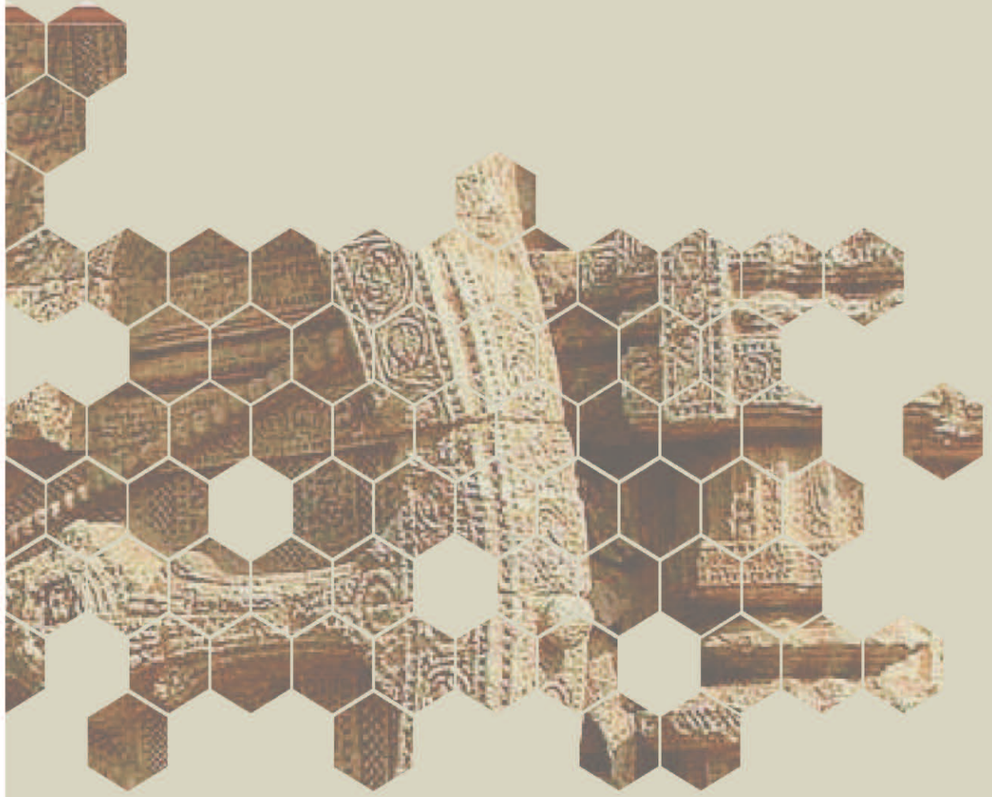

Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

Macro economics and money and Banking

Institute of **Open** and **Distance Education**

Faculty of Arts

Macro Economics and Money and Banking

3BA7

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

3BA7

Macro Economics and Money and Banking

3BA7
Macro Economics nd Money and Banking

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr Kajal Moitra, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr Mahesh Shukla, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr Reena Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr Ram Ratan sahu, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr Anju Tiwari, Dr. C.V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Sandhya Jaiswal , Dr. C. V. Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

---

Course Editor:

Dr Ramsiya Charmkar, Assistant Professor Department of Political Science Humanities and liberal arts, Rabindranath Tagore University, Bhopal, M.P.

Unit Written By:

---

1. Dr. Rakesh Kumar Gupta

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Pratima Bais

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. Dr. Suchi Sharma

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

इकाई इकाई का नाम पृष्ट संख्या

अनुक्रमणिका

ब्लॉक -I

इकाई -1 समष्टि (मैक्रो) अर्थशास्त्र 1

इकाई -2 समष्टि चर-स्टॉक एवं प्रवाह 13

इकाई -3 आय का चक्रीय प्रवाह 25

इकाई - 4 राष्ट्रीय आय की अवधारणाएँ जी.डी.पी., जी.एन.पी. 44

ब्लॉक -II

इकाई – 5 राष्ट्रीय आय की माप एवं सामाजिक लेखांकन 65

इकाई – 6 भारत में राष्ट्रीय आय की गणना 92

इकाई – 7 राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक कल्याण 112

इकाई – 8 रोजगार का प्रतिष्ठित सिद्धान्त 125

ब्लॉक -III

इकाई – 9 कींस का उत्पादन एवं रोजगार सिद्धान्त 141
(समग्र माँग-पूर्ति फलन तथा प्रभावपूर्ण माँग)

इकाई – 10 उपभोग फलन 165

इकाई – 11 सामान्य विनियोग एवं सरकारी व्यय 181

इकाई – 12 गुणक का सिद्धान्त 214

ब्लॉक -IV

इकाई – 13 बचत फलन 240

इकाई – 14 विनियोग फलन एवं पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता 264

इकाई – 15 पूँजी निर्माण 294

ब्लॉक - I

इकाई -1
समष्टि (मैक्रो) अर्थशास्त्र
(MACRO ECONOMICS)

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 समष्टि या मैक्रो अर्थशास्त्र की प्रकृति
1.4 मैक्रो अर्थशास्त्र का विकास
1.5 मैक्रो अर्थशास्त्र की विषय सामग्री
1.6 मैक्रो अर्थशास्त्र के प्रकार
1.7 माइक्रो एवं मैक्रो अर्थशास्त्र में अन्तर
1.8 मैक्रो अर्थशास्त्र का महत्व
1.9 मैक्रो अर्थशास्त्र की सीमाएँ
1.10 सार संक्षेप
1.11 मुख्य शब्द
1.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
1.13 संदर्भ सूची
1.14 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मैक्रोइकोनॉमिक्स अर्थशास्त्र की वह शाखा है, जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से अध्ययन करती है। इसमें देश की अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन, समग्र मांग और आपूर्ति, मुद्रास्फीति, बेरोजगारी, राष्ट्रीय आय, और सरकारी नीतियों का विश्लेषण किया जाता है। मैक्रोइकोनॉमिक्स का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न घटक आपस में कैसे जुड़े होते हैं और इनके आपसी संबंध किस प्रकार देश के विकास और समृद्धि को प्रभावित करते हैं।

मैक्रोइकोनॉमिक्स में प्रमुख अवधारणाएँ जैसे राष्ट्रीय आय, सरकारी खर्च, मुद्रा आपूर्ति, और ब्याज दर शामिल हैं। यह विषय राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर आर्थिक निर्णयों के प्रभावों का अध्ययन करता है। इसके माध्यम से आर्थिक नीति निर्माण में मदद मिलती है, ताकि विकास दर को बढ़ाया जा सके और आर्थिक असंतुलन को कम किया जा सके।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. आर्थिक स्थिरता और दीर्घकालिक विकास को बढ़ाने के उपाय कर सकेंगे।
4. वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धात्मकता को समझ और सुधार सकेंगे।
5. विकास की प्राथमिकताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

1.3 समष्टि या मैक्रो अर्थशास्त्र की प्रकृति

मैक्रो अर्थशास्त्र का सम्बन्ध अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण व्यवस्था से है या सभी उपविधान का योगमात्र है जैसे कि घरेलू सरकार व व्यावसायिक क्षेत्र जिससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का निर्माण होता है। यह अर्थशास्त्र की वह शाखा है, जो कि एक विशेष प्रकार के व्यवहार का अध्ययन न करके समस्त इकाइयों का एक साथ अध्ययन करती है जैसे कि कुल राष्ट्रीय आय, कुल उपभोग, कुल उत्पादन एवं कुल रोजगार। अन्य शब्दों में मैक्रो अर्थशास्त्र में समस्त अर्थव्यवस्था के उपविभाजन के क्षेत्रों का पृथक से अध्ययन करते हैं तथा उसके योग को ज्ञात करते हैं। विशिष्ट आर्थिक इकाइयों का संकलन जो कि एक पृथक इकाई माना जाता हो उसके योग को मैक्रो अर्थशास्त्र में अध्ययन करते हैं। अतः मैक्रो अर्थशास्त्र कुल का अध्ययन करता है और इसी कारण इसे कुल या योग का अर्थशास्त्र कहा जाता है। प्रो. के.ई. बोल्डिंग के अनुसार, "मैक्रो अर्थशास्व व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन नहीं करती बल्कि राष्ट्रीय आय का अध्ययन करती है, यह अकेले मूल्य का अध्ययन नहीं करती, बल्कि मूल्य स्तर का अध्ययन करती है, व्यक्तिगत उत्पादन का अध्ययन न करके राष्ट्रीय उत्पादन का अध्ययन करती है।" अतः अर्थव्यवस्था में विभिन्न प्रकार के योगों एवं औसत का अध्ययन व उनका उच्चावचन आदि का ज्ञान मैक्रो का ही अंग है। गार्डनर एकले का

मत है कि, "मैक्रो अर्थशास्त्र वृहद स्तर पर आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करता है। यह आर्थिक जगत की सम्पूर्ण दिशा का अध्ययन करके उसका सही वर्णन करने में सहायक सिद्ध होता है।" यहाँ यह कहा जा सकता है कि मैक्रो अर्थशास्त्र को एक पृथक शाखा के रूप में रखकर अध्ययन किया जा सकता है, क्योंकि व्यक्तिगत इकाइयों के योग को सदैव आर्थिक व्यवहार के अध्ययन में उपयोग नहीं किया जा सकता है। बोल्डिंग के अनुसार "मैक्रो अर्थशास्त्र अर्थशास्त्र की वह शाखा है, जो कि कुल का अध्ययन करता है

और किसी अकेली इकाई का अध्ययन नहीं करता तथा इन योग का अध्ययन अपने स्वाभाविक रूप में करता है तथा वह कैसे एक दूसरे से सम्बन्धित है। इसका भी अध्ययन किया जाता है।"

माइक्रो अर्थशास्त्र कुल उत्पादन, कुल व्यय रोजगार का अध्ययन न करके किसी विशिष्ट वस्तु या सेवा के उत्पादन का अध्ययन करता है। एक व्यक्ति विशेष क्या व्यय करता है तथा एक फर्म या एक उद्योग कितना माल उत्पादित करता है, इसका अध्ययन ही माइक्रो अर्थशास्त्र का विषय है। इस प्रकार यह एक विशेष वस्तु के मूल्य, मजदूरी या आय का अध्ययन करता है। जैसे माइक्रो अर्थशास्त्र यह स्पष्ट करता है कि एक अकेली फर्म एक विशेषउत्पाद का विक्रय मूल्य कैसे निर्धारित करता है तथा कितना उत्पादन उस व्यक्ति की आय को अधिकतम कर सकता है तथा वह व्यक्ति कैसे अपने लाभ को अधिकतम कर सकता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति किस प्रकार अपने श्रम, सामग्री व पूँजी उपकरणों की सहायता से उत्पादन की लागत को न्यूनतम कर सकता है।

के. ई. बोल्डिंग के अनुसार, "माइक्रो अर्थशास्त्र एक विशेष फर्म, विशेष मकान, व्यक्ति, मूल्य, मजदूरी, आय, व्यक्तिगत उद्योग व विशेष वस्तु का ही अध्ययन करता है।"

माइक्रो अर्थशास्त्र को 'मूल्य सिद्धान्त' भी कहा जाता है तथा यह स्पष्ट करता है कि कुल उत्पादन का निर्माण किस प्रकार हुआ है। किस प्रकार अन्य की अपेक्षा अन्य वस्तुओं का उत्पादन अधिक किया जाता है। जब कभी भी माइक्रो अर्थशास्त्र का अध्ययन किया जाए तो इसका आशय सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के एक छोटे से भाग का ही अध्ययन करना है। उदाहरणार्थ यदि श्रम के रोजगार का अध्ययन करना हो तो हमें एक विशेष प्रकार के श्रम का अध्ययन करना होगा। यहाँ यह कह सकते हैं कि माइक्रो अर्थशास्त्र का सम्बन्ध एक विशेष आर्थिक इकाई से होता है तथा व्यक्तिगत व्यवहारों का एक विस्तृत अध्ययन किया जाता है। यदि माइक्रो अर्थशास्त्र में मूल्य ने 'वश्लेषण का अध्ययन करना हो तो एक विशेष उत्पाद के मूल्य का अध्ययन करना होगा न कि अर्थगवस्था में सामान्य मूल्य स्तर का अध्ययन करना होगा। गार्डनर एकले के अनुसार "माइक्रो अर्थशा का अध्ययन करता है तथा स्रोतों का विभाजन विभिन्न प्रतियोगी त वितरण की समस्याओं का अध्ययन करता है।

इसका हित विशेष पण अध्ययन करने में है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि माइक्र करता है न कि पूरे जंगल का। माइक्रो अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था की किसा द्योगों के उत्पादन के विभाजन बोगों में करता है।" यह आय पेवा की सापेक्षिक मूल्यों का शास्त्र अकेले पेड़ का अध्ययन एक समस्या का अध्ययन करता है, पूरी अर्थव्यवस्था का अध्ययन नहीं करता है। इसका सैद्धान्तिक व व्यावहारिक दोनों महत्व है। सैद्धान्तिक

रूप में माइक्रो अर्थशास्त्र एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था का अध्ययन करता है। व्यावहारिक रूप में यह आर्थिक नीतियों के निर्माण का अध्ययन करता है जिससे उत्पादन में कुशलता को बढ़ाया जा सके। माइक्रो अर्थशास्त्र जटिल आर्थिक सिद्धान्तों को सरल बनाता है तथा व्यवहार की प्रक्रिया को सरल रखकर अर्थव्यवस्था का अध्ययन करता है। माइक्रो अर्थशास्त्र का सम्बन्ध अर्थशास्त्र की अन्य शाखाओं से भी है जैसे कि राजस्व, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, बैंकिंग, यातायात आदि।

1.4 मैक्रो अर्थशास्त्र का विकास

मैक्रो अर्थशास्त्र का सिद्धान्त गत दो-तीन दशकों में ही विकसित हुआ है। आय व रोजगार का सिद्धान्त जो कि मैक्रो अर्थशास्त्र की जान माना जाता है, उसका उदय भी 1929-33 की महान मन्दीकाल में हुआ। इसी प्रकार से रोजगार, आय एवं ब्याज व मुद्रा का जॉन कीन्स का सामान्य सिद्धान्त 1936 में विकसित हुआ। आधुनिक मैक्रो अर्थशास्व का विकास अपने विश्लेषणात्मक रूप में बाद में हुआ। इस विश्लेषण के प्रकाश में, कीन्स ने स्वतंत्र विश्व में सरकार की मौद्रिक एवं प्रशुल्क नीति का प्रतिपादन किया, परन्तु कीन्स द्वारा प्रतिपादित सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था में उत्पादन का सम्पूर्ण समाजीकरण संभव न हो सका। केन्द्रीय नियंत्रण की आवश्यकता के अतिरिक्त, उपयोग की सीमान्त उत्पादकता एवं विनियोग की तत्परता के मध्य एक समायोजन करना आवश्यक था। अतः इससे पूर्व की भाँति ही, अर्थव्यवस्था में और अधिक समाजीकरण करना आवश्यक नहीं माना गया।

1950 व 1960 के मध्य अर्थशास्त्रियों ने यह मान लिया कि अधिकांशतया आधारभूत मैक्रो अर्थशास्त्र का विश्लेषण पूर्ण हो चुका है। उस समय यह विश्वास किया गया था कि यदि उस समय के राजनीतिज्ञ कीन्स द्वारा प्रतिपादित अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का पालन करते तो अर्थव्यवस्था में रोजगार, उत्पादन एवं मूल्य पर स्थायित्व लाया जा सकता था। उस समय के भौतिकवादी, वणिकवादी एवं प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों जैसे एडम स्मिथ, डेविड रिकाडों एवं कार्ल मार्क्स आदि का अध्ययन समाज में कुल आय एवं आर्थिक पद्धति में व्यवहार की ओर ही केन्द्रित रहा। वास्तव में, आधुनिक मैक्रो आर्थिक सिद्धान्त कीन्स द्वारा प्रतिपादित आय एवं रोजगार के सिद्धान्त पर विकसित सिद्धान्त का ही एक रूप है।

आधुनिक मैक्रो आर्थिक सिद्धान्त में निम्न बातों पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है: -

(1) पूर्ण रोजगार में विकास की दर, स्तर एवं विधि क्या होगी।

(2) एक निश्चित समय में वास्तविक उत्पादन का स्तर किस प्रकार निर्धारित होगा।

(3) स्फीति की दर एवं स्तर किस प्रकार निश्चित होगी।

अतः यह कहा जा सकता है कि मैक्रो अर्थशास्त्र कुछ कुल माई के निर्धारण सम्बन्धी समस्याओं समष्टि अर्थ तथा मुद्री में बैंकिंग से सम्बन्धित रहता है। व्यक्तिगत उत्पादन का व्यवहार ही सकल राष्ट्रीय उत्पादन को जन्म देता है तथा इसका वितरण ही राष्ट्र के सदस्यों की आय मानी जाती है। अतः मैक्रो अर्थशास्त्र में सकल राष्ट्रीय उत्पाद, कुल उपभोग, कुल विनियोग, श्रम का कुल योग व कुल रोजगार व राष्ट्रीय आय सभी आर्थिक चलों की प्राथमिक स्थिति है, जिसका अध्ययन मैक्रो अर्थशास्त्र में किया जाता है।

1.5 मैक्रो अर्थशास्त्र की विषय सामग्री

वास्तविक व्यवहार में, मैक्रो अर्थशास्त्र का सम्बन्ध नीति निर्माण के मामले, आर्थिक नीति, विनिमय दर नीति व औद्योगिक व लाइसेन्सिग नीति आदि के निर्माण से है। मैक्रो अर्थशास्त्र की विषय सामग्री में निम्न को सम्मिलित करते हैं:-

(1) देश में आय, रोजगार एवं मौद्रिक मूल्यों के स्थायित्व के लिए मौद्रिक व प्रशुल्क नीति का निर्धारण करना।

(2) आय, रोजगार व मूल्यों के निर्धारण में मुद्रा के महत्व का अध्ययन करना।

(3) कुल माँग के सिद्धान्त का अध्ययन करना ।

(4) विकास अर्थशास्त्र के स्थायीकरण के लिए देश में मौद्रिक एवं प्रशुल्क नीति का निर्धारण करना व उसे लागू करना।

1.6 मैक्रो अर्थशास्त्र के प्रकार

मैक्रो अर्थशास्त्र को तीन भागों में विभक्त किया जाता है, यथा (1) मैक्रो स्थैतिकी, (2) तुलनात्मक मैक्रो स्थैतिकी, और (3) मैक्रो प्रावैगिकी। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है: -

(1) **मैक्रो स्थैतिकी** (Macro Statics) स्थैतिकी से आशय स्थिरता से है, अर्थात् उन तत्वों या उस प्रक्रिया का अध्ययन नहीं किया जाता जिसमें एक समयावधि के बाद अर्थव्यवस्था में सन्तुलन स्थापित होता है। दूसरे शब्दों में, मैक्रो स्थैतिकी में उस प्रक्रिया पर प्रकाश नहीं डाला जाता जिसके माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अन्तिम सन्तुलन को प्राप्त होती है। यह विधि एक निश्चित समय-बिन्दु पर समूची अर्थव्यवस्था का विश्लेषण करती है। लेकिन इसके अन्तर्गत समन्वय-प्रक्रिया का अध्ययन नहीं किया जाता जिसके माध्यम से अन्तिम सन्तुलन की स्थापना होती है।

(2) **तुलनात्मक मैक्रो स्थैतिकी** (Comparative Macro Statics) इस विधि के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था द्वारा प्राप्त विभिन्न सन्तुलनों की तुलना की जाती है, लेकिन उस समन्वय प्रक्रिया के बारे में इस विधि में अध्ययन नहीं किया जाता जिसके माध्यम से

अर्थव्यवस्था एक सन्तुलन से हटकर दूसरे सन्तुलन को प्राप्त होती है। इसमें केवल पुराने सन्तुलन की तुलना नये सन्तुलन न से की की जाती है, किन्तु संक्रमण-अवधि में घटित होने वाली घटनाओं पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जाता है।

(3) **मैक्रो प्रावैगिकी** (Macro Dynamics) इस विधि के अन्तर्गत इस तथ्य का अध्ययन किया जाता है कि विभिन्न मैक्रो मात्राओं एवं आर्थिक समूहों में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था किस प्रकार सन्तुलन की अवस्था को प्राप्त होती है। मैक्रो मात्राओं एवं आर्थिक समूहों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप जो समन्वय-क्रियाएँ कार्यशील होती है, मैक्रो प्रावैगिकी उनका गहन एवं विस्तृत अध्ययन करती है। अतः स्पष्ट है कि यह विधि समूची प्रगतिशील अर्थव्यवस्था का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करती है। वास्तव में आर्थिक विश्लेषण की यह एक यथार्थ प्रणाली है। यह एक जटिल विधि है जिसमें उच्च गणित का प्रयोग किया जाता है।

मैक्रो प्रावैगिकी का विकास पिछले कुछ वर्षों में प्रो. फ्रिश, प्रो. राबर्टसन, प्रो. कलेकी (Kalecki), प्रो. टिनबर्जन (Tinbergen) एवं सैम्युएलसन, जैसे अर्थशास्त्रियों ने किया। संक्षेप में, मैक्रो प्रावैगिकी पुराने

सन्तुलन एवं नये सन्तुलन के मध्य के संक्रमण-काल में घटित होने वाली सभी घटनाओं का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करती है।

1.7 माइक्रो एवं मैक्रो अर्थशास्त्र में अन्तर

माइक्रो एवं मैक्रो अर्थशास्त्र में भेद करना कठिन है, क्योंकि एक स्थिति में जो मैक्रो अर्थशास्त्र है वही दूसरी स्थिति में माइक्रो अर्थशास्त्र हो सकता है। उदाहरणार्थ, बन्द अर्थव्यवस्था में बचत, रोजगार व उपभोग आदि का अध्ययन पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से मैक्रो अर्थशास्त्र है, क्योंकि यह समूह का अध्ययन करता है। दूसरी ओर माइक्रो अर्थशास्त्र में पूर्ण अर्थव्यवस्था के एक भाग का ही अध्ययन किया जाता है जैसे कि उपभोक्ता का व्यवहार एवं अकेली फर्म का अध्ययन करना। इस सम्बन्ध में मैक्रो व माइक्रो अर्थशास्त्र में स्पष्ट भेद करना संभव नहीं हो पाता है, क्योंकि जब एक देश के दूसरे देश से व्यापारिक सम्बन्ध होते हैं तो एक समूचा देश अन्तर्राष्ट्रीय ढाँचे में एक इकाई माना जाता है और उसकी आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन मैक्रो अर्थशास्व बन जाता है। अन्य देशों या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सन्दर्भ में एक देश के अध्ययन को मैक्रो अर्थशास्त्र माना जा सकता है, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को ध्यान में रखने पर यही अध्ययन माइक्रो अर्थशास्त्र की विषय सामग्री बन जाता है। अन्य शब्दों में माइक्रो अर्थशास्त्र एक खुली अर्थव्यवस्था है

जबकि मैक्रो अर्थशास्त्र एक बन्द अर्थव्यवस्था है। अतः स्पष्ट है कि मैक्रो अर्थशास्त्र का सम्बन्ध व्यक्तिगत इकाइयों से नहीं होता जैसे एक घर या एक फर्म, परन्तु माइक्रो अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया जाता है जैसे एक उद्योग, उपभोक्ता की मांग, राष्ट्रीय आय, पूर्ण रोजगार आदि। माइक्रो अर्थशास्त्र में अधिकतम या न्यूनतम की समस्या का अध्ययन करते हैं जबकि मैक्रो अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण मात्रा व उससे सम्बन्धित बातों का ही अध्ययन किया जाता है।

प्रारम्भ में माइक्रो एवं मैक्रो अर्थशास्त्र में कोई भेद नहीं था, क्योंकि अर्थशास्त्रियों ने इस विभाजन की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था। मैक्रो अर्थशास्त्र के साथ-साथ माइक्रो अर्थशास्त्र के अध्ययन पर जोर डाला गया। 1929-32 की महानमन्दी के समय अर्थशास्त्रियों का ध्यान मैक्रो अर्थशास्त्र की ओर गया। जे.एम. कीन्स के सामान्य सिद्धान्त के प्रकाशन के बाद, अर्थशास्त्रियों ने मैक्रो अर्थशास्त्र पर अधिक महत्व देना प्रारम्भ कर दिया। कोन्स का अर्थशास्त्र भी एक मैक्रो अर्थशास्त्र है जो कि आर्थिक पद्धति के कार्यों का अध्ययन समूह में करता है। इसका यह आशय नहीं है कि माइक्रो अर्थशास्त्र का आर्थिक जगत में महत्व कम हो गया है। वास्तव में आर्थिक पद्धति के सही ढंग से अध्ययन करने हेतु यह आवश्यक है कि माइक्रो एवं मैक्रो दोनों अर्थशास्त्र का अध्ययन सही ढंग से किया जाए।

प्रश्न1: मैक्रोइकोनॉमिक्स क्या है?

प्रश्न2: राष्ट्रीय आय के विभिन्न दृष्टिकोण क्या हैं?

1.8 मैक्रो अर्थशास्त्र का महत्व

मैक्रो अर्थशास्त्र के महत्व को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है: -

(1) माइक्रो अर्थशास्त्र को समझना - माइक्रो अर्थशास्त्र को समझने हेतु मैक्रो अर्थशास्त्र का अध्ययन करना जरूरी था। समूह का अध्ययन किए बिना कोई भी माइक्रो अर्थशास्त्र की समस्या का समाधान संभव नहीं है। मैक्रो अर्थशास्त्र ही सामान्य व वृहत विश्लेषण का अध्ययन कर सकता है जो कि आर्थिक समस्याओं का अध्ययन सही ढंग से करके नियोजकों को सही नीति निर्देश व निर्माण में सहायता प्रदान कर सकता है। इससे देश की मौद्रिक एवं प्रशुल्क नीति के निर्माण में भी सहायता प्राप्त होती है।

(2) राष्ट्रीय आय का अध्ययन - राष्ट्रीय आय, सकल राष्ट्रीय उत्पाद, कुल विनियोग व रोजगार आदि को समझने में मैक्रो अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। कोन्स ने राष्ट्रीय आय को शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) न मानकर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) माना है, क्योंकि अल्पकाल में पुनर्स्थापन एवं मरम्मत्त व्यय को कोई विशेष महत्व नहीं दिया जाता है। अतः स्पष्ट है कि अल्पकाल में जनता की कुल आय को ज्ञात करने में सकल राष्ट्रीय उत्पाद एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

(3) आर्थिक विकास का अध्ययन - आर्थिक विकास से आशय यह है कि देश में एक उच्च कोटि की विकसित आर्थिक पद्धति है। इसमें पूँजी निर्माण की ऊँची दर एवं ऊँची तकनीकी विकास का समावेश रहता है। मैक्रो अर्थशास्त्र की सहायता से आर्थिक विकास
की विचारधारा को सरलता से समझा जा सकता है तथा देश में विकास सम्बन्धी नीतियों का निर्माण सरलता से संभव हो जाता है।

(**4) अर्थव्यवस्था का अध्ययन** - मैक्रो अर्थशास्त्र द्वारा आय प्राप्ति की प्रक्रिया तथा वे शक्तियाँ जो कि अर्थव्यवस्था में आय का निर्धारण करती हैं, उनका परीक्षण सरलता से किया जा सकता है। मैक्रो अर्थशास्त्र की सहायता से समूह सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करना आसान हो जाता है जैसे कि बेरोजगार की समस्या, गरीबी की समस्या, मौद्रिक व प्रशुल्क नीतियों सम्बधी मामले आदि।

(5) अर्थव्यवस्था का कार्य - मैक्रो अर्थशास्त्र किसी भी अर्थव्यवस्था के कार्यों के अध्ययन करने में सहायता प्रदान करता है। यह साम्य प्रक्रिया व अंश के अध्ययन करने में सहायता प्रदान करता है तथा अर्थव्यवस्था में आय एवं उत्पादन को प्राप्त करने सम्बन्धी स्रोतों का अध्ययन भली प्रकार से करने में सहायता प्रदान करती है।

(6) आर्थिक उच्चावचन - आर्थिक उच्चावचन के सिद्धान्त का अध्ययन भी मैक्रो अर्थशास्त्र की सहायता से किया जा सकता है। इसके अध्ययन में समूह उपभोग, समूह विनियोग व समूह बचत आदि का अध्ययन समूह में करना होता है। इसी की सहायता से रोजगार, उत्पादन एवं आय में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी आसानी से हो जाती है।

(7) स्फीतिक एवं अस्फीतिक का अध्ययन - अर्थव्यवस्था में वस्तुओं व सेवाओं का मूल्य स्थिर नहीं रहता है। इनमें तेजी व शीघ्रता से परिवर्तन आते रहते हैं। मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन आने से समाज के विभिन्न वर्ग के व्यक्तियों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। मैक्रो अर्थशास्त्र की सहायता से मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन सरलता से संभव हो जाता है। यदि देश में स्फीतिक या अस्फीतिक स्थिति है तथा मैक्रो अर्थशास्त्र की सहायता से उसके कारणों एवं प्रभावों का अध्ययन सरलता से किया जा सकेगा।

1.9 मैक्रो अर्थशास्त्र की सीमाएँ

मैक्रो अर्थशास्व की सीमाएँ निम्न प्रकार है: -

(1) व्यक्ति को छोड़ना - मैक्रो अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन न करके समूह में अध्ययन करते हैं जिससे व्यक्तिगत इकाइयों को छोड़ दिया जाता है जैसे

व्यक्तिगत कल्याण के स्थान पर समाज कल्याण का अध्ययन किया जाता है, परन्तु निजी कल्याण का अध्ययन किए बिना इसको जानना संभव नहीं है। यदि एक व्यक्ति बैंक से धन आहरण करे तो कोई समस्या नहीं है, परन्तु यदि सभी जमाकर्ता एक साथ धन आहरित करें, तो बैंक के असफल होने का डर बना रहता है।

(2) सीमित उपयोग - मैक्रो अर्थशास्त्र में एक सामान्य विश्लेषण का अध्ययन किया जाता है जिसका कि बाजार में आपसी सम्बन्ध रहता है। निजी मूल्य व निजी माँग को कम महत्व दिया जाता है और सामान्य माँग व सामान्य मूल्य पर ध्यान दिए जाने के कारण अर्थव्यवस्था का सही ढंग से अध्ययन नहीं हो पाता है।

(3) राष्ट्रीय आय मापने में कठिनाई - मैक्रो अर्थशास्त्र द्वारा देश की राष्ट्रीय आय, बेरोजगार आदि का अध्ययन किया जाता है, परन्तु व्यक्ति की आय पर ध्यान न देने से एकत्रित आंकड़े भरोसे योग्य नहीं होते हैं और उनसे सही जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती है।

(4) अन्य सीमाएँ - मैक्रो अर्थशास्त्र के अध्ययन में अन्य सीमाएँ भी आती हैं जैसे कि ज्यादा सोच विचार करना आदि। समूह में सोचने व कार्य करने के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति के ढाँचे व उसकी प्रकृति के बारे में भी विचार-विमर्श किया जाए, जो कि मैक्रो अर्थशास्त्र के अध्ययन में संभव नहीं है।

प्रश्न3: मुद्रास्फीति क्या है और इसके प्रभाव क्या हैं?

प्रश्न 4: बेरोजगारी के प्रकार कौन-कौन से हैं?

1.10 सार संक्षेप

मैक्रोइकोनॉमिक्स (सामूहिक अर्थशास्त्र) एक ऐसा क्षेत्र है जो समग्र अर्थव्यवस्था के कार्यकलापों का अध्ययन करता है। इसमें राष्ट्रीय आय, बेरोजगारी, मुद्रास्फीति, सरकारी खर्च और राजकोषीय नीतियों का विश्लेषण किया जाता है। यह छोटे-छोटे आर्थिक घटकों जैसे कि घरों और कंपनियों के बजाए, पूरे देश की अर्थव्यवस्था की स्थिति को समझने का प्रयास करता है। मैक्रोइकोनॉमिक्स में मुख्य रूप से दो प्रकार की नीतियां होती हैं—राजकोषीय नीति और मौद्रिक नीति। राजकोषीय नीति में सरकार के खर्च और करों का प्रबंधन किया जाता है, जबकि मौद्रिक नीति केंद्रीय बैंक द्वारा मुद्रा आपूर्ति और ब्याज दरों को नियंत्रित करने की प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य आर्थिक विकास को बढ़ावा देना, महंगाई को नियंत्रित करना और बेरोजगारी की दर को घटाना होता है। यह अर्थव्यवस्था के समग्र संतुलन और स्थिरता को बनाए रखने में मदद करता है।

1.11 मुख्य शब्द

1. **राष्ट्रीय आय (National Income)** - एक देश की कुल उत्पादन की मौद्रिक मान।
2. **मुद्रास्फीति (Inflation)** - वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में सामान्य वृद्धि।
3. **बेरोजगारी (Unemployment)** - वे लोग जो काम की तलाश में हैं, लेकिन काम नहीं पा रहे हैं।
4. **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)** - सरकार द्वारा खर्च और करों का प्रबंधन।
5. **मौद्रिक नीति (Monetary Policy)** - केंद्रीय बैंक द्वारा मुद्रा आपूर्ति और ब्याज दरों का नियंत्रण।
6. **सकल घरेलू उत्पाद (GDP)** - एक निश्चित समय अवधि में एक देश द्वारा निर्मित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य।
7. **वित्तीय घाटा (Fiscal Deficit)** - सरकारी खर्च और आय के बीच का अंतर।
8. **ब्याज दर (Interest Rate)** - पैसे उधार लेने पर चुकाए जाने वाली राशि।
9. **विनिमय दर (Exchange Rate)** - दो मुद्राओं के बीच व्यापार दर।
10. **वित्तीय साक्षरता (Financial Literacy)** - आर्थिक नीतियों और वित्तीय प्रणालियों को समझने की क्षमता।

1.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: मैक्रोइकोनॉमिक्स समग्र अर्थव्यवस्था के अध्ययन से संबंधित है। यह राष्ट्रीय आय, बेरोजगारी, मुद्रास्फीति, आर्थिक विकास और अन्य समग्र मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करता है। इसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था की समग्र स्थिति का विश्लेषण करना है।

उत्तर 2: राष्ट्रीय आय को तीन दृष्टिकोणों से मापा जा सकता है:

1. **उत्पादन दृष्टिकोण** - यह कुल उत्पादन की गणना करता है।
2. **आय दृष्टिकोण** - यह कुल आय का हिसाब करता है, जैसे मजदूरी, लाभ आदि।
3. **व्यय दृष्टिकोण** - इसमें कुल खर्च को मापा जाता है, जैसे उपभोग, निवेश आदि।

उत्तर 3: मुद्रास्फीति वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में वृद्धि को कहा जाता है। इसके परिणामस्वरूप जीवन स्तर घट सकता है, और वस्तुओं की खरीद क्षमता कम हो सकती है।

उत्तर 4: बेरोजगारी के प्रमुख प्रकार हैं:

1. **संरचनात्मक बेरोजगारी**

2. **साइक्लिकल बेरोजगारी**
3. **सामान्य बेरोजगारी**

1.13 संदर्भ सूची

- बलाकृष्णन, पी. (2022). भारतीय अर्थव्यवस्था का पुनरुत्थान: राजनीतिक अर्थव्यवस्था परिप्रेक्ष्य. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बसु, के. (2018). विश्वासों का गणराज्य: कानून और अर्थशास्त्र का नया दृष्टिकोण. प्रिंसटन, एनजे: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- नागराज, आर. (2019). भारत में आर्थिक विकास और विकास: नए दृष्टिकोण. नई दिल्ली: रूटलेज।
- पनगड़िया, ए. (2020). इंडिया अनलिमिटेड: रीक्लेमिंग द लॉस्ट ग्लोरी. न्यूयॉर्क: हार्पर कॉलिन्स।
- घोष, ए. (2021). भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: 21वीं सदी में प्रदर्शन और संभावनाएँ. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

1.14 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मैक्रो अर्थशास्त्र से क्या आशय है? मैक्रो अर्थशास्त्र का विकास बताइए?
2. माइक्रो एवं मैक्रो अर्थशास्त्र की विचारधारा का अध्ययन करते हुए दोनों में भेद कीजिए?
3. मैक्रो अर्थशास्त्र से आप क्या समझते हैं? मैक्रो अर्थशास्त्र की विषय सामग्री दीजिए?
4. मैक्रो अर्थशास्त्र का महत्व बताइए तथा इसकी सीमाएँ भी दीजिए?
5. स्टॉक और प्रवाह धारणाओं की विवेचना कीजिए। समष्टि अर्थशास्त्र में इनका क्या महत्व है?
6. एक समष्टि आर्थिक मॉडल से आप क्या समझते है? मॉडल के निर्माण की विभिन्न धारणाएँ कौन-सी है?
7. प्रत्याशित और यर्थाथ चरों में अंतर बताइये। समष्टि अर्थशास्त्र में इन चरों का क्या महत्व है?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मैक्रो अर्थशास्त्र की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।
2. मैक्रो अर्थशास्त्र का महत्व बताइये ।

3. मैक्रो अर्थशास्त्र की सीमाएँ लिखिए।

1. स्टॉक और प्रवाह धारणाओं से आप क्या समझते हैं?

2. समष्टि आर्थिक मॉडल क्या है?

3. प्रत्याशित और यर्थाथ (वास्तविक) चर में भेद कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. समष्टि अर्थशास्त्र में निम्न में से किसका अध्ययन किया जाता है-

(अ) व्यक्तिगत इकाइयों का (ब) समस्त इकाइयों का

(स) उपर्युक्त दोनों का (द) उपर्युक्त कोई नहीं।

2. समष्टि अर्थशास्त्र के विकास में किस अर्थशास्त्री ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है-

(अ) प्रो. मार्शल (ब) पो. पीगू

(स) प्रो. कीन्स (द) प्रो. बोल्डिग ।

3. एक निर्दिष्ट समय पर वस्तु की संचय की गई मात्रा क्या कहलाती है-

(अ) प्रवाह (ब) स्टॉक

(स) प्राचल (द) स्थिरांक ।

4. एक वस्तु के चालू उत्पादन की मात्रा से एक मात्रा बाजार में से गति करती है, वह कहलाती है-

(अ) प्रवाह (ब) स्टॉक

(स) समूह (द) उपर्युक्त कोई नहीं।

(उत्तर- [1. (ब), 2. (स), 3. (ब), 4. (अ)]

इकाई -2
समष्टि चर-स्टॉक एवं प्रवाह
(MACRO VARIABLES - STOCK AND FLOW)

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 स्टॉक और प्रवाह
2.4 समष्टि आर्थिक मॉडल
2.5 प्रत्याशित और यथार्थ चर
2.6 सार संक्षेप
2.7 मुख्य शब्द
2.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ सूची
2.10 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

मैक्रोइकॉनॉमिक्स में, **Macro variables** दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित होते हैं: स्टॉक और फ्लो । ये दोनों अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद करते हैं।

स्टॉक उन मानकों को दर्शाते हैं जो किसी विशेष समय पर मापे जाते हैं। ये स्थिर होते हैं और समय के साथ बदलने में देर करते हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय संपत्ति, पूंजी स्टॉक, या राष्ट्रीय ऋण स्टॉक के उदाहरण हैं। ये किसी निश्चित समय पर किसी भी अर्थव्यवस्था में मौजूद संसाधनों या कर्ज को मापते हैं।

फ्लो उस माप को दर्शाते हैं जो एक विशिष्ट समय अवधि के दौरान होते हैं। ये निरंतर रूप से बदलते रहते हैं और आमतौर पर समय के साथ गति को दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय आय, निवेश, सरकारी खर्च और निर्यात-आयात जैसे उदाहरण फ्लो वेरिएबल्स के होते हैं। फ्लो वेरिएबल्स को एक निश्चित समय अंतराल में मापा जाता है जैसे कि प्रति वर्ष, प्रति माह या प्रति तिमाही।

दोनों प्रकार के वेरिएबल्स एक-दूसरे के साथ जुड़े होते हैं और अर्थव्यवस्था की स्थिति को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. समाज में आर्थिक असमानता को कम करने के उपायों का विश्लेषण कर सकें।
4. आर्थिक स्थिरता और दीर्घकालिक विकास की दिशा को पहचान सकें।
5. वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों की पहचान कर सकें।
6. वित्तीय प्रणाली की भूमिका और प्रभाव को समझ सकें।
7. अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्र की संरचना का विश्लेषण कर सकें।
8. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में सामाजिक और पर्यावरणीय पहलुओं को समझ सकें।
9. विकास के लिए आवश्यक नीति निर्माण और निर्णय प्रक्रिया को समझ सकें।

2.3 स्टॉक और प्रवाह

समष्टि अर्थशास्त्र में समूहों (Aggregates) अथवा समस्त अर्थव्यवस्था से संबंध रखने वाले औसतों का अध्ययन किया जाता है। अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने के लिए समष्टि आर्थिक चरों (Variables) का अध्ययन अनिवार्य है। इसके साथ ही व्यक्तिगत इकाइयों के व्यवहार को समझने के लिए समष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। इसी प्रकार समष्टि अर्थशास्त्र को समझने के लिए कुछ आधारभूत धारणाओं को समझना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्याय में कुछ मूल धारणाओं की संक्षेप में व्याख्या की गई है।

स्टॉक और प्रवाह

(Stock and Flow)

अर्थशास्त्र में स्टॉक और प्रवाह चरों (Variables) को आर्थिक मॉडलों की व्याख्या करने में प्रयोग किया जाता है। इनके अर्थ निम्न प्रकार है-

स्टॉक (Stock)- स्टॉक से आशय एक निर्दिष्ट समय (Point of time) पर एक वस्तु की संचय की गई मात्रा से होता है।

शपीरो (Shapiro) के शब्दों में, "एक स्टॉक समय के एक निर्दिष्ट बिन्दु में माप्य मात्रा है।"

प्रवाह (Flow)- एक वस्तु के चालू उत्पादन की मात्रा से एक मात्रा बाजार में से गति करती है उसे प्रवाह करते हैं। शपीरो के शब्दों में, "प्रवाह एक मात्रा है जो केवल समय के एक निर्दिष्टकाल में मापी जा सकती है।"

इस प्रकार एक स्टॉक चर का कोई समय आयाम (Time dimention) नहीं होता है, वहीं दूसरी ओर एक प्रवाह चर का एक निर्दिष्ट समय काल (Specified period of time) होता है। अतः शपीरो का कथन है, "एक स्टॉक समय के एक निर्दिष्ट बिन्दु में मात्रा है और प्रवाह एक मात्रा है जो केवल समय के एक निर्दिष्टकाल में मापी जा सकती है।" उदाहरण के लिये, गेहूं, चावल, इस्पात आदि की चालू पूर्ति या उत्पादन जो कि दैनिक, साप्ताहिक, मासिक अथवा वार्षिक मण्डी में बेचा या खरीदा जाता है, प्रवाह को व्यक्त करता है। इसके विपरीत, इन वस्तुओं की वह मात्रा जो किसी एक विशेष दिन या समय पर पायी जाती है, उसे स्टॉक कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि स्टॉक और प्रवाह की धारणाएँ व्यष्टि तथा समष्टि दोनों अर्थशास्त्रों के विश्लेषण में प्रयुक्त होती हैं।

व्यष्टि अर्थशास्त्र या कीमत सिद्धान्त में स्टॉक तथा प्रवाह धारणाओं का संबंध वस्तुओं की माँग और पूर्ति से होता है। इससे किसी निश्चित समय पर बाजारं माँग और पूर्ति को स्टॉक में व्यक्त किया जाता है। किसी वस्तु का स्टॉक माँग वक्र बाएँ से दाएँ नीचे की ओर ढालू होता है। अर्थात् यह एक सामान्य माँग वक्र जो कीमत पर निर्भर करता है की भाँति होता है। दूसरी ओर स्टॉक पूर्ति वक्र y-अक्ष (उदय रेखा) के समानान्तर होता है क्योंकि वस्तु की कुल मात्रा या स्टॉक एक निर्दिष्ट समय पर स्थिर होता है। वहीं दूसरी ओर, प्रवाह माँग और पूर्ति वक्र सामान्य माँग और पूर्ति वक्रों की भाँति होते है जो न1 कीमतों से प्रभावित होते हैं। किन्तु कीमत न ही स्टॉक है और न ही प्रवाह चर है। इसका कारण यह है कि इसको एक समय आयाम की आवश्यकता नहीं होती और न ही यह स्टॉक परिमाण है। त्रास्तव में यह नकदी के प्रवाह एवं वस्तुओं के प्रवाह के मध्य अनुपात है

समष्टि अर्थशास्त्र या आय, उत्पादन और रोजगार सिद्धान्त में स्टॉक और प्रवाह धारणाओं का प्रयोग अधिक किया जाता है। उदाहरणार्थ, धन एक स्टॉक है और आय एक प्रवाह है। इसी प्रकार मुद्रा एक स्टॉक है जबकि मुद्रा का व्यय एक प्रवाह है। किसी भी व्यक्ति द्वारा एक माह में की गईं बचत (savings) एक प्रवाह है जबकि किसी दिन उनकी कुल बचतें एक स्टॉक कहलायेंगी। एक बैंक का ऋण देना एक प्रवाह है और बैंक का बकाया ऋण या कर्जा एक स्टॉक है। इसी तरह सरकारी ऋण एक स्टॉक है जबकि सरकारी घाटा एक प्रवाह है। उल्लेखनीय है कि कुछ समष्टि चर, यथा आय, मजदूरी, कर भुगतान, आयात निर्यात सामाजिक सुरक्षा लाभ एवं लाभांश आदि केवल

प्रवाह ही होते हैं। अर्थात् इनके स्टॉक के बारे में विचार नहीं किया जा सकता। परन्तु ये प्रवाह जिनके प्रत्यक्ष

स्टॉक नहीं है, वे अप्रत्यक्ष रूप से अन्य स्टॉकों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, आयात पूँजीगत पदार्थों के स्टॉक को प्रभावित कर सकते हैं।

यह तथ्य विशेष महत्वपूर्ण है कि एक स्टॉक प्रवाहों के कारण ही परिवर्तित हो सकता है लेकिन प्रवाहों का आकारं अपने-आप स्टॉक में परिवर्तनों द्वारा स्वयं भी निर्धारित हो सकता है। जैसा कि पूँजी के स्टॉक और निवेश (विनियोग) के प्रवाह में संबंध है। अर्थव्यवस्था में पूँजी का स्टॉक केवल निवेश प्रवाह के अधिक होने से ही बढ़ सकता है अथवा नये पूँजी पदार्थों के उत्पादन और पूँजी पदार्थों के उपयोग के प्रवाह के अन्तर द्वारा बढ़ सकता है। परन्तु निवेश का प्रवाह स्वयं पूँजी स्टॉक के आकार पर निर्भर करता है। लेकिन स्टॉक प्रवाहों पर प्रभाव उस स्थिति में ही डाल सकते हैं जबकि समय अवधि इतनी लम्बी हो कि स्टॉक में इच्छानुसार परिवर्तन लाया जा सके। इस प्रकार प्रवाह अल्पकाल में स्टॉक में परिवर्तन द्वारा प्रभावित नहीं होते हैं।

स्टॉक एवं प्रवाह धारणाओं के संबंध में स्मरणीय तथ्य यह भी है कि हम आय को चाहे प्रति सेकण्ड या प्रतिदिन या प्रति माह अथवा प्रति वर्ष व्यक्त करें, इसका प्रवाह या तो समय के बिन्दु पर (point of time) तात्कालिक दर है अथवा यह समयान्तर (over a period of time) ऐसे तात्कालिक दरों की औसत है। संक्षेप में स्टॉक एवं प्रवाह चरों की धारणाओं का समष्टि अर्थशास्त्र में बहुत महत्व है। ये दोनों धारणाएँ आय, उत्पादन, रोजगार, ब्याज दर, व्यापार चक्र आदि आधुनिक सिद्धान्तों में प्रयुक्त की जाती हैं।

प्रश्न1: स्टॉक वेरिएबल्स और फ्लो वेरिएबल्स में क्या अंतर है?

2.4 समष्टि आर्थिक मॉडल

एक समष्टि आर्थिक मॉडल वास्तविक जगत की समस्या को शब्दों या समीकरणों और चित्रों के माध्यम से व्याख्या करता है। समष्टि आर्थिक मॉडल वास्तविक जगत का जानबूझकर सरलीकृत चित्रण करता है। इसमें एक समूह अथवा आर्थिक संबंधों के समूह शामिल होते हैं जिनमें एक चर सम्मिलित रहता है, जो कि मॉडल के किसी अन्य संबंध में भी पाया जाता है। उल्लेखनीय है कि एक अर्थशास्त्री जब एक समस्या पर कार्य करता है तो वह सबसे पहले एक गणितीय मॉडल तैयार करता है। यह गणितीय मॉडल उस घटना का वर्णन करता है जिसकी व्याख्या अर्थशास्त्री करना चाहता है। इसके साथ ही यह उन मान्यताओं (Assumptions) की भी व्याख्या करता है जो समस्या के साथ संबंधित रहती है।

सामान्यतः किसी भी गणितीय मॉडल में तीन अंश सम्मिलित होते हैं, ये निम्न प्रकार है
(i) एक निर्भर चर, अर्थात् व्याख्या की जाने वाली घटना,
(ii) एक अथवा अधिक स्वतंत्र चर, अर्थात् ऐसे तथ्य जो निर्भर चर के व्यवहार को निर्धारित करते
(iii) कुछ व्यावहारिक मान्यताएँ जो व्याख्यात्मक एवं निर्भर चरों के मध्य कारणात्मक (causal) संबंधों की प्रकृति की व्याख्या करती हैं।

उल्लेखनीय है कि एक मॉडल जिसका निर्माण अर्थशास्त्री करता है उसमें प्रायः व्यावहारिक संबंधों का एक सैट और संतुलन शर्तों का एक सैट सम्मिलित रहता है। सर्वप्रथम वह चरों और प्राचलों (Parameters) जिन्हें वह शामिल करना चाहता है. उनका पृथक-पृथक उल्लेख करता है। तत्पश्चात् मॉडल के परिचालन (Operation) के लिए आवश्यक शर्तों को सूत्रबद्ध करता है। ये निम्नवत हैं समष्टि अर्थशास्त्र तथा मुद्रा एवं बैंकिंग परिभाषाएँ या समानिकाएँ (Identities), फलनात्मक संबंध एवं संतुलन और असंतुलन शर्तें। जो कि आगे प्रवाह और स्टॉक शर्तों में विभक्त रहती है।

मॉडल निर्माण संबंधी धारणाएँ

मॉडल निर्माण में प्रयोग होने वाली धारणाएँ निम्न हैं:

1. मान्यताओं का एक सैट (A Set of Assumptions) -प्रत्येक मॉडल का निर्माण मान्यताओं के समूह पर आधारित होता है। जितनी मान्यताएँ सरल और थोड़ी होंगी, उतना ही मॉडल निर्मित करना आसान होगा।

2. प्राचल (Parameters) - प्राचल एक चिन्ह है जो किसी एक विशेष समस्या के लिए स्थिरांक होता है, परन्तु विभिन्न समस्याओं में भिन्न मूल्य मान सकता है। यद्यपि एक चर को भिन्न मूल्य दिए जा सकते हैं, फिर फिर भी यह मॉडल में एक स्थिरांक ही माना जाता है। इसलिए इसे प्राचलिक (parametric) स्थिरांक कहा जाता है। प्राचलों को सामान्य तौर से ऐसे चिन्हों द्वारा व्यक्त किया जाता है, जैसे a, b और c या a, ß और y.

3. स्थिरांक (Constants) - एक स्थिरांक वह होता है जिसका आकार या मात्रा परिवर्तित नहीं होती। इस प्रकार, यह एक चर का विपरीत है। जब एक चर को स्थिरांक के साथ जोड़ा जाता है, तो उस चर का गुणांक कहते हैं।

4. चर (Variables) - एक चर वह है जिसका आकार या मात्रा एक विचाराधीन निश्चित समय अवधि में परिवर्तित हो सकता है। इसके भिन्न मूल्य माने जा सकते हैं, जो प्रायः निश्चित होते हैं। प्रत्येक चर एक निश्चित चिह्न द्वारा व्यक्त किया जाता है।

एक मॉडल के निर्भर और स्वतंत्र चर हो सकते हैं। एक निर्भर चर वह होता है जिसका आकार या मात्रा किसी अन्य चर की मात्रा में परिवर्तनों से संबंद्ध होता है।

फिर, एक मॉडल के अन्तर्जात चर और बहिर्जात चर होते हैं। अन्तर्जात चर वे होते हैं जिनके मूल्य मॉडल के भीतर से निर्धारित होते हैं। दूसरी ओर, मॉडल में कुछ ऐसे भी चर हो सकते हैं जिनके मूल्य बाहरी शक्तियों द्वारा निर्धारित होते हैं। ऐसे बहिर्जात चर होते हैं। मॉडल निर्माण में प्रायः प्रयोग किए जाने वाले अन्तर्जात चर हैं: माँग, पूर्ति, राष्ट्रीय आय, उपभोग, बचत, निवेश आदि। जबकि बहिर्जात चर हैं: कीमत, आयात, निर्यात, लाभ,
आगम, श्रम-शक्ति, आविष्कार, तकनीकी परिवर्तन, आदि। फिर भी, एक चर जो एक मॉडल के लिए अन्तर्जात होता है, वह किसी अन्य मॉडल के लिए बहिर्जात हो सकता है।

आगे, प्रवाह चर और स्टॉक चर होते हैं। प्रवाह चर वह मात्रा है जिसे एक विशेष समय अवधि में मापा जा सकता है, जबकि स्टॉक चर वह मात्रा है जिसे एक विशेष समय पर मापा जा सकता है। मार्किट माँग और पूर्ति अनुसूचियाँ प्रवाह चर है, जबकि किसी विशेष समय पर एक वस्तु की मार्किट में उपलब्ध पूर्ति एक स्टॉक चर है। परन्तु एक विशेष चर प्रवाह और स्टॉक चर दोनों ही हो सकता है।

5. फलनात्मक संबंध (Functional Relationships) - दो चरों के बीच एक फलनात्मक संबंध तब पाया जाता है, जब एक चर के मूल्य में परिवर्तन अकेला ही अन्य चर के मूल्य में परिवर्तन को निर्धारित करता है। यदि, उदाहरणार्थ, हम प्रत्येक मूल्य को एक अकेला निश्चित -मूल्य नियत करते है, तब y एक फल हैx का जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है: y = f(x) जब एक बार हम प्रत्येक x फलन के लिए इन अकेले y को स्थापित कर लेते हैं, तो हम विपरीत संबंध नहीं ले सकते हैं कि एक फलन है y का।

f के अलावा, फलनों को अन्य चिह्नों द्वारा भी व्यक्त किया जाता है जैसे 8, F, G या ग्रीक शब्द * और अर्थशास्त्र में, बाएँ हाथ के शब्द को फलन के लिए पुनः संकेत-चिन्ह के रूप में लिखना प्रचलित है। इस प्रकार जब हम इस कथन को गणितीय रूप में व्यक्त करना चाहते हैं कि माँग कीमत पर निर्भर करती है, तो इसे इस प्रकार लिखा जा सकता है D D (P). माँग और कीमत के बीच यह फलन हमें स्मरण कराता है कि D निर्भर चर है और P स्वतंत्र चर, क्योंकि माँग फलन साधारण तौर से ऋणात्मक होता है, इसलिए रेंज सीमित होती है, $D = f(P) \geq 0$.

आर्थिक मॉडलों में, फलनात्मक संबंध एक अकेले स्वतंत्र चर तक ही सीमित नहीं है, जैसे D = f(P), बल्कि दो या अधिक स्वतंत्र चरों तक। सामान्य उत्पादन फलन हैQ = f (K, L), अर्थात् उत्पादन (2) पूँजी (K) और श्रम (L) की मात्राओं द्वारा निर्धारित होता है। इसी प्रकार, बहु-चर फलनात्मकसंबंध हो घ हो सकता है जिसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है: d = f (Paypr, 1), जहाँ

माँग (d) फलन है, कीमत (p), आय (v), संबंधित वस्तुओं की कीमतें (pr) और रुचियाँ (1).

6. समीकरण (Equations) - आर्थिक मॉडलों में तीन प्रकार के समीकरणों का प्रयोग किया जाता है: परिभाषिक, व्यावहारिक और संतुलन ।

पारिभाषिक समीकरण (Definitional Equation) - एक पारिभाषिक समीकरण एक ही अर्थ वाले दो वैकल्पिक व्यंजकों (expressions) के बीच एक संबंध का उल्लेख करता है। ऐसे समीकरण के लिए (समान रूप में बराबर) चिन्ह का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरणार्थ, कुल लाभ (x) को कुल लागत (C) के ऊपर कुल आगम (R) के आधिक्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसे = R - C लिखा जा सकता है। इसे समानिका (identity) या लेखा संबंध भी कहा जाता है, जो एक स्वयं सिद्धि (truism) को व्यक्त करता है।

व्यावहारिक समीकरण (Behavioural Equations) - एक व्यावहारिक समीकरण सदैव कुछ निश्चित मान्यताओं पर आधारित होता है जिस पर विचाराधीन चर का विशेष व्यवहार आधारित है।

निम्न माँग फलनों पर विचार कीजिए:

$$Qd = 800\text{-}16\ P \qquad (1)$$

$$Qd = 800\text{-}8\ P \qquad (2)$$

समीकरण (1) में ऊँची कीमत (रु.16) पर माँगी गई मात्रा कम होगी (50 कि.ग्रा.), जबकि समीकरण (2) में, कम कीमत (रु.8) पर माँगी गई मात्रा अधिक होगी (100 कि.ग्रा)। ये समीकरण इस मान्यता के आधार पर उपभोक्ताओं के व्यवहार को दर्शाते हैं कि जब कम कीमत होती है तो वे चाय की अधिक मात्रा खरीदकर और अधिक कीमत होने पर कम मात्रा खरीदकर अपनी संतुष्टियों को अधिकतम करते हैं।

एक व्यावहारिक समीकरण या तो मानव व्यवहार या गैर-मानव व्यवहार को व्यक्त कर सकता है। ऊपर का समीकरण जो चाय की माँग से संबंधित है, मानव व्यवहार को शामिल करता है। दूसरी ओर, जब एक फर्म की कुल लागत उत्पादन में परिवर्तनों द्वारा प्रभावित होती है, तो व्यावहारिक समीकरण का संघर्ष गैर-मानव व्यवहार से है। ऐसा व्यावहारिक समीकरण इस रूप में हो सकता है: $C = 120 + 12\ Q$

संतुलन शर्त (Equilibrium Condition) - जब एक मॉडल संतुलन के अध्ययन से संबंद्ध होता है, तो समीकरण संतुलन को प्राप्त करने की व्याख्या करता है उसे संतुलन स्थिति या शर्त कहते हैं। मार्किट मॉडल के लिए संतुलन स्थिति है: $Qd = Qs$

व्यावहारिक समीकरणों के आधार पर संतुलन स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। मान लीजिए कि मार्किट मॉडल के लिए व्यावहारिक समीकरण है:

$$Qd = 36-4P \quad (1)$$

$$Qs = 12+12P \quad ...(2)$$

$$Qd = Qs \quad (3)$$

समीकरण (1) और (2) को (3) में स्थानापन्न करने से,

$$36-4P = -12+12P$$

$$-4P-12P = 12-36$$

$$-16p = -48$$

$$P = 48/16 = 3$$

P के मूल्य को (1) और (2) समीकरणों में लगाने से, हमें संतुलन स्थिति प्राप्त होती है,

$$Qd = 36-4x3 = 24$$

$$Qs = -12+12x3 = 24$$

$$Qd = Qs = 24$$

प्रश्न2: राष्ट्रीय आय को किस वेरिएबल के रूप में मापा जाता है?

प्रश्न3: स्टॉक वेरिएबल का उदाहरण क्या है?

2.5 प्रत्याशित और यथार्थ चर

प्रत्याशित और यथार्थ शब्द लेटिन भाषा से लिये गये हैं तथा प्रत्याशित का अर्थ 'पहले से' (From before) और यथार्थ का अर्थ 'बाद में' (From after) है। सर्वप्रथम स्वीडिश अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र में इन शब्दों को प्रयोग किया था। उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग बचत निवेश में समानता और असमानता स्पष्ट करने के लिए किया।

प्रत्याशित चर वह हैं जो पूर्वानुमान, इच्छित, नियोजित व संभावी (Expected) हों, इनका एक ही अर्थ है। वहीं, यथार्थ चर वह होते हैं जो वास्तविक अथवा प्राप्त किये गए (Realised) हों। इनके भी अर्थ समान है। अतः प्रत्याशित बचत और निवेश वे हैं, जो योजनाबद्ध हों अथवा जिन्हें लोग करना चाहते हैं। जबकि यथार्थ बचत और निवेश वे हैं, जो लोगों द्वारा वास्तव में किये जाते हैं। प्रायः हम अपनी वास्तविक बचत के बराबर नहीं होती है। चूँकि यदि आय बढ़ जाती है तो हम अधिक बचत करते है। चूँकि आय कम हो तो बचत कम करते हैं। इसी तरह, एक उद्यमी किसी व्यवस्था में निवेश करने की जितनी प्रत्याशा रखता है वह वास्तविक निवेश से कम या अधिक हो सकती है। अतः एक निश्चित समयावधि के आरंभ में इन चरों में होने वाले अनुमानों को प्रत्याशित अर्थ में लिया

जाता है। किन्तु एक निश्चित समयावधि के बाद इन चरों में हुए परिवर्तनों को यथार्थ अर्थ में लिया जाता है। संक्षेप में दोनों चरों के बीच यही अंतर होता है।

स्वीडन के अर्थशास्त्रियों का मत है कि यर्थाथ बचत और यर्थाथ निवेश हमेशा बराबर होते हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्याशित बचत और प्रत्याशित निवेश भी बराबर रहें। क्योंकि जो व्यक्ति बचत की योजना बनाते हैं तथा जो व्यक्ति निवेश की योजना बनाते हैं, वे अलग-अलग होते हैं। यदि प्रत्याशित बचत से प्रत्याशित निवेश बढ़ जाए तो व्यावसायिक गतिविधि का प्रसार होगा तथा आय बढ़ेगी। आगे बढ़ी हुई आय में से जो बचत होगी वह यर्थाथ बचत को बढ़ाकर यर्थाच निवेश के स्तर तक पहुँचा देगी। फलस्वरूप आय के उच्चतम स्तर पर दोनों बराबर हो जाते हैं। इसके विपरीत, जब यर्थाथ निवेश से यर्थाथ बचत बढ़ जायेगी तो व्यावसायिक गतिविधि कम हो जायेगी तथा आय घट जायेगी। घटी हुई आय में से जो बचत होगी वह यर्थाथ बचत को घटाकर यर्थाथ निवेश के स्तर पर ले जायेगी। फलस्वरूप आय के निम्न स्तर पर दोनों बराबर हो जायेंगे। संक्षेप में यर्थाथ बचत केवल तभी यर्थाथ निवेश के बराबर होगी जब आय स्थिर होगी तथा ये उस अवस्था बराबर होते हैं जब अर्थव्यवस्था संतुलन (Equilibrium) में रहती है।

असंतुलन की स्थिति में एक चर का यर्थाथ मूल्य उसके प्रत्याशित मूल्य से भिन्न रहेगा। जब बचत आयोजित निवेश से अधिक रहती है तब प्रत्याशित निवेश वास्तविक निवेश से कम होता है। इस दशा में, व्यावसायिक फर्म संतुलन में नहीं होगी तथा अपनी उत्पादन योजनाओं को आगामी समयावधि में परिवर्तित करेंगी। इससे संतुलन नहीं हो सकेगा। उल्लेखनीय है कि चरों के आयोजित निवेश, पूँजीगत वस्तुओं की माँग को निर्धारित करते हैं। अतः साम्य या संतुलन के लिए यह जरूरी होता है कि प्रत्येक चर की प्रत्याशित एवं वास्तविक मात्राओं के मध्य समानता रहे। किन्तु यह उस दशा में ही संभव होगा जबकि सभी प्रत्याशाएँ सभी आयोजनों के साथ मेल खाती हों। इस स्थिति में प्रत्याशित आय वास्तविक आय के बराबर होगी तथा फर्मों की प्रत्याशित बिक्री उनकी वास्तविक बिक्री के बराबर रहेगी। संक्षेप में स्वीडिश अर्थशास्त्रियों ने प्रत्याशित तथा यर्थाथ चर धारणाओं का प्रयोग बचत निवेश में समानता तथा असमानता को समझाने के लिए किया है।

प्रश्न 4: फ्लो वेरिएबल का उदाहरण दें।

2.6 सार संक्षेप

मैक्रोइकॉनॉमिक्स में, स्टॉक और फ्लो वेरिएबल्स दो महत्वपूर्ण श्रेणियाँ हैं, जो अर्थव्यवस्था की स्थिति और गतिविधियों को समझने में मदद करती हैं।

स्टॉक वेरिएबल्स वह मानक होते हैं जिन्हें एक निश्चित समय पर मापा जाता है। ये स्थिर होते हैं और समय के साथ धीरे-धीरे बदलते हैं। उदाहरण के तौर पर, राष्ट्रीय संपत्ति, पूंजी स्टॉक, राष्ट्रीय ऋण आदि को स्टॉक वेरिएबल्स के रूप में मापा जाता है। यह किसी विशेष समय पर उपलब्ध संसाधनों या कर्ज की स्थिति को दर्शाते हैं।

फ्लो वेरिएबल्स उन मानकों को दर्शाते हैं जो किसी विशेष समय अवधि (जैसे एक वर्ष, तिमाही, माह) में होते हैं। ये निरंतर बदलते रहते हैं और समय के साथ अर्थव्यवस्था की गतिविधियों को दिखाते हैं। जैसे राष्ट्रीय आय, सरकारी खर्च, निवेश और निर्यात-आयात जैसे फ्लो वेरिएबल्स होते हैं।

दोनों वेरिएबल्स एक-दूसरे से जुड़े होते हैं और मिलकर अर्थव्यवस्था की समग्र स्थिति का मूल्यांकन करते हैं। स्टॉक वेरिएबल्स से दीर्घकालिक स्थिति का पता चलता है, जबकि फ्लो वेरिएबल्स से तात्कालिक आर्थिक गतिविधियों की जानकारी मिलती है। इनका अध्ययन अर्थव्यवस्था के संतुलन और विकास को समझने में सहायक होता है।

2.7 मुख्य शब्द

1. **स्टॉक वेरिएबल (Stock Variable)**: यह वह वेरिएबल है जो किसी विशेष समय पर मापा जाता है, जैसे राष्ट्रीय संपत्ति, पूंजी स्टॉक, और ऋण।
2. **फ्लो वेरिएबल (Flow Variable)**: यह वह वेरिएबल है जिसे किसी विशेष समय अवधि के दौरान मापा जाता है, जैसे राष्ट्रीय आय, निवेश, और सरकारी खर्च।
3. **राष्ट्रीय आय (National Income)**: एक देश की कुल आर्थिक गतिविधि को मापने वाला फ्लो वेरिएबल, जो आमतौर पर एक वर्ष में मापा जाता है।
4. **ऋण (Debt)**: स्टॉक वेरिएबल, जो किसी देश, संस्था या व्यक्ति पर बकाया राशि को दर्शाता है।
5. **निवेश (Investment)**: फ्लो वेरिएबल, जो किसी विशेष समय अवधि के दौरान पूंजी में वृद्धि या नई पूंजी का निवेश दर्शाता है।
6. **बचत (Savings)**: वह राशि जो किसी व्यक्ति, परिवार या देश द्वारा खर्च नहीं की जाती और भविष्य के लिए बचाकर रखी जाती है, जिसे फ्लो वेरिएबल के रूप में मापा जाता है।
7. **मुद्रास्फीति (Inflation)**: एक आर्थिक प्रक्रिया, जो कीमतों के सामान्य स्तर में वृद्धि को दर्शाता है, यह आमतौर पर फ्लो वेरिएबल के रूप में मापी जाती है।
8. **विनिमय दर (Exchange Rate)**: एक मुद्रा का अन्य मुद्रा के मुकाबले मूल्य, जो अर्थव्यवस्था के फ्लो को प्रभावित करता है।

9. **शुद्ध निर्यात (Net Exports)**: निर्यात और आयात के अंतर को दर्शाता है, जो एक फ्लो वेरिएबल है।

2.8 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: स्टॉक वेरिएबल्स वह होते हैं जो किसी विशेष समय पर मापे जाते हैं, जैसे राष्ट्रीय ऋण या पूंजी स्टॉक। फ्लो वेरिएबल्स वह होते हैं जो किसी विशिष्ट समय अवधि में मापे जाते हैं, जैसे राष्ट्रीय आय या निवेश।

उत्तर 2: राष्ट्रीय आय एक फ्लो वेरिएबल है, क्योंकि इसे एक निश्चित समय अवधि (जैसे एक वर्ष) में मापा जाता है।

उत्तर 3: राष्ट्रीय ऋण एक स्टॉक वेरिएबल है, क्योंकि यह किसी विशेष समय पर मापा जाता है और स्थिर रहता है।

उत्तर 4: निवेश एक फ्लो वेरिएबल है, क्योंकि इसे किसी निश्चित समय अवधि के दौरान मापा जाता है।

2.10 *संदर्भ सूची*

- गुप्ता, वी. (2022). भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और विकास. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- शर्मा, ए. (2021). भारतीय अर्थव्यवस्था और उसका वैश्विक दृष्टिकोण. मुंबई: पेंगुइन इंडिया।
- तिवारी, आर. (2023). भारत में आर्थिक असमानता: कारण और समाधान. दिल्ली: रीडर पब्लिकेशंस।
- चौहान, एस. (2019). आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था: विचार और सिद्धांत. कोलकाता: प्रोफेशनल पब्लिशर्स।
- यादव, प. (2020). समाज और अर्थव्यवस्था: एक अंतःसंबंधी दृष्टिकोण. पटना: पुस्तक महल।

2.10 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. स्टॉक और प्रवाह धारणाओं की विवेचना कीजिए। समष्टि अर्थशास्त्र में इनका क्या महत्व है?

2. एक समष्टि आर्थिक मॉडल से आप क्या समझते है? मॉडल के निर्माण की विभिन्न धारणाएँ कौन-सी है?

3. प्रत्याशित और यर्थाथ चरों में अंतर बताइये। समष्टि अर्थशास्त्र में इन चरों का क्या महत्व है?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. स्टॉक और प्रवाह धारणाओं से आप क्या समझते हैं?
2. समष्टि आर्थिक मॉडल क्या है?
3. प्रत्याशित और यर्थाथ (वास्तविक) चर में भेद कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. एक निर्दिष्ट समय पर वस्तु की संचय की गई मात्रा क्या कहलाती है-

(अ) प्रवाह (ब) स्टॉक

(स) प्राचल (द) स्थिरांक ।

2. एक वस्तु के चालू उत्पादन की मात्रा से एक मात्रा बाजार में से गति करती है, वह कहलाती है-

(अ) प्रवाह (ब) स्टॉक

(स) समूह (द) उपर्युक्त कोई नहीं।

उत्तर- 1. (ब), 2. (अ)]

इकाई -3
आय का चक्रीय प्रवाह
(CIRCULAR FLOW OF INCOME

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 आय का चक्रीय प्रवाह
3.4 विभिन्न क्षेत्रों में आय का चक्राकार प्रवाह
3.5 आय प्रवाह के आकार को प्रभावित करने वाले तत्व
3.6 आय के चक्राकार प्रवाह की सीमाएं या आलोचनाएँ
3.7 आय के चक्राकार प्रवाह के अध्ययन का महत्व
3.8 सार संक्षेप
3.9 मुख्य शब्द
3.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ सूची
3.12 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

आय का परिपत्र प्रवाह एक आर्थिक मॉडल है, जो दिखाता है कि विभिन्न आर्थिक एजेंट्स जैसे घराने, कंपनियाँ, सरकार और विदेशी क्षेत्र, एक दूसरे के बीच आय का आदान-प्रदान कैसे करते हैं। इसमें घराने अपने श्रम, पूंजी, और संसाधनों को कंपनियों को प्रदान करते हैं, और बदले में कंपनियाँ घरानों को मजदूरी, लाभ, और किराया देती हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय और व्यय का निरंतर प्रवाह होता रहता है। राष्ट्रीय आय वह कुल आय है जो एक देश के निवासियों द्वारा एक निश्चित अवधि में प्राप्त की जाती है। इसके प्रमुख घटक हैं:

1. **सकल घरेलू उत्पाद (GDP)** - यह एक देश में उत्पादन की गई सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य होता है।
2. **सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)** - यह GDP में उस देश के बाहरी क्षेत्र से प्राप्त आय (जैसे विदेशों में निवेश से होने वाली आय) को जोड़कर प्राप्त किया जाता है।

राष्ट्रीय आय को तीन प्रमुख दृष्टिकोणों से मापा जाता है:

1. **उत्पादन दृष्टिकोण (Production Approach)** - इसमें कुल उत्पादन को मापा जाता है।
2. **आय दृष्टिकोण (Income Approach)** - इसमें सभी प्रकार की आय (मजदूरी, लाभ, किराया आदि) को जोड़ा जाता है।
3. **व्यय दृष्टिकोण (Expenditure Approach)** - इसमें कुल खर्च (उपभोग, निवेश, सरकारी खर्च आदि) को जोड़ा जाता है।

भारत में राष्ट्रीय आय का अनुमान भारत सरकार के सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय द्वारा किया जाता है। इसके लिए हर क्षेत्र की उत्पादन गतिविधियों का मूल्यांकन किया जाता है और तंत्र की मदद से आय का अनुमान लगाया जाता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. अर्थव्यवस्था के चक्रीय प्रवाह को समझ सकें।
4. आर्थिक योजनाओं और नीतियों के प्रभाव का विश्लेषण कर सकें।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्र के योगदान का मूल्यांकन कर सकें।
6. बेरोजगारी, मुद्रास्फीति और विकास दर जैसे आर्थिक सूचकांकों का विश्लेषण कर सकें।
7. भारतीय अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप और निजी क्षेत्र की भूमिका का मूल्यांकन कर सकें।
8. भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास की दिशा और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकें।
9. भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष आने वाली चुनौतियों और अवसरों को पहचान सकें।

3.3 आय का चक्रीय प्रवाह

उत्पादन के विभिन्न साधनों के पारस्परिक सहयोग से वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है और परिणामस्वरूप उत्पादन में लगे साधनों के स्वामियों को उत्पादक पुरस्कार देता है। यह पुरस्कार भूमि स्वामी को लगान, पूंजीपति को ब्याज, श्रमिक को मजदूरी और साहसी को लाभ के रूप में मिलता है। उत्पादन में लगे उक्त साधनों के

स्वामी केवल साधनों के पूर्तिकर्ता ही नहीं हैं वरन् वे उपभोक्ता भी होते हैं। अतः साधनों के स्वामियों को जो आय मिलती है, उसे वे अपने उपभोग पर व्यय करते हैं। इस प्रकार व्यावसायिक फर्में जिन वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करती हैं, साधनों के स्वामी उन्हें प्राप्त पुरुस्कार उत्पादकों को देकर वस्तुएं व सेवाएं क्रय करके उनका उपभोग करते हैं। बिक्री से प्राप्त आय से उत्पादक पुनः उत्पादन करते हैं और साधनों के स्वामी पुनः उन्हें खरीदकर उनका उपभोग करते हैं। इस प्रकार 'आय' उत्पादक या फर्म से साधन स्वामियों या परिवार के पास तथा साधन स्वामियों से उत्पादक के पास चक्कर लगाती है। इस क्रिया को आय का चक्राकार प्रवाह कहते हैं।

इस प्रकार आर्थिक क्रियाएं उत्पादक (फर्म) एवं साधन स्वामियों के सहयोग से सम्पन्न होती है।

उत्पादक क्षेत्र या फर्म अर्थ व्यवस्था की उत्पादन से सम्बन्धित क्रियाओं का प्रतिनिधित्व करती है। यह क्षेत्र उत्पादन के विभिन्न साधनों का संग्रह कर वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करता है। फर्म के अन्तर्गत औद्योगिक, व्यापारिक, वित्तीय एवं कृषि कार्य से साधन स्वामी या परिवार क्षेत्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में उपभोग की मूल इकाई है। यह क्षेत्र वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन के लिए आवश्यक साधनों, यथा भूमि, श्रम, पूंजी, संगठन आदि की पूर्ति करता है। अपनी सेवाओं के बदले इन्हें लगान, मजदूरी, ब्याज एवं लाभ के रूप में आय प्राप्त होती है। परिवार क्षेत्र बचत का प्रमुख स्त्रोत होता है। इस क्षेत्र की बचत को वित्तीय संस्थाएं एकत्र करने निवेश के लिए उपयोग में लाती हैं।

उपयुक्त दो क्षेत्रों के साथ-साथ सरकार की क्रियाएं भी आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करती हैं। निर्वाधावादी नीति के अन्तर्गत सरकार की क्रियाएं अत्यधिक सीमित रहती हैं। किन्तु, 1930 की आर्थिक मन्दी के बाद राज्य की आर्थिक क्रियाओं में, बहुत अधिक विस्तार हुआ। उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण के बाद सरकार की आर्थिक क्रियाओं में कुछ अंकुश अवश्य लगा है।

आय के चक्राकार प्रवाह को निम्न चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है

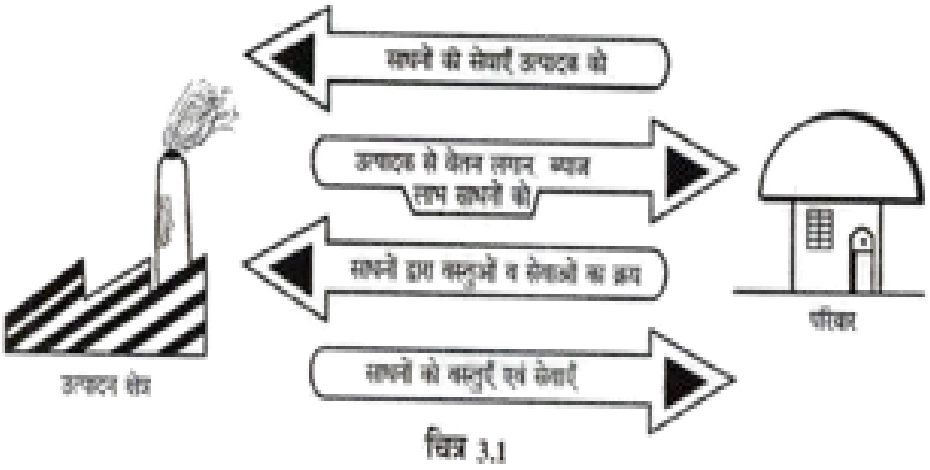

चित्र 3.1

प्रो. लिप्से ने आय के चक्राकार प्रवाह की परिभाषा देते हुए कहा है कि "आय का चक्राकार प्रवाह घरेलू फर्मों एवं घरेलू परिवारों के बीच भुगतानों और प्राप्तियों का प्रवाह होता है।"

3.4 *विभिन्न क्षेत्रों में आय का चक्राकार प्रवाह*

उत्पादन के साधनों की आय आधुनिक समय में मुद्रा में चुकाई जाती है। चूँकि यह आय एक निश्चित चक्र में घूमती है, अतः इसे मुद्रा या आय का चक्राकार प्रवाह कहते हैं। ये चक्राकार प्रवाह निम्नलिखित हैं-

1. दो क्षेत्रों वाली अर्थव्यवस्था में आय या मुद्रा प्रवाह (Circular Flow of Income or Money in Two Sectors Economy) इस दशा में उत्पादन के दो क्षेत्र होते हैं, यथा (i) साधन बाजार और (i) वस्तु बाजार। इन दोनों क्षेत्रों में आय का प्रवाह निम्न प्रकार रहता है: -

(i) साधन बाजार (Factor Market) - इसमें श्रम, पूँजी, भूमि, संगठन एवं साहसी होते हैं, जिन्हें मजदूरी, ब्याज, लगान, वेतन एवं लाभ मिलता है। इस दशा में आय प्रवाह कारखानों या निर्मित वस्तु बाजार से साधनों की ओर होता है। जब साधनों को आय प्राप्त होती है तब वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये निर्मित बाजार से वस्तुएं एवं सेवाएं क्रय करते हैं। इस दशा में आय का प्रवाह साधन बाजार से निर्मित वस्तुओं के बाजार की ओर होता है।

(ii) वस्तु बाजार (Commodity Market) - विनिर्मित बाजार जब वस्तुएं और सेवाओं को बेचकर आय प्राप्त करता है, तब आय का प्रवाह साधन बाजार से विनिर्मित बाजार की ओर होता है। इसके विपरीत जब विनिर्मित बाजार साधनों को पुरस्कार देता है तो आय का प्रवाह विनिर्मित बाजार से साधन बाजार की ओर होता है। इस चक्राकार प्रवाह को निम्न चित्र में दर्शाया गया है-

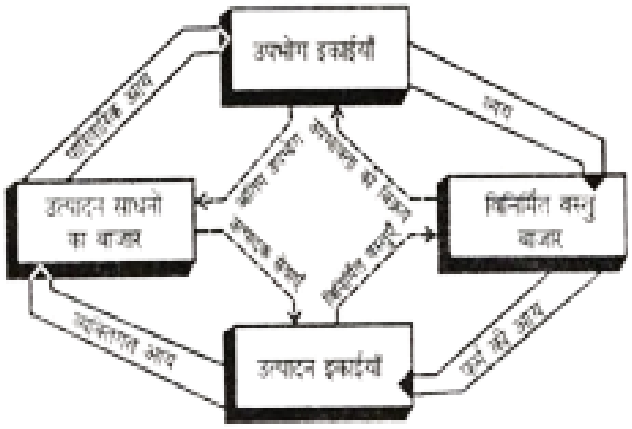

रेखाचित्र - 1

रेखा चित्र- एक के अनुसार अर्थव्यवस्था में विनिमय अथवा आय प्रवाह दो विपरीत दिशाओं में कभी समाप्त न होने वाले चक्र के रूप में चलता रहता है। इसमें से प्रथम प्रवाह चक्र उन वस्तुओं और सेवाओं का होता है जो उत्पादन के साधनों की क्रियाओं से प्रारंभ होता है, अर्थात उत्पादक अपनी निर्मित वस्तुओं को बाजार में भेजते हैं, वहां से उपभोक्ता उन्हें खरीद कर उपभोग करते हैं। यह उपभोग उत्पादन के साधनों के द्वारा किया जाता है।

दूसरा प्रवाह चक्र - उत्पादन इकाइयों को व्यक्तिगत आय मिलती है। यह आय उत्पादन के साधनों की बाजार में पूर्ति करती है। साधनों की पूर्ति से पारिवारिक आय प्राप्त होती है, जिससे उत्पत्ति साधन, उपभोग इकाइयाँ खरीदते हैं। उत्पत्ति के साधनों द्वारा निर्मित वस्तुएं क्रय करने से फर्म को आय होती है। जिससे वह पुनः उत्पत्ति के साधनों की सेवाएं क्रय करती हैं।

संक्षेप में, आय का प्रथम चक्र वस्तुओं और सेवाओं का होता है जो उत्पादन के साधनों की क्रियाओं का परिणाम है। इसे वस्तु प्रवाह चक्र कहते हैं। इसके विपरीत, दूसरा प्रवाह चक्र मुद्रा भुगतानों के कारण होता है। अतः इसे आय या मुद्रा प्रवाह चक्र कहते हैं।

प्रश्न 1: चक्रीय प्रवाह (Circular Flow) का क्या अर्थ है?

आय के चक्राकार प्रवाह में परिवर्तन

(Changes in Circular Flow of Income)

आय के चक्राकार प्रवाह में निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं -

(अ) साम्य की दशा में आय का चक्राकार प्रवाह (Circular Flow of Income at Equilibrium) - अर्थव्यवस्था में वस्तु-प्रवाह एवं आय प्रवाह साम्य में होने पर मूल्य स्थिर होते हैं। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन और आय भी स्थिर दशा में होती है। इससे

उत्पादन और उपभोग सुचारु रूप से चलता है। यह दशा किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए आदर्श दशा होती है, किन्तु यह दशा सदैव विद्यमान नहीं रहती है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति एवं मुद्रा विस्फीति की दशाएं आती रहती हैं। इसलिए आय प्रवाह का साम्य की दशा में परिवर्तन होता रहता है।

(ब) मुद्रा स्फीति और आय का चक्राकार प्रवाह (Inflation and Circular Flow of Income)- यदि अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति हो जाय तो आय के चक्राकार प्रवाह में परिवर्तन उत्पन्न हो जाता है। मुद्रा स्फीति वह दशा है जिसमें अर्थव्यवस्था में बहुत अधिक मुद्रा तथा बहुत कम वस्तुओं की स्थिति पैदा हो जाती है। ऐसी दशा में आय के चक्राकार प्रवाह में विघ्न उत्पन्न हो जाता है। लोगों की आय के अधिक व्यय होने से उनकी प्रभावपूर्ण मांग भी अधिक होती है। इससे मुद्रा के प्रवाह का आकार बढ़ जाता है और परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में रोजगार, आय व कीमतें भी बढ़ जाती है तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था स्फीतिकारी भंवर में फँस जाती है। मुद्रा स्फीति में आय का चक्राकार प्रवाह अत्यधिक तीव्र गति से चलता है जिससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था स्फीतिकारी संकट की ओर बढ़ती रहती है। इसे रेखा चित्र - दो के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:-

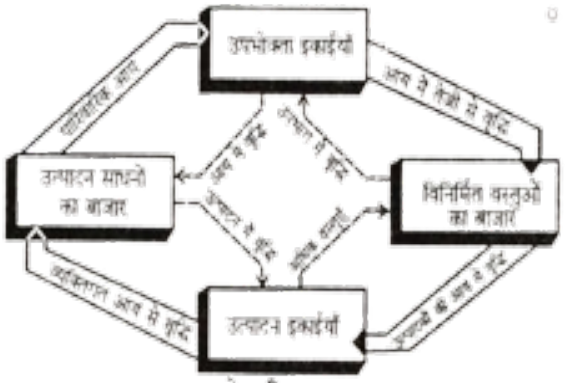

रेखाचित्र - 2

(स) मुद्रा विस्फीति और आय का चक्राकार (Deflation and Circular Flow of Income) - मुद्रा विस्फीति में मुद्रा के चक्राकार प्रवाह का वेग कमजोर हो जाता है। इसमें अनेक आर्थिक रोग जैसे कीमतों में गिरावट, अति उत्पादन, बेरोजगारी आदि उत्पन्न हो जाते हैं। इससे मुद्रा के चक्राकार प्रवाह में कमी आती है। मुद्रा विस्फीति में, लोग उपभोक्ता वस्तुओं पर अपनी आय का कम भाग व्यय करते हैं

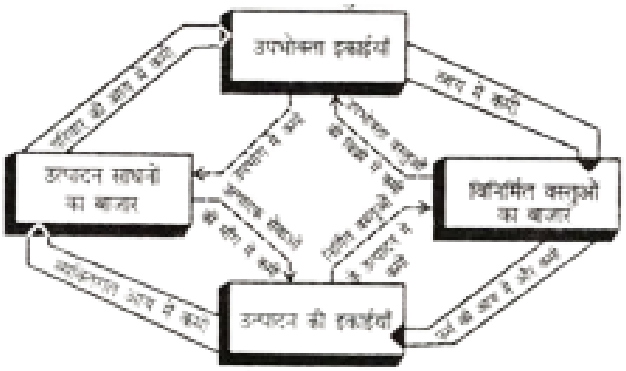

रेखाचित्र - 3

जिससे अर्थव्यवस्था में प्रभावपूर्ण माँग कम हो जाती है। अर्थव्यवस्था में प्रभावपूर्ण मांग के कम होने से उत्पत्ति के साधनों की मांग में भी कमी आती है। फलतः बेरोजगारी की स्थिति पैदा होती है और साधनों की आय में भी कमी हो जाती है। इसे रेखा चित्र तीन की सहायता से समझा जा सकता है: -

मुद्रा विस्फीति में आय के चक्राकार प्रवाह के उक्त चित्र से यह स्पष्ट है कि आय के बाह्य प्रवाह चक्र के अनुसार उत्पादन इकाइयों को कम व्यक्तिगत आय मिलती है। जिससे परिवार की आय एवं व्यय कम हो जाते है। इससे बाजार में वस्तुओं की मांग में कमी आती है और परिणामस्वरूप उत्पादक फर्मों की आय भी घट जाती है। इस प्रकार मुद्रा विस्फीति आय प्रवाह को धीमा कर देती है।

आय के आन्तरिक प्रवाह चक्र के अनुसार उत्पादन की इकाइयाँ कम वस्तुओं का उत्पादन करती है। फलतः कम निर्मित वस्तुएँ, वस्तु बाजार में जाती है, जिससे उनकी बिक्री कम होती है और कुल उपभोग कम हो जाता है। इससे उत्पादक द्वारा उत्पत्ति के साधनों की मांग भी घट जाती है।

(द) बचत एवं विनियोग तथा आय का चक्राकार प्रवाह (Saving Investment and Circular Flow of Income) उत्पादक क्षेत्र, सरकारी क्षेत्र एवं परिवार क्षेत्र को उत्पादन क्रियाओं से जो आय प्राप्त होती है वह सभी साधन सेवाओं के भुगतान तथा उपभोग पर व्यय नहीं की जाती है। दोनों ही क्षेत्र अपनी आय का एक भाग बचत के रूप में पूंजी बाजार

में जमा करते हैं। पूंजी बाजार का अर्थ उन सभी संस्थाओं से लिया जाता है जो उधार देय धन का लेन-देन करती हैं, जैसे-बीमा कम्पनी, बैंक आदि। पूंजी बाजार में एकत्रित बचतों का उपयोग उत्पादक क्षेत्र द्वारा विनियोग के लिए किया जाता है। इससे भी आय का चक्राकार प्रवाह उत्पन्न होता है।

अर्थव्यवस्था में उत्पादन के दौरान प्राप्त आय का एक भाग परिवार क्षेत्र तथा उत्पादक क्षेत्र की बचत के रूप में पूँजी बाजार में पहुंच जाता है। यह भाग पुनः विनियोग हेतु उत्पादन क्षेत्र द्वारा लिये गये ऋणों के रूप में अर्थव्यवस्था में प्रवाहित हो जाता है।

(2) तीन क्षेत्र वाली बन्द अर्थव्यवस्था में चक्राकार आय प्रवाह (Circular Flow of Income in the Three Sectors Economy) - एक बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy) वह अर्थव्यवस्था है जिसमें आर्थिक गतिविधियों अपने ही देश तक सीमित रहती हैं। बन्द अर्थव्यवस्था का विश्व के अन्य देशों से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किसी भी प्रकार के आर्थिक सम्बन्ध नहीं रहते हैं। इस दशा में देश के सामने न तो वस्तुओं और सेवाओं के आयात के भुगतान की समस्या होती है और न ही निर्यातों से प्राप्त आय की समस्या। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय ऋण भी लिया अथवा दिया नहीं जाता है। इस अर्थव्यवस्था में पूंजी आन्तरिक बाजार से ही संचित की जाती है। इस प्रकार आन्तरिक पूंजी स्त्रोत होते हैं: (1) व्यक्तिगत बचतें, (ii) व्यावसायिक बचतें एवं (iii) राज्य की बचते। आन्तरिक पूंजी का विनियोग व्यावसायिक फर्मों में किया जाता है। दो क्षेत्र वाली अर्थव्यवस्था में बचत एवं निवेश की क्रियाओं का संचालन रेखा चित्र-चार के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

तीन क्षेत्र वाली अर्थव्यवस्था में आय का चक्राकार प्रवाह तीन घटकों के मध्य होता है। ये घटक हैं (1) परिवार क्षेत्र, (II) उत्पादन क्षेत्र या व्यावसायिक आय क्षेत्र, और (III) सरकार। इन घटकों के मध्य चक्राकार आय का प्रवाह निम्न प्रकार से संचालित होता है: -

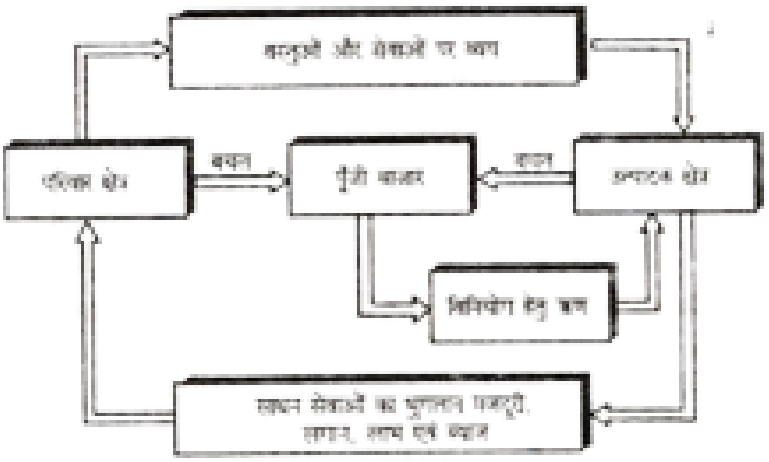

रेखाचित्र - 4

(I) पारिवारिक क्षेत्र (Household Sector)- इस क्षेत्र में परिवार के व्यक्ति ही उत्पादन के साधनों के मौलिक स्वामी होते हैं एवं उनके पूर्तिकर्ता के रूप में

व्यावसायिक फर्मों अर्थात उत्पादन क्षेत्र को सेवाएं देकर आय प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य
द्वारा पारिवारिक क्षेत्र के कल्याण के लिए सामाजिक सेवाओं पर व्यय अथवा आय हस्तान्तरण के रूप में भी आय प्रवाह होता है।

इस प्रकार पारिवारिक क्षेत्र को तीन प्रवाहों से आय प्राप्त होती हैं (i) साधनों का पुरस्कार, (ii) सरकार द्वारा सेवाओं पर व्यय (iii) राज्य द्वारा आय का हस्तान्तरण। इन प्रवाहों से प्राप्त आय को परिवार, उत्पादन क्षेत्र या व्यावसायिक फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदने के लिए व्यय करते हैं। ये आय का कुछ भाग सरकार को करों के रूप में देते हैं और शेष बचतों को पूंजी बाजार में प्रवाहित कर देते हैं। संक्षेप में, परिवार अपनी आय को तीन क्षेत्रों उपभोग, कर और बचत, में प्रवाहित करती है।

(II) उत्पादन क्षेत्र अथवा व्यावसायिक क्षेत्र की आय (Income of the Production or Commercial Sector) - उत्पादन क्षेत्र (व्यावसायिक फर्मे) अपने द्वारा उत्पादित वस्तुएं एवं सेवाएं परिवारों तथा सरकार को बेचकर आय प्राप्त करता है। उत्पादन क्षेत्र को आर्थिक अनुदान तथा सहायता के रूप में भी आय प्राप्त होती है। इसके अलावा पूंजी बाजार से भी विनियोग के रूप में इन्हें आय प्राप्त होती है। संक्षेप में, व्यावसायिक फर्मों के आय प्रवाह के चार स्त्रोत हैं (अ) उपभोक्ताओं द्वारा वस्तुओं और सेवाओं का क्रय, (ब) सरकार द्वारा वस्तुओं और सेवाओं का क्रय, (स) राज्य द्वारा अनुदान एवं सहायता और (द) पूंजी बाजार में विनियोग से प्राप्त लाभ।

इसके विपरीत उत्पादन क्षेत्र (व्यावसायिक फर्म) से आय का प्रवाह परिवारों, केन्द्र, राज्य व स्थानीय सरकारों एवं पूंजी बाजार की ओर होता है। क्योंकि फर्मे उत्पादन के साधनों को उनकी सेवाओं के बदले में पुरस्कार देती हैं, सरकार को कर चुकाती है तथा बचतों को पूंजी बाजार में पूंजी के रूप में प्रवाहित करती हैं।

(III) सरकार (Government) - सरकार से आय प्रवाह, परिवारों, व्यावसायिक फर्मों एवं पूंजी बाजार की ओर होता है। राज्य की ओर से परिवारों की ओर होने वाला आय प्रवाह सामाजिक सेवाओं के व्यय (G1) तथा आय हस्तान्तरण (G2) के रूप में होता है। व्यावसायिक फर्मों की ओर आय का यह प्रवाह वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय (G3) तथा व्यावसायिक फर्मों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता (G4) के रूप में होता है। इसके अतिरिक्त राज्य की बचतें पूँजी बाजार की ओर भी प्रवाहित होती हैं।

इसके विपरीत सरकार की ओर आय का प्रवाह भी होता है। राज्य को आय का यह प्रवाह व्यक्तिगत करों (t1), व्यावसायिक फर्मों के करों (t2) तथा पूंजी बाजार के ऋणों से प्राप्त आय (t3) के रूप में होता है।

संक्षेप में, राज्य का कुल व्यय (G) सार्वजनिक सेवाओं पर व्यय (G1) + आय के हस्तान्तरण (G2) + वस्तुओं पर राजकीय व्यय (G3) + फर्मों को अनुदान सहायता (G4)

राज्य की कुल आय (T) = व्यक्तिगत करों से आय (T1) व्यापारिक फर्मों के करों से आय (T2) + पूंजी बाजार के ऋणों से प्राप्त आय (T3) होगी। यदि T>G है (आय अधिक है व्यय से) तो बचत अधिक होगी तथा T< G (आय कम है व्यय से) तो सरकार पूंजी बाजार से ऋण लेकर व्यय की पूर्ति करती है।

रेखाचित्र 5 से स्पष्ट है कि आय का प्रवाह परिवारों, व्यावसायिक फर्मों, पूंजी बाजार तथा राज्य के मध्य अनवरत होता है किन्तु ये चक्राकार प्रवाह तभी अनवरत चलते हैं जब बचत और विनियोग बराबर (S = 1) हों और राज्य के बजट भी संतुलित रहें। बजट में घाटा बताने पर मुद्रा की पूर्ति बढ़ती है जिससे मुद्रा स्फीति होती है और मूल्य बढ़ते हैं। इसके विपरीत बचत का बजट बनाने पर मुद्रा की पूर्ति कम होती है और मुद्रा संकुचन होता है जिससे कीमतें कम हो जाती है।

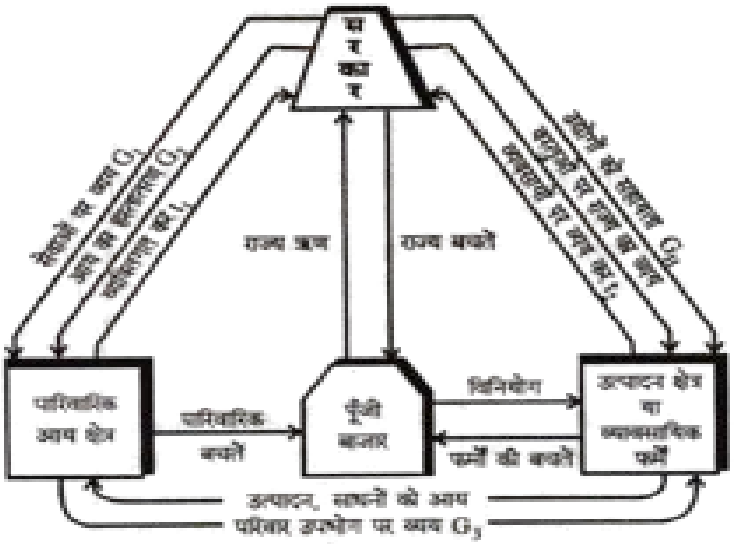

रेखाचित्र - 5

बन्द अर्थव्यवस्था में उक्त तीनों घटकों की आय के प्रवाह को निम्न चित्र से दर्शाया जा सकता हैं।

(3) चार क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था अथवा खुली अर्थव्यवस्था में मुद्रा एवं आय का चक्रीय प्रवाह (Four Sectors Economy or An Open Economy and Circular Flow of Money and Income) - एक खुली अर्थव्यवस्था वह है जिसका विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध रहता है अर्थात जिसकी आर्थिक क्रियाएं अथवा गतिविधियाँ केवल देश के आन्तरिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहतीं वर्न अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक फैली रहती हैं।

आधुनिक काल में संसार के सभी देशों में कमोवेश आर्थिक एवं राजनैतिक सम्बन्ध हैं। विदेशी व्यापार के कारण आय का प्रवाह प्रारंभ हो जाता है। इस प्रकार इस अर्थव्यवस्था में आय के चार घटक काम करते हैं। ये घटक हैं (1) परिवार, (2) व्यावसायिक फर्मे, (3) सरकार और (4) शेष संसार। खुली अर्थव्यवस्था में प्रथम तीन घटकों के मध्य आय प्रवाह का सम्बन्ध बन्द अर्थव्यवस्था की तरह होता है। (प्रथम तीन घटकों का यहाँ उल्लेख विस्तार
से करें।) चतुर्थ घटक अर्थात शेष संसार से आय प्रवाह का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है:

चौथी दशा (शेष संसार) हो जाने से वस्तुओ के आयात से वस्तुओं खुली अर्थव्यवस्था का शेष संसार से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित आय का प्रवाह व्यापारिक फर्मों से शेष संसार की ओर होता है। तथा और सेवाओं के निर्यात से आय का प्रवाह शेष विश्व से देश की ओर होता है। इसके अलावा सरकार को विदेशी ऋण भी मिलते है और सरकार विदेशों को ऋण भी देती है। इस दृष्टि से शेष संसार से प्राप्त ऋण के रूप में राज्य के लिए प्राप्त आय का देश में अन्दर की ओर प्रवाह होता है, जबकि शेष विश्व को दिये जाने वाले ऋण से आय का बाहर की ओर प्रवाह होता है।

एक बन्द अर्थव्यवस्था में आय का प्रवाह देश के भीतर तक सीमित रहता है जबकि खुली अर्थव्यवस्था में आय प्रवाह में निम्नलिखित घटक भी शामिल होते हैं -
(अ) आयातों के भुगतान,
(ब) निर्यातों से प्राप्त आय,
(स) सरकार द्वारा लिये गये अन्तर्राष्ट्रीय ऋण,
(द) सरकार द्वारा दिये गये अन्तर्राष्ट्रीय ऋण
चार क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था की क्रियाओं को निम्न चित्र में दर्शाया गया है: -

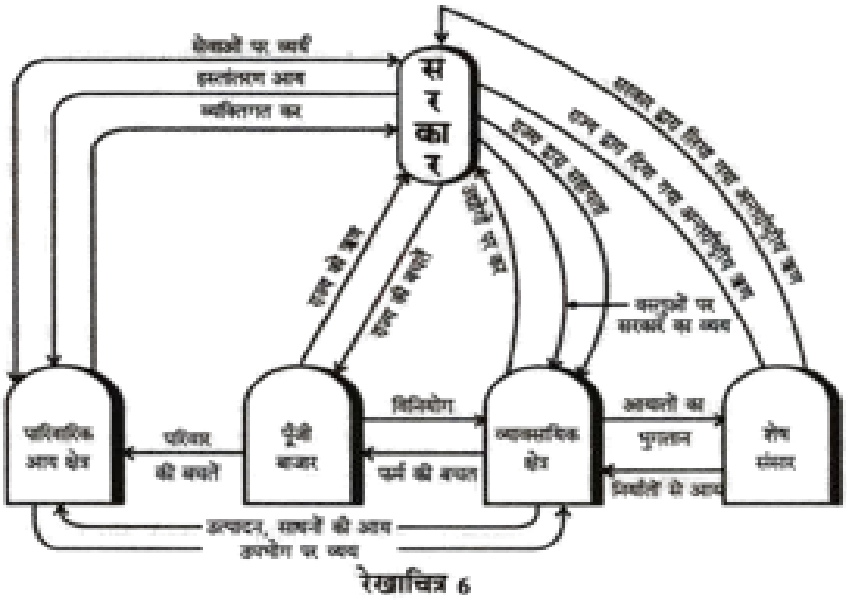

रेखाचित्र 6

खुली अर्थव्यवस्था में आय का चक्राकार प्रवाह

उपर्युक्त चित्र के अनुसार खुली अर्थव्यवस्था में आय का आन्तरिक प्रवाह तो बन्द अर्थव्यवस्था की तरह ही होता है, किन्तु शेष संसार से आर्थिक सम्बन्ध हो जाने से आय प्रवाह अधिक व्यापक हो जाता है। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि आय प्रवाह के निरन्तर चलते रहने के लिए देश की कुल बचत देश के कुल विनियोग के बराबर होनी चाहिए। शेष संसार के सन्दर्भ में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि यदि आयातों से निर्यात कम है तो भुगतान सन्तुलन

विपक्ष में होने से आय प्रवाह विदेशों की ओर होगा। इसके विपरीत, आयातों से निर्यात अधिक होने पर आय प्रवाह विदेशों से स्वदेश की ओर होगा।

प्रश्न 2: राष्ट्रीय आय (National Income) क्या होती है?

प्रश्न 3: चक्रीय प्रवाह में सरकारी क्षेत्र की भूमिका क्या है?

3.5 आय प्रवाह के आकार को प्रभावित करने वाले तत्व

आय का चक्राकार प्रवाह अनेक तत्वों से प्रभावित होने के कारण बढ़ता एवं घटता रहता है। जिन अर्थव्यवस्थाओं में भारी विनियोग होता है, सरकार बहुत अधिक व्यय करती है, निर्यात बढ़ते हैं, लोगों की उपभोग प्रवृत्ति ऊंची एवं बचत प्रवृत्ति नीची होती है, वहां आय का चक्राकार प्रवाह बढ़ता है। इसके विपरीत जहाँ सरकारी व्यय कम, विनियोग कम, बचत अधिक और आयात अधिक होता है वहाँ आय का चक्राकार प्रवाह कम होता है। इस प्रकार आय प्रवाह के निर्धारक तत्वों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, यथा (1) आय प्रवाह को बढ़ाने वाले तत्व एवं (2) आय प्रवाह को घटाने वाले तत्व । इन तत्वों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है:-

(1) आय प्रवाह को बढ़ाने वाले तत्व -निम्नलिखित है

(i) उपभोग में वृद्धि (Increase in Consumption) - उपभोग आय प्रवाह को बढ़ाने वाला प्रमुख तत्व है। कारण यह है कि उपभोग की सीमान्त और औसत प्रवृत्ति जितनी अधिक होती है, प्रभावपूर्ण माँग में उतनी ही अधिक वृद्धि होती है, जिससे आय का प्रवाह बढ़ता है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में एक व्यक्ति का व्यय दूसरे व्यक्ति की आय होती है। यदि उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति देश के व्यावसायिक क्षेत्र द्वारा की जाती है तो उपभोग में वृद्धि से आय प्रवाह भी बढ़ता है। इसके विपरीत, यदि विदेशी आयातों से उपभोग पूरा किया जाता है तो आय प्रवाह कम गति से बढ़ता है।

(ii) विनियोग में वृद्धि (Increase in Investment) - देश में विनियोग बढ़ने पर आय प्रवाह बढ़ता है। पूंजीगत माल, जैसे मशीनों की स्थापना, कारखानों का निर्माण, साज-

सज्जा, उपकरण आदि पर साहसियों द्वारा बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेकर विनियोग करने से आय प्रवाह बढ़ता है। सरकार भी घाटे के बजट द्वारा विनियोग बढ़ा सकती है। व्यावसायिक कम्पनियाँ अपने संचित लाभों एवं कोषों का विनियोग करके भी आय प्रवाह बढ़ाती हैं। स्मरण रहे कि आय-प्रवाह का परिमाण विनियोग की मात्रा तथा उसके गुणक पर निर्भर करता है।

(iii) बचत में कमी (Decrease in Savings) -जब किसी अर्थव्यवस्था में उपार्जित आय का अधिकांश भाग विनियोग एवं उपभोग पर व्यय कर दिया जाता है तब बचत कम हो जाती है तथा आय प्रवाह बढ़ जाता है। इसका कारण यह है कि उपभोग एवं विनिमय से आय उत्पादकों के पास जाती है। इसके विपरीत, बचतों में वृद्धि से उपभोग एवं विनियोग कम हो जाता है जिससे प्रभावपूर्ण माँग घट जाती है।

(iv) सरकारी आय में वृद्धि (Increase in Governmental Revenue) -आधुनिक समय में सरकार एक कल्याणकारी संस्था के रूप में सार्वजनिक व्यय द्वारा आय प्रवाह को बढ़ाती है। सरकारी व्यय अनेक ढंग से किया जा सकता है जैसे (a) सुरक्षा एवं प्रशासनिक कार्यों पर व्यय करके, (b) सामाजिक कल्याण के कार्यों पर व्यय करके एवं (c) आर्थिक विकास के लिए व्यय करके सरकार लोगों को रोजगार देकर उनकी आय बढ़ा सकती है। जिससे आय प्रवाह बढ़ जाता है।

(v) निर्यातों में वृद्धि (Increase in Exports) - जब देश आयात कम करके और निर्यात बढ़ाकर भुगतान सन्तुलन को पक्ष में करता है तब निर्यात आधिक्य का भुगतान विदेशी मुद्रा में होने से देश में आय प्रवाह बढ़ता है। इतना ही नहीं, उत्पत्ति के साधनों की मांग बढ़ती है जिन्हें निर्यातकर्ता अधिक पुरस्कार देकर खरीदते हैं, जिसके परिणामस्वरूप आय प्रवाह बढ़ता है।

प्रश्न 4: आय और व्यय के बीच संबंध क्या है?

(2) आय प्रवाह को घटाने वाले तत्व -

(i) बचतों में वृद्धि (Increase in Savings)- जब अर्थव्यवस्था में बचतों की मात्रा बढ़ती है तब लोग कम व्यय करते हैं जिससे आय का प्रवाह घट जाता है। बचतों में वृद्धि दो रूपों में होती है (अ) व्यावसायिक बचतें जैसे लाभ, अतिरिक्त लाभ तथा संचित कोष के रूप में बचतें और (ब) पारिवारिक बचतें। इन बचतों का जितना भाग संचित (Hording) करके रख लिया जाता है, आय प्रवाह का आकार उतना ही कम हो जाता है। করাম টে চামর বোর

(ii) उपभोग में कमी (Decrease in Consumption) - जनता के उपभोग में कमी आने पर व्यावसायिक फर्मों के उत्पादन की माँग कम हो जाती है जिससे उनमें नये साधनों की माँग भी घट जाती है। इसके परिणामस्वरूप आय प्रवाह कम हो जाता है।

(iii) करारोपण (Taxation) - जब सरकार पुराने करों की दर में वृद्धि कर देती है अथवा नये कर लगा देती है तब देशवासियों की आय सरकार के पास चली जाती है, जिसके परिणामस्वरूप जन-साधारण के पास व्यय-योग्य आय घट जाती है और आय प्रवाह कम हो जाता है।

(iv) सरकारी व्यय में कमी (Decrease in Governmental Expenditure) - सरकार विभिन्न मदों पर व्यय करके परिवारों एवं व्यावसायिक फर्मों की आय बढ़ाती है जिससे आय प्रवाह भी बढ़ता है, किन्तु जब सरकार अपने व्यय में कमी कर देती है तो परिवारों एवं व्यावसायिक फर्मों की आय भी कम हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप आय प्रवाह घट जाता है।

(v) आयात में वृद्धि (Increase in Imports) -विदेशी वस्तुओं और सेवाओं के आयात में वृद्धि होने पर देश की आय आयातों के भुगतान के लिए विदेशों में प्रवाहित हो जाती है और देशवासी आय से वंचित रह जाते हैं। परिणामस्वरूप आय प्रवाह घट जाता है।

अल्प-विकसित देशों में जहाँ मौद्रिक लेन-देन कम तथा वस्तु विनिमय अधिक होता है, वहां आय प्रवाह कम होता है। इसके विपरीत, विकसित देशों में मौद्रिक क्षेत्र अधिक होता है जिससे वहाँ आय प्रवाह अधिक होता है।

3.6 *आय के चक्राकार प्रवाह की सीमाएं या आलोचनाएँ*

आय के चक्राकार प्रवाह सिद्धान्त की निम्नलिखित सीमाएं हैं -

(1) अमौद्रिक सौदे (Non-monetary Transactions) - आय के चक्राकार प्रवाह में अमौद्रिक एवं गैर-बाजार सौदों को सम्मिलित नहीं किया जाता है। अल्प विकसित देशों में, जहाँ अमौद्रिक एवं गैर बाजार सौदों की मात्रा अधिक होती है, आय के चक्राकार प्रवाह का सिद्धान्त लागू नहीं होता है।

(2) स्वयं के उपभोग हेतु रखी गई वस्तुएं (Commodities for Self-Consumption) – उत्पादक उत्पादन का जो भाग स्वयं के उपभोग के लिए रख लेता है वह आय का अंग होने पर भी उसका मौद्रिक मूल्यांकन नहीं होता है। अतः उपभोग के लिए रखी गई वस्तुओं पर आय का चक्राकार प्रवाह लागू नहीं होता है।

(3) फर्मों के बीच के लेन-देन (Inter Firms Transactions) - विभिन्न फमें एक-दूसरे को वस्तुएं एवं सेवाएं बेचती तथा खरीदती हैं। जब इनका लेन-देन मुद्रा में नहीं होता है तब इनके कारण मुद्रा का चक्राकार प्रवाह कम हो जाता है।

(4) घरेलू लेन-देन (Domestic Transactions) - अनेक परिवार आपस में वस्तुओं और सेवाओं का लेन-देन करते हैं। इस लेन-देन का मौद्रिक मूल्य ज्ञात करना कठिन होता है, जिसके परिणामस्वरूप मुद्रा के चक्राकार प्रवाह का सही अनुमान लगाना कठिन हो जाता है।

3.7 *आय के चक्राकार प्रवाह के अध्ययन का महत्व*

आधुनिक युग में आय के चक्राकार प्रवाह के अध्ययन का विशेष महत्व है। यह विकसित एवं विकासशील देशों में समान रूप से है। इसके अध्ययन के महत्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता है-

(1) आय के चक्राकार प्रवाह के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि अर्थव्यवस्था में असन्तुलन उत्पन्न होने के क्या कारण हैं तथा उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है।

(2) इससे साधनों के रिसाव का पता लगता है, जिससे दूर करने के उपायों का क्रियान्वयन सम्भव होता है। उदाहरणार्थ यदि आय में कमी विदेशी आयातों के कारण होता है तो इस कमी को दूर करने के लिये निर्यात व्यापार को बढ़ाया जा सकता है। जैसे विदेशी आयात से आय कम होना आदि।

(3) इसके अध्ययन से मौद्रिक नीति का उचित ढंग से प्रयोग करना सम्भव होता है जिससे कि अर्थव्यवस्था में होने वाले असन्तुलनों को दूर किया जा सकता है।

(4) इससे राजस्व नीति का समुचित रूप से क्रियान्वयन संभव है। उदाहरणार्थ - यदि बचतों के कारण आय में कमी होती है तो सरकारी व्यय के द्वारा उसे समायोजित किया जा सकता है।

(5) इससे बचत, विनियोग, व्यय, स्वोतानुसार आय और उसका वितरण आदि का एक दूसरे से सम्बन्ध ज्ञात किया जा सकता है।

3.8 सार संक्षेप

सर्कुलर फ्लो ऑफ इनकम (Circular Flow of Income) एक आर्थिक मॉडल है, जो एक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों के बीच आय और व्यय के निरंतर प्रवाह को दर्शाता है। यह मॉडल मुख्य रूप से चार प्रमुख क्षेत्रों को शामिल करता है: घराने (Households), व्यवसाय (Firms), सरकार (Government), और विदेश (Foreign Sector) ।

इस मॉडल के अनुसार, घराने श्रमिकों को श्रम प्रदान करते हैं, जिसके बदले उन्हें वेतन, मजदूरी और अन्य लाभ मिलते हैं। व्यवसाय इन श्रमिकों से उत्पादों और सेवाओं का उत्पादन करवाते हैं और इसके बदले घरानों से भुगतान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, व्यवसाय घराने को आय प्रदान करते हैं, जबकि घराने व्यवसाय को उत्पादों और सेवाओं के लिए भुगतान करते हैं।

सरकार टैक्स के माध्यम से आय प्राप्त करती है और इसे सरकारी खर्चों में वितरित करती है, जैसे कि सार्वजनिक सेवाओं का प्रावधान और सरकारी योजनाएं। विदेशी क्षेत्र के साथ व्यापार का भी सर्कुलर फ्लो में योगदान होता है, जहां निर्यात और आयात के माध्यम से विदेशी निवेश और धन का प्रवाह होता है।

यह मॉडल यह दिखाता है कि आय और व्यय के बीच एक निरंतर चक्र चलता रहता है, जिससे उत्पादन, रोजगार और आय का स्तर निर्धारित होता है। सर्कुलर फ्लो ऑफ इनकम आर्थिक गतिविधियों के समग्र दृष्टिकोण को समझने में मदद करता है और आर्थिक नीति निर्माण में एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

3.9 मुख्य शब्द

1.घराने (Households): यह वे आर्थिक इकाइयाँ हैं जो श्रमिकों को श्रम प्रदान करती हैं और बदले में वेतन, मजदूरी और अन्य लाभ प्राप्त करती हैं। घराने अपनी आय का उपयोग उपभोग करने के लिए करते हैं।

2.व्यवसाय (Firms): ये कंपनियाँ या उत्पादन इकाइयाँ हैं जो उत्पादों और सेवाओं का उत्पादन करती हैं और इन्हें घरानों से बेचती हैं। व्यवसाय घरानों को वेतन, ब्याज, लाभ आदि प्रदान करते हैं।

3.सरकार (Government): सरकार टैक्स के माध्यम से आय प्राप्त करती है और इसे सार्वजनिक सेवाओं, इन्फ्रास्ट्रक्चर, और अन्य योजनाओं में खर्च करती है।

4.विदेशी क्षेत्र (Foreign Sector): यह निर्यात और आयात के रूप में शामिल होता है। विदेश से व्यापार के माध्यम से आय और खर्च का प्रवाह होता है, जैसे कि विदेशी निवेश और निर्यात आय।

5.आय (Income): यह वह धन है जो घराने और व्यवसायों को उत्पादन, श्रम या निवेश के बदले प्राप्त होता है।

6.व्यय (Expenditure): आय का वह हिस्सा जो उपभोग, निवेश या अन्य आर्थिक गतिविधियों के लिए खर्च किया जाता है।

7.टैक्स (Tax): सरकार द्वारा ली जाने वाली वह राशि जो विभिन्न सेवाओं और योजनाओं के वित्तपोषण के लिए उपयोग की जाती है।

8.निर्यात (Exports): वह वस्तुएँ और सेवाएँ जो एक देश अन्य देशों को बेचता है, जिससे विदेशी आय प्राप्त होती है।

9.आय का वितरण (Distribution of Income): यह दर्शाता है कि एक अर्थव्यवस्था में आय किस प्रकार विभिन्न समूहों (घराने, व्यवसाय, सरकार) के बीच वितरित होती है।

10.इन्फ्लो और आउटफ्लो (Inflows and Outflows): यह शब्द आय और व्यय के प्रवाह को दर्शाते हैं, जो एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में होते हैं।

3.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: चक्रीय प्रवाह का अर्थ है आर्थिक प्रणाली में आय और संसाधनों का निरंतर आदान-प्रदान। यह एक ऐसा प्रक्रिया है जिसमें उत्पादन, आय, और व्यय का निरंतर चक्र चलता रहता है। इसमें मुख्य रूप से चार क्षेत्र होते हैं: गृहस्थी क्षेत्र (जो श्रम और संसाधन प्रदान करता है), उत्पादक क्षेत्र (जो वस्त्रों और सेवाओं का उत्पादन करता है), सरकारी क्षेत्र (जो कर वसूल करता है और सामाजिक योजनाओं में खर्च करता है), और बाहरी क्षेत्र (जो अंतरराष्ट्रीय व्यापार से संबंधित होता है) ।

उत्तर 2: राष्ट्रीय आय उस आय को कहा जाता है जो एक निश्चित समय अवधि (आमतौर पर एक वर्ष) में किसी देश में सभी उत्पादक गतिविधियों से अर्जित होती है। यह देश के कुल उत्पादन, सेवाओं और पूंजीगत वस्त्रों के मूल्य का योग होता है। राष्ट्रीय आय को उत्पादन विधि, आय विधि और व्यय विधि द्वारा मापा जा सकता है।

उत्तर 3: सरकारी क्षेत्र का मुख्य कार्य करों के माध्यम से आय अर्जित करना और फिर उसे सार्वजनिक सेवाओं, बुनियादी ढांचे, सामाजिक योजनाओं और अन्य विकास कार्यों में खर्च करना है। यह क्षेत्र अर्थव्यवस्था में धन के पुनर्वितरण और समुचित व्यय के लिए जिम्मेदार होता है।

उत्तर 4: आय और व्यय के बीच सीधा संबंध होता है। जब घरों (गृहस्थी क्षेत्र) द्वारा उपभोक्ताओं से वस्त्रों और सेवाओं की खपत होती है, तो यह उत्पादक क्षेत्र (व्यापार) को आय प्राप्त होती है, जो फिर से अपने उत्पादन के लिए संसाधनों पर खर्च करता है। इस तरह आय और व्यय का चक्रीय प्रवाह चलता रहता है।

3.11 *संदर्भ सूची*

- जैन, पी. (2020). भारतीय अर्थव्यवस्था: एक संरचनात्मक विश्लेषण. नई दिल्ली: हिंदी प्रकाशन गृह।
- शर्मा, आर. (2018). आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था. मुम्बई: पुस्तक मंडल।
- वर्मा, एस. (2021). भारत की अर्थव्यवस्था और विकास के आयाम. जयपुर: ज्ञानवर्धन प्रकाशन।
- सिंह, के. (2019). भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार और विकास. दिल्ली: राष्ट्रीय प्रकाशन।
- चौधरी, डब्ल्यू. (2023). आर्थिक नीतियाँ और उनका प्रभाव. लखनऊ: यथार्थ प्रकाशन।

3.12 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. चक्रीय आय प्रवाहों के महत्व का स्पष्टीकरण कीजिए।

Explain the importance of Circular income flows.

2. आय के प्रवाह की चक्राकार प्रवृत्ति की व्याख्या कीजिये। उसके प्रवाह को उचित उदाहरण देकर समझाइये ।

Discuss the circular tendency of income flow. Explain its flow by giving a suitable example.

3. चार क्षेत्रीय माडल के रूप में आय के चक्राकार प्रवाह की प्रवृत्ति समझाइये ।

Explain the tendency of circular flow of income in a four-sector model.

4. आय के चक्राकार प्रवाह को प्रभावित करने वाले तत्वों को समझाइये ।

Explain the factors affecting the circular flow of income.

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. वास्तविक प्रवाह और मौद्रिक प्रवाह में अन्तर बताइये?
2. आय प्रवाह से क्या आशय है?
3. मुद्रा विस्फीति में आय के चक्राकार प्रवाह को समझाइये?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) "आय का चक्राकार प्रवाह घरेलू फर्मों और घरेलू परिवारों के मध्य भुगतानों एवं प्राप्तियों का प्रवाह होता है।" यह कथन किसका है?
(अ) प्रो. कींस (ब) प्रो. लुईस
(स) प्रो. लिप्से (द) उपरोक्त में से कोई नहीं।
(2) अत्यधिक मुद्रा निर्गमन चक्राकार प्रवाह को
(अ) कम करता है (ब) बढ़ाता है
(स) स्थिर रखता है (द) अनिश्चित करता है।
(3) खुली अर्थव्यवस्था का अर्थ है-
(अ) केवल आन्तरिक व्यापार (ब) आन्तरिक व बाह्य व्यापार (दोनों)
(स) केवल बाह्य व्यापार (द) अव्यापार

(उत्तर-1. (स), 2. (ब), 3. (ब),

इकाई -4
राष्ट्रीय आय की अवधारणाएँ जी.डी.पी., जी.एन.पी.
(Concepts of National Income- GDP, GNP)

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 राष्ट्रीय आय की परिभाषा
4.4 राष्ट्रीय आय सम्बन्धी विभिन्न धारणाएँ और उनकी संरचना
4.5 मौद्रिक एवं वास्तविक आय
4.6 राष्ट्रीय आय सम्बन्धी धारणाओं के सूत्र
4.7 सार संक्षेप
4.8 मुख्य शब्द
4.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
4.10 संदर्भ सूची
4.11 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय आय के सिद्धांत (Concepts of National Income) - GDP और GNP
राष्ट्रीय आय (National Income) एक देश की आर्थिक गतिविधियों का कुल माप है, जो एक निश्चित समय अवधि के दौरान उस देश के द्वारा उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं की कुल मूल्य को दर्शाता है। यह माप किसी देश की आर्थिक स्थिति और विकास को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय आय के प्रमुख मापदंडों में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) और सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) शामिल हैं।

1. **सकल घरेलू उत्पाद** (GDP - Gross Domestic Product): सकल घरेलू उत्पाद एक देश के भीतर एक निश्चित समय अवधि (आमतौर पर एक वर्ष) के दौरान उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य है। इसमें केवल देश की सीमा के भीतर उत्पादित वस्तुएँ और सेवाएँ शामिल होती हैं, चाहे वह उत्पादन किसी भी विदेशी कंपनी द्वारा क्यों न किया गया हो। GDP यह बताता है कि एक देश की अर्थव्यवस्था कितनी बड़ी है और उसके उत्पादन का स्तर क्या है।
2. **सकल राष्ट्रीय उत्पाद** (GNP - Gross National Product): सकल राष्ट्रीय उत्पाद GDP के समान है, लेकिन इसमें एक महत्वपूर्ण अंतर है। GNP में न

केवल देश के भीतर उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को शामिल किया जाता है, बल्कि यह उन वस्तुओं और सेवाओं को भी शामिल करता है जो देश के नागरिकों द्वारा विदेशों में उत्पादित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त, इसमें उन विदेशी नागरिकों द्वारा देश के भीतर उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को घटाया जाता है, जो उस देश के नागरिक नहीं हैं।

इन दोनों मापदंडों के माध्यम से राष्ट्रीय आय का विश्लेषण किया जाता है, जिससे एक देश की आर्थिक स्थिति और विकास को मापा जा सकता है। GDP और GNP से संबंधित आंकड़े सरकारों, नीति निर्माताओं और अर्थशास्त्रियों को आर्थिक निर्णय लेने में मदद करते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
- राष्ट्रीय आय की अवधारणाएँ (जैसे जी.डी.पी., जी.एन.पी.) को समझ सकें।
- विकास दर और आर्थिक नीति के संबंधों को विश्लेषित कर सकें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में दीर्घकालिक विकास और समृद्धि के लिए नीतियों का सुझाव दे सकें।

4.3 राष्ट्रीय आय की परिभाषा

किसी भी देश की राष्ट्रीय आय या राष्ट्रीय उत्पाद उसकी आर्थिक स्थिति का सबसे महत्वपूर्ण सूचक है। इसका कारण यह है कि किसी भी देश के आर्थिक विकास, आर्थिक सम्पन्नता, उपभोग स्तर आदि को राष्ट्रीय आय के माध्यम से ही मापा जाता है। प्रायः जिन देशों की राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय अधिक होती है, उन्हें विकसित देशों की श्रेणी में रखा जाता है। इसके विपरीत, जिन देशों की राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय कम होती है, उन्हें अर्ध-विकसित या पिछड़े देश कहा जाता है। इसलिए, कहा जाता है कि एक देश के राष्ट्रीय आय के आँकड़ों के द्वारा उस देश की सम्पूर्ण आर्थिक संरचना का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

राष्ट्रीय आय की परिभाषा

(Definition of National Income)

सामान्यतः राष्ट्रीय आय से आशय किसी देश में एक वर्ष में जिन वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन किया जाता है उनके मौद्रिक मूल्य से है। दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति के सभी साधनों, यथा-भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन एवं साहसी को एक वर्ष का जो पारिश्रमिक प्राप्त होता है, के योग को राष्ट्रीय आय कहा जाता है। राष्ट्रीय आय को मुख्यतः प्रो. मार्शल, प्रो. पीगू एवं प्रो. फिशर ने परिभाषित किया है। इसके साथ ही प्रो. साइमन कुजनेट्स एवं प्रो. क्लार्क ने भी राष्ट्रीय आय को नवीन सन्दर्भों में परिभाषित किया है। राष्ट्रीय आय की प्रमुख परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं

प्रो. मार्शल (Prof. Marshall) का दृष्टिकोण:

प्रो. मार्शल के अनुसार, "देश का श्रम एवं पूँजी उसके प्राकृतिक साधनों पर क्रियाशील होकर प्रति वर्ष भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं के शुद्ध योग का, जिसमें सभी प्रकार की सेवाएँ सम्मिलित होती हैं, उत्पादन करते हैं। यही देश की वास्तविक शुद्ध आय या राष्ट्रीय लाभांश कहलाता है। प्रो. मार्शल की परिभाषा की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं-

(i)मार्शल ने शुद्ध उत्पादन को ही लिया है अर्थात् राष्ट्रीय आय की गणना करते समय वार्षिक कुल उत्पादन में से मशीनों आदि की टूट-फूट तथा घिसावट आदि को घटा दिया जाता है।

(ii) राष्ट्रीय आय की गणना एक वर्ष के लिये की जाती है।

(iii) राष्ट्रीय आय में विदेशों से प्राप्त आय को जोड़ा जाता है।

(iv) व्यक्तिगत सेवाओं तथा बिना मूल्य चुकायी गई सेवाओं को राष्ट्रीय आय में नहीं जोड़ा जाता है ।

मार्शल के दृष्टिकोण की आलोचना (Criticism)

मार्शल की परिभाषा की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न प्रकार हैं: -

(1) सही गणना में कठिनाई - (Difficulty in Correct Estimation) आधुनिक समय में एक देश में विभिन्न प्रकार की असंख्य वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन किया जाता है। इन सब वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन की गणना करना एक अत्यधिक कठिन एवं जटिल कार्य है।

(2) विनिमय में न आने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं की समस्या -अनेक वस्तुएँ ऐसी भी होती हैं जो विनिमय के लिये बाजार में नहीं आतीं। इन वस्तुओं का सीधा उपभोग हो जाता है। ऐसी वस्तुओं का मूल्यांकन करना कठिन कार्य है। ऐसी वस्तुएँ राष्ट्रीय आय में सम्मिलित ही नहीं हो पाती और फलस्वरूप राष्ट्रीय आय की सही-सही गणना नहीं हो पाती।

(3) दोहरी गणना (Double Counting) की समस्या - प्रो. मार्शल की परिभाषा के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना करने में अनेक वस्तुओं की दोहरी गणना की सम्भावना रहती है। उदाहरणार्थ-कृषि उत्पादन की गणना के समय गन्ना एवं कपास के उत्पादन को सम्मिलित कर लिया जाता है और जब औद्योगिक उत्पादन की गणना की जाती है तब शक्कर और कपड़े की भी गणना हो जाती है। इस प्रकार गन्ना एवं कपास की गणना दो बार हो जाती है। इससे राष्ट्रीय आय के अनुमान भ्रामक हो जाते हैं।

प्रो. पीगू (Prof. Pigou) का दृष्टिकोण

प्रो. पीगू ने राष्ट्रीय आय को परिभाषित करते हुए लिखा है "राष्ट्रीय लाभांश समाज की भौतिक या वस्तुगत आय का, जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी सम्मिलित की जाती है, वह भाग है जिसको मुद्रा में मापा जा सके।"

प्रो. पीगू की परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय आय में केवल उन्हीं वस्तुओं एवं सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनका मूल्य मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाना सम्भव होता है। उदाहरणार्थ यदि एक नौकरानी को अपनी सेवा के बदले में वेतन प्राप्त होता है तो उसे राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जाता है, किन्तु यदि उसका मालिक उससे विवाह कर लेता है तो विवाह के बाद उसकी सेवा निःशुल्क हो जाती है और परिणामस्वरूप उसे राष्ट्रीय आय में नहीं जोड़ा जाता, क्योंकि उसे अब वेतन नहीं मिलता है। फलतः राष्ट्रीय आय में पहले की तुलना में कमी हो जाती है।

पीगू के दृष्टिकोण की आलोचनाएँ (Criticism)

पीगू की परिभाषा की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न प्रकार हैं

(1) मुद्रा द्वारा माप भ्रामक है -मुद्रा में मापी जाने वाली और न मापी जाने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है, किन्तु प्रो. पीगू ने राष्ट्रीय आय के अन्तर्गत केवल उन्हीं वस्तुओं एवं सेवाओं को सम्मिलित किया है जिन्हें कि मुद्रा के द्वारा मापा जा सके, जो कि तर्क युक्त नहीं है। स्वयं पीगू के शब्दों में, "क्रय की जाने वाली वस्तुओं और क्रय न की जाने वाली वस्तुओं में परस्पर कोई आधारभूत अन्तर नहीं होता है।"

(2) राष्ट्रीय आय में अनिश्चितता (Uncertainity in National Income) - राष्ट्रीय आय की गणना से सम्बन्धित विचारधारा में अनेक असंगतियाँ हैं, जैसे कृषि से प्राप्त आय उत्पादन के आधार पर या बिक्री के आधार पर आँकी जाए, अथवा उत्पादित वस्तुओं के स्व-उपभोग से राष्ट्रीय आय कम हो जाती है आदि। इससे राष्ट्रीय आय में अनिश्चितता पैदा हो जाती है।

(3) संकुचित आधार (Narrow Basis) - वस्तु विनिमय या मुद्रा रहित अर्थव्यवस्था में यह दृष्टिकोण लागू नहीं होता। प्रो. पीगू की परिभाषा के अनुसार विश्व के पिछड़े एवं

अर्थ-विकसित देशों में, जहाँ वस्तु-विनिमय क्रियाशील रहता है, में राष्ट्रीय आय की गणना करना सम्भव नहीं है। संक्षेप में, मुद्रा के मापदण्ड के आधार के कारण यह परिभाषा संकुचित हो गई है।

प्रो. फिशर (Prof. Fisher) का दृष्टिकोण

प्रो. मार्शल एवं पीगू ने जहाँ राष्ट्रीय आय को उत्पादन के आधार पर परिभाषित किया है, वहीं प्रो. फिशर ने इसे उपभोग पर आधारित बताया है। प्रो. फिशर के शब्दों में "राष्ट्रीय लाभांश अथवा आय के अन्तर्गत केवल उन सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है जो अन्तिम उपभोक्ताओं को अपने भौतिक अथवा मानवीय वातावरण से प्राप्त होती हैं। इस प्रकार एक पियानों या एक ओवर कोट जो इस वर्ष बनाया गया है, इस वर्ष की आय का भाग नहीं है वरन् पूँजी में वृद्धि है। केवल उतनी ही सेवा जो इन वस्तुओं द्वारा इस वर्ष प्रदान की जावेगी, आय होगी।"

प्रो. फिशर के अनुसार राष्ट्रीय आय किसी देश के वार्षिक उत्पादन से सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ- यदि किसी वर्ष । लाख रुपये की कार का निर्माण किया जाता है तो प्रो. मार्शल एवं पीगू के अनुसार लाख रुपये की राशि को उस वर्ष की राष्ट्रीय आय में जोड़ा जावेगा। किन्तु फिशर के अनुसार कार के उस मूल्य को जिसका उपभोग उस वर्ष किया जाता है, को ही राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जाता है। यदि कार का उपयोग 20 वर्ष तक किया जाना संभव है तब एक वर्ष में 5 हजार के बराबर उपभोग होगा अर्थात् उस वर्ष की राष्ट्रीय आय में केवल 5 हजार रुपये की राशि को ही जोड़ा जायेगा। इस प्रकार प्रो. फिशर के अनुसार उपभोग की गई राशि को ही राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाता है।

फिशर के दृष्टिकोण की आलोचना (Criticism)

राष्ट्रीय आय के सन्दर्भ में फिशर के दृष्टिकोण की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न प्रकार है:

(i) अव्यावहारिक (non-practical)- यद्यपि फिशर का दृष्टिकोण मार्शल एवं पीगू की तुलना में अधिक तर्कपूर्ण एवं सही है, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है। कारण यह है कि टिकाऊ वस्तुओं के जीवन का अनुमान लगाना एक कठिन एवं जटिल कार्य है। ऐसी वस्तुओं के स्वामित्व में परिवर्तन होने से भी राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाई होती है।

(ii) असुविधाजनक (Inconvenient)- राष्ट्रीय आय की गणना के लिए उपभोग की गणना

करना उत्पादन की गणना करने की तुलना में कठिन कार्य है। कारण यह है कि जहाँ उत्पादकों की संख्या

सीमित होती है वहीं उपभोक्ताओं की संख्या असीमित होती है।

(iii) दोहरी गणना (Double Counting) - दोहरी गणना की सम्भावना इस परिभाषा में भी व्याप्त है। फलतः यदि अनुमान लगा भी लिये जावें तो यह आवश्यक नहीं है कि वे पूर्णतया सत्य होंगे।

उपर्युक्त व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण फिशर की परिभाषा के अनुसार राष्ट्रीय आय की गणना करना बहुत कठिन है। संक्षेप में, यह दृष्टिकोण व्यावहारिक नहीं है।

उपर्युक्त तीनों परिभाषाओं में कौन श्रेष्ठ है?

प्रो. मार्शल, पीगू, एवं फिशर की परिभाषाओं के अध्ययन के बाद यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इन परिभाषाओं में कौन सी परिभाषा श्रेष्ठ है? वास्तविकता यह है कि तीनों परिभाषाओं के अपने-अपने गुण है, किन्तु इनकी श्रेष्ठता एवं उपयुक्तता इस बात पर निर्भर रहती है कि राष्ट्रीय आय की गणना का क्या उद्देश्य है। यदि राष्ट्रीय आय की गणना का उद्देश्य राष्ट्रीय उपभोग के स्तर को ज्ञात करना है, तो फिशर की परिभाषा अधिक उपयुक्त है। किन्तु इस आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना करना काफी कठिन कार्य है। जहाँ तक प्रो. मार्शल और प्रो. फिशर की परिभाषा की तुलना करने का प्रश्न है, दोनों में ज्यादा अन्तर नहीं है, क्योंकि उत्पादन का अन्तिम उद्देश्य उपभोग ही है। जहाँ तक प्रो. मार्शल एवं प्रो. पीगू की परिभाषा का प्रश्न है, यदि देश में वस्तुओं और सेवाओं की गणना करना सम्भव है, तो प्रो. मार्शल की परिभाषा अधिक उपयुक्त है। प्रो. पीगू की परिभाषा उसी स्थिति में उपयुक्त कही जा सकती है जब पूरी अर्थव्यवस्था मौद्रिक हो और दोहरी गणना से बचा जा सकता हो। प्रो. पीगू की परिभाषा इसलिए भी व्यावहारिक कही जा सकती है, क्योंकि इसके आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना सरलता से की जा सकती है।

राष्ट्रीय आय की आधुनिक परिभाषाएँ -

प्रो. साइमन कुजनेट्स के अनुसार "किसी देश की उत्पादन व्यवस्था से एक वर्ष में प्रवाहित होकर अन्तिम उपभोक्ताओं के हाथों में पहुँचने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं अथवा पूँजीगत वस्तुओं के स्टॉक में शुद्ध वृद्धि को राष्ट्रीय आय कहते हैं।"

प्रो. साइमन कुजनेट्स की परिभाषा फिशर से मिलती-जुलती है। इस परिभाषा में भी उपभोग पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। प्रो. कुजनेट्स ने राष्ट्रीय आय में उत्पादन के उस भाग को शामिल किया है जो अन्तिम उपभोक्ताओं को प्राप्त होता है। इसके अलावा वे पूँजीगत वस्तुओं में हुई वृद्धि को भी राष्ट्रीय आय में शामिल करते हैं। इस दृष्टि से साइमन कुजनेट्स की परिभाषा प्रो. फिशर की परिभाषा से अधिक व्यापक है।

प्रो.कोलिन क्लार्क के अनुसार "किसी विशेष समयावधि में राष्ट्रीय आय को उन वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य में व्यक्त करते हैं जो उस अवधि में उपभोग के

लिए उपलब्ध रहती है। वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य उनको प्रचलित विक्रय कीमतों पर निकाला जाता है।"

इस प्रकार प्रो. कोलिन क्लार्क ने अपनी परिभाषा में मार्शल तथा प्रो. फिशर के विचारों का मिश्रण किया है।

भारत में राष्ट्रीय आय समिति ने सन 1951 में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में राष्ट्रीय आय की परिभाषा इस प्रकार दी है "राष्ट्रीय आय में एक दी हुई अवधि में वस्तुओं एवं सेवाओं का आकलन किया जाता है, किन्तु इसमें दोहरी गणना नहीं की जाती है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय में एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के वास्तविक मूल्य को शामिल किया जाता है।

निष्कर्ष: - राष्ट्रीय आय सम्बन्धी विभिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय के अन्तर्गत देश में उत्पादित सभी वस्तुओं एवं सेवाओं के शुद्ध मूल्य को सम्मिलित किया जाता है। शुद्ध मूल्य की गणना के लिए कुल मूल्य में से ह्रास (Depreciation) को घटा दिया जाता है और यह ध्यान में रखा जाता है कि कोई गणना दो बार न हो।

4.4 राष्ट्रीय आय सम्बन्धी विभिन्न धारणाएँ और उनकी संरचना

सामान्यतः किसी भी देश या अर्थव्यवस्था में एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को राष्ट्रीय आय की संज्ञा दी जाती है। इस आय की माप की विभिन्न धारणाएँ हैं। सांख्यिकीय विधियों के विकास से राष्ट्रीय आय की गणना अनेक प्रकार से की जाने लगी है। राष्ट्रीय आय की विभिन्न धारणाएँ एवं उनकी संरचना की विस्तृत व्याख्या निम्न प्रकार है: -

1. सकल (कुल) घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product -GDP)

किसी देश में वस्तुओं तथा सेवाओं के कुल उत्पादन का सर्वाधिक व्यापक माप सकल घरेलू उत्पाद है। सकल घरेलू उत्पाद से आशय किसी देश में एक वर्ष में कुल उपभोग, कुल निवेश, सरकार द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय तथा शुद्ध निर्यात के मौद्रिक मूल्य से है। सकल घरेलू उत्पाद को समझने के लिए इसको मापने की विधियों को समझना आवश्यक है, जो कि निम्न प्रकार हैं: -

(a)आय-आधारित विधि (Income Based Method)

(b)व्यय- आधारित विधि (Expenditure Based Method)

इन दोनों विधियों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है: -

(a) आय-आधारित विधि (Income Based Method): -इस विधि को वस्तु प्रवाह विधि (Goods Flow Method) भी कहते है। इस विधि में उत्पत्ति के साधनों को किए गए भुगतानों को जोड़ा जाता है।

(b) व्यय आधारित विधि (Expenditure Based Method): -इस विधि को प्राप्ति प्रवाह विधि (Earning Flow Method) भी कहते हैं। इसमें किसी वर्ष में उत्पादित सभी अन्तिम वस्तुओं (Final Output) की खरीदी के लिए सभी प्रकार के किए गए व्यय को जोड़ा जाता है, यथा उपभोग व्यय, निवेश व्यय सरकार का व्यय तथा शुद्ध निर्यात ।

यहाँ सकल घरेलू उत्पाद (GDP) एवं सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) के मध्य अन्तर समझ लेना चाहिए। सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में उन वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन को सम्मिलित किया जाता है जो देश में होता है। इसके विपरीत, सकल राष्ट्रीय (GNP) उत्पाद में उस उत्पादन (आय) को सम्मिलित किया जाता है जो देश को प्राप्त होता है। अतः GDP को GNP में बदलने के लिए निम्न प्रक्रिया को अपनाया जाता है:-

(a) उस आय को जोड़ा जाता है जो किसी देश के निवासी विदेशों में स्थित सम्पत्ति के स्वामी के रूप में प्राप्त करते हैं।

(b) उस आय को घटाया जाता है जो उस देश में स्थित गैर-निवासियों की सम्पत्तियों की प्राप्ति से उन्हें भुगतान किया जाता है।

प्रो. लिप्से (Lipsey) एवं क्रिस्टल (Chrystal) के अनुसार GDP और GNP के अन्तर को विदेशों से प्राप्त सम्पत्ति की शुद्ध आय कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादित कुल उत्पत्ति जिसे GDP के रूप में मापा जाता है तथा प्राप्त की गई कुल आय
जिसे GNP के रूप में मापा जाता है, में अन्तर यह है कि GNP में विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय को जोड़ा जाता है।

II. सकल (कुल) राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product - G.N.P.): -

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) से आशय "किसी अर्थव्यवस्था में एक वर्ष की अवधि में जितनी भी अन्तिम वस्तुएँ एवं सेवाएँ उत्पादित की जाती है, उन सभी के बाजार मूल्य के कुल योग को राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं।" प्रायः सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना दो विधियों से की जाती है, प्रथम बाजार मूल्य पर (Market Prices) राष्ट्रीय उत्पाद। इसमें परोक्ष कर तथा सबसिडी जैसे गैर साधन भुगतान को शामिल किया जाता है। द्वितीय साधन लागत (Factor Cost) पर राष्ट्रीय उत्पाद इसमें साधनों के हिस्से को दर्शाया जाता है, जो कि उनके पास आय के रूप में जाते हैं। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है:-

(a) बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP at Market Prices)

बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना के लिये तीन दृष्टिकोणों को लिया जाता है, ये है- (i) आय दृष्टिकोण, (ii) व्यय दृष्टिकोण और (ii) मूल्य वृद्धि (Value added) दृष्टिकोण। चूँकि सकल आय सकल व्यय के बराबर होता है, फलतः इन तीनों

दृष्टिकोणों से प्राप्त सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुमान बराबर होते हैं। इन दृष्टिकोणों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है: -

(i) आय दृष्टिकोण (Income Approach to GNP): गणना की इस विधि में उत्पादन के साधनों को वर्ष भर में किए गए भुगतान को जोड़ा जाता है। भुगतान की मदें निम्न प्रकार है: -

1. मजदूरी एवं वेतन: श्रमिकों एवं संगठन से सम्बन्धित व्यक्तियों को वर्ष भर में किए गए सभी उत्पादक कार्य के लिए किए गये भुगतानों को जोड़ा जाता है। ओवर टाइम, कमीशन, भविष्य निधि जमा, बीमा आदि को भी जोड़ा जाता है।

2. किराया (Rents): भूमि, दुकान, मकान, फैक्टरी आदि के वार्षिक किराए के साथ-साथ स्वयं
स्वामी के पास की भूमि, दुकान, मकान आदि के अनुमानित किराए को भी जोड़ा जाता है।

3.ब्याज (Interest): व्यक्ति को विभिन्न स्रोतों से प्राप्त ब्याज को राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाता है। स्वयं की पूँजी जिसे उत्पादन में लगाया गया है, का अनुमानित ब्याज भी जोड़ा जाता है।

4. लाभांश (Dividends): अंशधारकों को कम्पनियों से प्राप्त लाभांश को राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाता है।

5. व्यावसायिक निगमों द्वारा अ-वितरित लाभ: व्यावसायिक निगमों द्वारा प्राप्त लाभ के उस हिस्से को जो कि अंशधारकों में वितरित नहीं किया जाता है, को राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाता है।

6. मिश्रित आय: कई व्यक्ति एक से अधिक व्यवसायों में कार्यरत रहते हैं। इन सभी से प्राप्त
आय को जोड़ा जाता है।

7. प्रत्यक्ष कर: व्यक्तियों, व्यावसायिक निगमों एवं अन्य व्यवसायों पर लगाए गए प्रत्यक्ष कर को सकल राष्ट्रीय उत्पाद में जोड़ा जाता है।

8. अप्रत्यक्ष कर: सरकार उत्पादन शुल्क एवं विक्रय कर जैसे अनेक अप्रत्यक्ष कर लगाती है। लगाये गये करों की राशि वस्तुओं के मूल्यों में जुड़ी हुई रहती है, किन्त् करों से प्राप्त आय का भुगतान उत्पादन के साधनों को न होकर सरकार को होता है। फलतः इन करों से प्राप्त आय को राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाता है।

9. मूल्य ह्रास या घिसाव (Depreciation): प्रायः सभी उत्पादक मशीनों, प्लान्ट्स एवं अन्य पूँजीगत साज-सज्जा पर होने वाली घिसावट का प्रावधान रखते हैं, किन्तु

प्रावधान की इस राशि का भुगतान उत्पत्ति के साधनों को नहीं होता। फलतः इस राशि को भी राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाता है।

10. विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय: कुल वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात-निर्यात से प्राप्त शुद्ध आय को राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाता है। को राष्ट्रीय आय से घटाया जाता है। यहाँ यह तथ्य ध्यान में रखा जाना चाहिये कि यदि आयात से निर्यात अधिक है, तो अन्तर को जोड़ा जाता है। यदि निर्यात से आयात अधिक है तो प्राप्त अन्तर को राष्ट्रीय आय से घटाया जाता है।

संक्षेप में,

GNP = Wages & Salaries + Rents + Interest + Dividends + Undistributed Corporates Profits + Mixed Incomes + Direct Taxes + Indirect Taxes + Depreciation + Net Income from abroad.

प्रश्न 1: GDP और GNP में क्या अंतर है?

(ii) व्यय दृष्टिकोण (Expenditure Approach to GNP): व्यय दृष्टिकोण के द्वारा सकल राष्ट्रीय आय की गणना के लिए एक वर्ष में वस्तुओं एवं सेवाओं पर हुए कुल व्यय को जोड़ा जाता है। व्यय दृष्टिकोण के अन्तर्गत जोड़ी जाने वाली प्रमुख मदें निम्न प्रकार है: -

1. निजी उपभोग व्यय: - एक देश के निवासियों द्वारा सभी प्रकार के व्यक्तिगत उपभोग को राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाता है, जैसे सायकिल, रेडियो, टेलीविजन, मोटर कार जैसी

टिकाऊ वस्तुएँ, दूध, बेड, कपड़े, घी जैसी उपभोक्ता वस्तुएँ और अध्यापक, डॉक्टर, वकील, यातायात आदि सेवाएँ। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि गणना के लिए अन्तिम वस्तुओं को ही लिया जाता है।

2. सकल घरेलू निजी निवेश (Gross Domestic Private Investment): - इसके अन्तर्गत साहसियों द्वारा नवीन निवेश पर किए गए व्यय को जोड़ा जाता है। इसमें गृह निर्माण, फैक्ट्री भवन, सभी प्रकार की मशीनें, प्लान्ट्स एवं पूँजीगत साज-सज्जा आदि को जोड़ा जाता है।

3. शुद्ध विदेशी निवेश (Net Foreign Investment): - आयातित वस्तुएँ जहाँ देश में नहीं बनाई जाती, वहीं निर्यातित वस्तुओं का उत्पादन देश में होता है। अतः आयात-निर्यात के अन्तर (X-M) को राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाता है।

4. वस्तुओं एवं सेवाओं पर शासकीय व्यय (Govt. Expenditure on Goods & Services)- सरकार द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं पर होने वाले व्यय को सकल राष्ट्रीय उत्पाद में जोड़ा जाता है। केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय सरकारें, प्रशासन, पुलिस, सेना एवं अन्य अनेक मदों पर व्यय करती है। इसमें सार्वजनिक उपक्रमों पर होने वाले व्यय को भी जोड़ा जाता है। इस प्रकार व्यय दृष्टिकोण के द्वारा सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना को निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है: -

GNP = C (Private Consumption Expenditure) + 1 (Gross Domestic Private Investment) + (X-M) or Net Foreign Investment + G (Govt. Expenditure on Goods & Services)

GNP = C+1+(X-M) +G.

(iii) मूल्य-सृजन दृष्टिकोण (Value Added Approach to GNP): -सकल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना का एक तरीका मूल्य-सृजन दृष्टिकोण भी है। सामान्यतः GNP की गणना के लिए उत्पादित अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य को लिया जाता है। यह एक ऐसा तरीका है जिससे 'दोहरी गणना' से बचना सम्भव होता है। किन्तु अन्तिम उत्पाद एवं मध्यवर्ती (Intermediate) उत्पाद के मध्य अन्तर करना एक कठिन कार्य है। उदाहरण के लिए कच्चा माल, अर्ध-निर्मित माल, ईधन एवं सेवाएँ एक उद्योग द्वारा दूसरे उद्योग को 'इन-पुट' के रूप में बेचे जाते हैं। अतः कुछ उत्पाद ऐसे भी होते हैं जो एक उद्योग के लिए तो अन्तिम उत्पाद हो सकते हैं तथा किसी दूसरे उद्योग के लिए मध्यवर्ती उत्पाद । ऐसी स्थिति में 'दोहरी गणना' को रोकने के लिए अर्थव्यवस्था के प्रत्येक उद्योग के कुल उत्पादन में से अन्तिम वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त मध्यवर्ती उत्पादन के मूल्य को घटाया जाता है। इस प्रकार, उत्पादन के प्रत्येक चरण में कुल भौतिक उत्पादन तथा इनपुट्स के अन्तर को मूल्य-सृजन कहा जाता है। यदि अर्थव्यवस्था के सभी उद्योगों में

हुए सृजित-मूल्य को जोड़ा जाता है तो सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) की गणना की जा सकती है, अर्थात् सकल सृजित मूल्य का योग सकल घरेलू उत्पाद के बराबर होता है। यदि इसमें से मूल्य हास को घटा दिया जाता है तो शुद्ध घरेलू उत्पाद रहेगा।

इस प्रकार सृजित मूल्य के द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना का तरीका उत्पादन विधि एवं आय विधि की तुलना में अधिक अच्छा है। कारण यह है कि इस विधि में 'दोहरी' गणना की सम्भावना को कम से कम कर दिया जाता है।

प्रश्न 2: GDP का महत्व क्या है?

प्रश्न 3: GNP क्यों महत्वपूर्ण है?

(b) साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP at Factor Cost): -

एक देश में उत्पत्ति के विभिन्न साधनों द्वारा वर्ष भर में किए गए उत्पादन के बदले में जो हिस्सा मिलता है, के मौद्रिक मूल्य को साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) कहा जाता है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यदि बाजार मूल्य पर प्राप्त सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से अप्रत्यक्ष करों को घटाया एवं सबसिडी को जोड़ा जाता है तो प्राप्त योग को साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है। इसे निम्न सूत्र के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है:

साधन लागत पर GNP = बाजार मूल्य पर GNP - अप्रत्यक्ष कर + अनुदान या सब्सिडी

III. शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product OR NNP): -

उत्पादन की प्रक्रिया में मशीनों में घिसावट होती है तथा कुछ मशीनें पुरानी पड़ जाने के कारण उन्हें बदलना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यदि कुल राष्ट्रीय उत्पाद में से मूल्य हास या घिसावट को घटा दिया जाता है तो जो शेष बचता है, उसे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, "यदि किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित सभी प्रकार की अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं के बाजार मूल्य के जोड़ में से मशीनों आदि के मूल्य हास (Depreciation) को निकाल दिया जाता है तो जो शेष बचता है, उसे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि NNP की गणना बाजार कीमतों (Market

Prices) पर ही की जाती है, अतः इसे बाजार कीमतों पर राष्ट्रीय आय (National Income at Market Prices) भी कहा जाता है।"

NNP MP = GNP- Depreciation (मूल्य ह्रास)

उदाहरण: मान लें कि एक देश में एक वर्ष की अवधि में बाजार मूल्य पर GNP 1500 करोड़ रुपए है तथा मूल्य ह्रास लगभग 500 करोड़ रु. है। इस स्थिति में NNP होगी

NNPMP = GNP - Depreciation

= 1500 - 500 =1000 करोड़ रु.

IV. राष्ट्रीय आय अथवा साधन लागत पर राष्ट्रीय आय

(National Income OR National Income at Factor Cost): -

उत्पत्ति के साधन अपनी आय का उपार्जन वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन के माध्यम से करते है, किन्तु जब बाजार मूल्यों पर शुद्ध उत्पादन या राष्ट्रीय आय (NNP) का अनुमान लगाया जाता है तो उसमें अप्रत्यक्ष करों की राशि भी सम्मिलित रहती है। परन्तु

जो आय उत्पत्ति के साधनों को प्राप्त होती है, उसमें सरकार द्वारा लगाये गए अप्रत्यक्ष कर शामिल नहीं होते। फलतः साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीये आय का अनुमान लगाने के लिए बाजार मूल्यों पर विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) में से अप्रत्यक्ष करों की राशि घटा दी जाती है।

इसके साथ ही सरकार कुछ उद्योगों या कुछ उत्पादित वस्तुओं पर अनुदान (Subsidy) देती है। इस अनुदान के कारण बाजार में वस्तु को कम मूल्य पर बेचा जाता है, जबकि उत्पत्ति के साधनों को प्राप्त होने वाली आय अथवा साधनों की लागत में कोई कमी नहीं होती। चूंकि अनुदान बाजार कीमत का अंग नहीं होता है, अतः इसे NNP में शामिल नहीं किया जाता, किन्तु अनुदान राष्ट्रीय आय का एक अंग है, इसलिए राष्ट्रीय आय की गणना करते समय अनुदान की राशि को NNP में जोड़ा जाता है, अत:

National Incomefc = NNP - Indirect Taxes + Subsidies

v. वैयक्तिक आय (Personal Income OR PI)

वैयक्तिक आय से आशय उस आय से है जो कि व्यक्तियों अथवा परिवारों को एक वर्ष की अवधि में वास्तव में प्राप्त होती है। सैद्धान्तिक आधार पर वर्ष भर में जो राष्ट्रीय आय होती है वह उत्पत्ति के साधनों द्वारा प्राप्त की गयी आय का योग (जोड़) होता है, किन्तु वास्तविकता यह है कि अर्जित आय का कुछ भाग उत्पत्ति के साधनों, व्यक्तियों अथवा परिवारों को मौद्रिक आय के रूप में प्राप्त नहीं होती है। इस प्रकार की मदें जो कि वैयक्तिक आय में सम्मिलित नहीं होती, यह हैं: -

(i) सामाजिक सुरक्षा अंशदान (Social Security Contribution): - यह नियोजनकर्ता द्वारा मजदूरी में से सीधा काट लिया जाता है।

(ii) निगम कर (Corporate Tax): - निगम कर जिसे कम्पनियों का आयकर भी कहा जाता है, को कम्पनियाँ अपनी आय में से सरकार को जमा कर देती हैं।

(iii) अविभाजित लाभ (Un-distributed Profits): - कम्पनियाँ अपने कुल लाभ में से एक भाग अंशधारियों को नहीं बाँटती हैं।

इसके साथ ही कुछ व्यक्तियों तथा परिवारों को ऐसी मौद्रिक आय प्राप्त होती है, जिसके लिए उन्होंने कोई उत्पादन कार्य नहीं किया है। उदाहरणार्थ- बेरोजगारी भत्ता, वृद्धों को पेंशन तथा अनेक प्रकार के सहायता भुगतान आदि। सामूहिक रूप में इन्हें हस्तान्तरण भुगतान (Transfer Payments) कहा जाता है। वैयक्तिक आय को ज्ञात करने के लिए इन भुगतानों को जोड़ दिया जाता है। संक्षेप में:

वैयक्तिक आय =राष्ट्रीय आय- सामाजिक सुरक्षा अनुदान - कम्पनियों पर आय कर - कम्पनियों के अविभाजित लाभ +हस्तान्तरण भुगतान

Personal Income = National Income - Social Security Contributions – Corporate Taxes - Undistributed Profits + Transfer Payments.

VI. व्यय-योग्य आय (Disposable Income): -

सामान्यतः व्यक्तियों तथा परिवारों को जो वैयक्तिक आय प्राप्त होती है, वह सारी की सारी उपभोग पर व्यय नहीं की जा सकती। इसका कारण यह है कि वैयक्तिक आय का एक भाग व्यक्तियों एवं परिवारों को प्रत्यक्ष करों के रूप में सरकार को चुकाना पड़ता है। अतः वैयक्तिक आय में से सरकार द्वारा लगाए गए प्रत्यक्ष करों को घटा देने के बाद जो शेष बचता है, उसे व्यय योग्य या उपभोग्य आय कहते हैं। व्यक्ति या परिवार इसी आय का उपयोग उपभोग पर किया जाता है। सूत्र के रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है: -

व्यय योग्य आय = वैयक्तिक आय- प्रत्यक्ष कर

Disposable Income = PI-Direct Taxes

व्यक्तियों को प्राप्त कुल व्यय योग्य आय का उपयोग दो प्रकार से किया जा सकता है, यथा एक उपभोग और दो बचत। सूत्र के रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है: -

व्यय योग्य आय= उपभोग + बचत

Disposable Income = Consumption + Saving

VII. प्रति-व्यक्ति आय (Per-capita Income): -

किसी भी देश की आर्थिक स्थिति की जानकारी के लिए केवल राष्ट्रीय आय के आकार का पता होना ही पर्याप्त नहीं होता है। साथ ही यह भी जानना आवश्यक होता है कि यह राष्ट्रीय आय कितनी जनसंख्या से सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ एक देश की राष्ट्रीय आय का

आकार अधिक है परन्तु साथ ही जनसंख्या भी बहुत अधिक है। इसके विपरीत, दूसरे देश में राष्ट्रीय आय का आकार पहले देश की तुलना में कम है, परन्तु इस देश में जनसंख्या भी

पहले देश की तुलना में बहुत कम है। ऐसी स्थिति में यह जानने के लिए कि इनमें से किस देश में लोगों की आर्थिक स्थिति अधिक अच्छी है, हमें प्रति व्यक्ति आय की गणना करनी होगी।

प्रति-व्यक्ति आय से आशय उस देश के एक व्यक्ति को प्राप्त होने वाली औसत आय से है। अतः यदि किसी एक वर्ष की राष्ट्रीय आय में, उस वर्ष की जनसंख्या का भाग दे दिया जाए तो जो भागफल प्राप्त होता है, उसे उस वर्ष की प्रति व्यक्ति आय कहा जाता है। इसे निम्न सूत्र के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है: -

वर्ष 2000 की प्रति व्यक्ति आय = वर्ष 2000 की राष्ट्रीय आय/वर्ष 2000 की जनसंख्या

यहाँ यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जनसंख्या के आकार की माप जनगणना (Census) द्वारा की जाती है, किन्तु जनगणना प्रतिवर्ष नहीं होती। भारत में जनगणना 10 वर्ष बाद होती है। अतः प्रति व्यक्ति आय की गणना के लिए वार्षिक जनसंख्या का अनुमान लगाया जाता है। जन्म दर एवं मृत्यु दर के आधार पर भी वार्षिक जनसंख्या की गणना की जाती है। यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि प्रति व्यक्ति आय एक औसत मात्र है। इससे वास्तविक स्थिति की पूरी जानकारी नहीं मिलती है। कारण यह है कि प्रति व्यक्ति आय से यह पता नहीं चलता कि राष्ट्रीय आय का विभिन्न व्यक्तियों एवं वर्गों के मध्य वितरण किस प्रकार का है। देश में जीवन-स्तर और आर्थिक कल्याण की माप के लिए राष्ट्रीय आय के वितरण का विशेष महत्व होता है।

4.5 मौद्रिक एवं वास्तविक आय

मौद्रिक या मुद्रा रूप में आय (Nominal Income) जब राष्ट्रीय आय (कुल घरेलू उत्पाद-GDP अथवा शुद्ध घरेलू उत्पाद-NNP) की गणना वर्तमान या चालू कीमतों (Current Prices) पर की जाती है तो उसे मौद्रिक अथवा मुद्रा रूप या वर्तमान कीमतों पर आय कहा जाता है। इसके विपरीत, जब आय की गणना एक दिए हुए वर्ष में स्थिर कीमतों के आधार पर की जाती है तो उसे स्थिर कीमतों पर आय या वास्तविक आय कहते हैं।

मौद्रिक या मुद्रा रूप में आय एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का वह मूल्य है जो वर्तमान कीमतों पर मुद्रा (रुपए) में मापा जाता है। इस माप में वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य में होने वाले परिवर्तनों या मुद्रा की क्रयशक्ति के परिवर्तनों पर ध्यान नहीं दिया जाता। इसका परिणाम यह होता है कि कुल वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन स्थिर रहने के बावजूद भी मूल्यों में वृद्धि के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो सकती है। इसके विपरीत वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्यों में कमी होने पर राष्ट्रीय आय में कमी हो सकती है, जबकि उत्पादन की मात्रा अपरिवर्तित रहती है। इस प्रकार यदि राष्ट्रीय आय की गणना चालू कीमतों या मुद्रा के रूप में की जाती है तो आर्थिक वृद्धि एवं अर्थव्यवस्था की वास्तविक दिशा का सही-सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। कारण यह है कि इसमें आय की गणना विद्यमान चालू मूल्यों पर की जाती है।

वास्तविक आय - (Real Income) जब राष्ट्रीय आय को एक आधार वर्ष की कीमतों के सामान्य स्तर पर व्यक्त किया जाए तो उसे वास्तविक आय कहते हैं। राष्ट्रीय आय चालू कीमतों पर उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का मुद्रा मूल्य होता है, परन्तु यह अर्थव्यवस्था की वास्तविक स्थिति को नहीं बताती है। संभव है कि इस वर्ष पिछले वर्ष की अपेक्षा वस्तुओं और सेवाओं का शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन कम हुआ हो, परन्तु इस वर्ष कीमतों के बढ़ने के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई हो। इसके विपरीत, यह भी संभव है कि शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन तो बढ़ा हो परन्तु कीमत स्तर गिर गया हो, इससे राष्ट्रीय आय में पिछले वर्ष की अपेक्षा कमी प्रतीत होगी। । इन दोनों हालातों में राष्ट्रीय आय देश की वास्तविक स्थिति नहीं बताती। इसी त्रुटि को दूर करने के लिए वास्तविक आय की धारणा प्रचलित हुई है।

देश की किसी वर्ष की वास्तविक आय जानने के लिए एक ऐसा वर्ष, आधार वर्ष (Base Year) लिया जाता है, जब सामान्य कीमत स्तर न तो अधिक और न कम हो तथा उसको 100 के बराबर मान लिया जाता है। अब जिस वर्ष की वास्तविक राष्ट्रीय आय जाननी हो, उस वर्ष की कीमतों के सामान्य स्तर को आधार वर्ष की कीमतों पर मूल्यांकन किया जाता है। इसके लिए निम्नलिखित फार्मूले का प्रयोग किया जाता है -

NNP for the current year = Base year index (= 100)/ Current year's price

मान लो कि 1990 आधार वर्ष है और 2000 की राष्ट्रीय आय 20,000 करोड़ रु. है एवं इस वर्ष का मूल्य सूचकांक 250 है। अतः 2000 में वास्तविक राष्ट्रीय आय 20,000 × 100 = 8,000 करोड़ रु. 250 इसे स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय भी कहते हैं।

प्रश्न 4: राष्ट्रीय आय के मापदंडों का अर्थशास्त्र में क्या उपयोग है?

4.6 राष्ट्रीय आय सम्बन्धी धारणाओं के सूत्र

i**. सकल राष्ट्रीय उत्पाद** (Gross National Product OR GNP)

(a) आय-दृष्टिकोण (Income Approach to GNP)

GNP =Wages & Salaries + Rent + Interest +Dividends + Un-distributed Corporate Profits+ Mixed Incomes + Direct Taxes + Indirect Taxes +Depreciation + Net Income from abroad.

(b) व्यय-दृष्टिकोण (Expenditure Approach to GNP)

GNP = C (Private Cousumption Expenditure) + 1 (Gross Domestic Private Investment) + (X-M OR Net Foreign Investment + G (Government Expenditure on Goods & Services)

(c) बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP at Market Prices)

GNP = Gross value of final goods & Services + Net income from abroad.

(d) साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP at Factor Cost)

GNP= GNP at Market Prices - Indirect Taxes + Subsidies

II. शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product OR NNP)

(a) बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP at Market Prices)

NNP at Market Prices = GNP at Market Prices - Depreciation

(b) साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद या राष्ट्रीय आय (NNP at Factor Cost)

NNP at Factor Cost OR National Income = NNP at Market Prices - Indirect Taxes + Subsidies.

(III)वैयक्तिक आय (Personal Income): -

PI = National Income-Undistributed Corporate Profits - Profit Taxes - Social Security Contributions + Transfer Payments +Interest on Public Debt.

(IV) व्यय योग्य आय (Disposable Income): -

DI = Personal Income - Direct Taxes

(V)वास्तविक आय (Real Income): -

Real NNP = NNP for the Current Year x Base year Index (100) /Current year Index

4.7 सार संक्षेप

राष्ट्रीय आय (National Income) किसी देश की आर्थिक गतिविधियों का माप है। यह एक देश में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य है, जिसे विश्लेषित करने के लिए सकल घरेलू उत्पाद (GDP) और सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) जैसे मापदंडों का उपयोग किया जाता है।

1. GDP (सकल घरेलू उत्पाद): GDP एक देश की सीमा के भीतर एक निश्चित समय अवधि (आमतौर पर एक वर्ष) में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य है। इसमें केवल देश के अंदर की गतिविधियाँ शामिल होती हैं, चाहे

उत्पादन घरेलू या विदेशी कंपनियों द्वारा किया गया हो। GDP का उपयोग देश के आर्थिक उत्पादन का आकलन करने के लिए किया जाता है और यह एक प्रमुख संकेतक है कि अर्थव्यवस्था कितनी बड़ी है और विकास की दिशा क्या है।

2. GNP (सकल राष्ट्रीय उत्पाद): GNP GDP के समान है, लेकिन इसमें एक अंतर है। GNP में न केवल देश के भीतर उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को शामिल किया जाता है, बल्कि देश के नागरिकों द्वारा विदेशों में उत्पादित वस्तुएँ और सेवाएँ भी जोड़ी जाती हैं। इसमें विदेशी नागरिकों द्वारा देश में की गई उत्पादन गतिविधियाँ घटाई जाती हैं। GNP का उद्देश्य यह दिखाना है कि एक देश के नागरिक वैश्विक स्तर पर कितनी आर्थिक गतिविधियाँ कर रहे हैं।

मुख्य अंतर:

- GDP केवल घरेलू उत्पादन को मापता है, जबकि GNP में विदेशी आय और घरेलू आय दोनों को शामिल किया जाता है।

इन दोनों मापदंडों के माध्यम से, सरकार और नीति निर्माता देश की आर्थिक स्थिति का आकलन कर सकते हैं और आवश्यक सुधारात्मक कदम उठा सकते हैं।

4.8 मुख्य शब्द

1. **राष्ट्रीय आय (National Income)**: यह किसी देश में एक निश्चित अवधि के दौरान उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य है। यह एक देश की समृद्धि और आर्थिक स्थिति का माप है।
2. **सकल घरेलू उत्पाद (GDP - Gross Domestic Product)**: GDP वह कुल मूल्य है जो किसी देश के भीतर, एक निश्चित समय अवधि (आमतौर पर एक वर्ष) के दौरान उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का होता है। इसमें केवल घरेलू उत्पादनों को शामिल किया जाता है, चाहे वह उत्पादन विदेशी कंपनियों द्वारा किया गया हो।
3. **सकल राष्ट्रीय:** GNP, GDP के समान है, लेकिन इसमें देश के नागरिकों द्वारा विदेशों में की गई उत्पादित वस्तुएं और सेवाएं भी शामिल होती हैं। इसके अलावा, इसमें विदेशियों द्वारा देश में की गई उत्पादन गतिविधियाँ घटाई जाती हैं।
4. **आय (Income)**: यह उन संसाधनों या पैसे का माप है जो उत्पादन प्रक्रिया में योगदान करने वाले सभी घटकों (जैसे श्रम, पूंजी) को प्राप्त होती है।
5. **उत्पादन (Production)**: यह उस प्रक्रिया को दर्शाता है जिसमें किसी वस्तु या सेवा का निर्माण होता है। यह GDP और GNP के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है।
6. **विदेशी क्षेत्र (Foreign Sector)**: यह उस क्षेत्र को दर्शाता है जो किसी देश के बाहर स्थित होता है और इसमें निर्यात और आयात शामिल होते हैं। यह GNP और GDP के विश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

7. **सार्वजनिक व्यय (Government Expenditure)**: यह सरकारी खर्चों को दर्शाता है, जो देश के विकास और विभिन्न सरकारी योजनाओं के लिए उपयोग किया जाता है। यह GDP और GNP में शामिल होता है।
8. **विकास (Development)**: यह आर्थिक वृद्धि और सामाजिक कल्याण की दिशा में किया गया सुधारात्मक कार्य है, जो GDP और GNP में वृद्धि से संबंधित होता है।

4.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: GDP (सकल घरेलू उत्पाद) एक देश की सीमा के भीतर एक निश्चित समय अवधि के दौरान उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य है। इसमें केवल घरेलू उत्पादन को ही शामिल किया जाता है, चाहे वह उत्पादन किसी भी देश की कंपनी द्वारा किया गया हो। GNP (सकल राष्ट्रीय उत्पाद) GDP के समान है, लेकिन इसमें एक महत्वपूर्ण अंतर है। GNP में न केवल देश के भीतर उत्पादित वस्तुएं और सेवाएं शामिल की जाती हैं, बल्कि देश के नागरिकों द्वारा विदेशों में की गई उत्पादन गतिविधियों को भी शामिल किया जाता है। इसमें विदेशियों द्वारा देश में किए गए उत्पादन को घटाया जाता है।

उत्तर 2: GDP किसी देश के आर्थिक स्वास्थ्य का एक प्रमुख संकेतक है। इससे यह पता चलता है कि देश का कुल उत्पादन स्तर कितना है और अर्थव्यवस्था कितनी विकसित है। GDP का उपयोग सरकारों, नीति निर्माताओं और अर्थशास्त्रियों द्वारा आर्थिक स्थिति का आकलन करने और भविष्य की नीतियां बनाने में किया जाता है। यह रोजगार, आय वितरण और विकास के स्तर को भी दर्शाता है।

उत्तर 3: GNP यह दर्शाता है कि देश के नागरिक वैश्विक स्तर पर कितनी आर्थिक गतिविधियाँ कर रहे हैं। यह देश के बाहर की आय और निवेश को भी मापता है, जो GDP से अलग है। GNP का उपयोग यह समझने के लिए किया जाता है कि एक देश के नागरिक वैश्विक अर्थव्यवस्था में कितने सक्रिय हैं और उनकी विदेशों में आर्थिक गतिविधियां कितनी महत्वपूर्ण हैं।

उत्तर 4: राष्ट्रीय आय के मापदंडों का उपयोग अर्थशास्त्र में किसी देश के आर्थिक विकास, रोजगार की स्थिति, और समृद्धि को मापने के लिए किया जाता है। इनसे यह भी पता चलता है कि देश के उत्पादन, खर्च और आय के बीच किस तरह का संतुलन है, और इसके आधार पर सरकार और नीति निर्माता सुधारात्मक उपायों को लागू करते हैं।

4.10 संदर्भ सूची

- मिश्रा, एस. (2019). भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और विकास. नई दिल्ली: सागर प्रकाशन।
- गांगुली, पी. (2021). भारतीय अर्थव्यवस्था: मुद्दे और नीतियाँ. मुंबई: प्रतिष्ठान प्रकाशन।
- चक्रवर्ती, बी. (2020). राष्ट्रीय आय और इसके मापदंड. कोलकाता: धर्मा पब्लिशर्स।
- पांडेय, आर. (2022). जी.डी.पी. और जी.एन.पी. की अवधारणाएँ. दिल्ली: राधा प्रकाशन।
- यादव, न. (2023). आर्थिक विकास और राष्ट्रीय आय का विश्लेषण. जयपुर: एकता प्रकाशन।

4.11 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1.राष्ट्रीय आय की परिभाषा दीजिए। इस सन्दर्भ में मार्शल, पीगू एवं फिशर के विचारों की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए ।

Define National Income. Critically analyse the views of Marshall, Pigou & Fisher - in this regard.

2. राष्ट्रीय आय की मार्शल, पीगू एवं फिशर द्वारा दी गई परिभाषाओं की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए। उपयुक्त तीनों परिभाषाओं में कौन श्रेष्ठ हैं?

Critically examine the definitions of National Income given by Marshall, Pigou & Fisher. Which of the above three definitions is best?

3.राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित विभिन्न धारणाओं की व्याख्या कीजिए तथा उनमें अन्तर स्पष्ट कीजिए।

Explain the various concept of National Income and explain the difference between them.

4.कुल राष्ट्रीय उत्पादन, विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन, राष्ट्रीय आय, वैयक्तिक आय तथा व्यय योग्य आय के मध्य अन्तर दीजिए।

Distinguish between GNP, NNP, NI, PI and DI.

5. निम्नलिखित पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए: -

(i) सकल घरेलू उत्पाद एवं सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross Domestic Product and Gross National Product)

(ii) बाजार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product at Market Prices)

(iii) राष्ट्रीय आय (National Income)

(iv) मौद्रिक एवं वास्तविक आय (Nominal & Real Income)

लघु उत्तरीय प्रश्न

L.राष्ट्रीय आय की परिभाषा दीजिए।

Define National income.

2. सकल घरेलू उत्पाद क्या है?

What is Gross domestic product.

3.सकल राष्ट्रीय उत्पाद को परिभाषित कीजिए।

Define Gross national product.

4.शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को समझाइये ।

Explain Net national product.

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. किस अर्थशास्त्री ने राष्ट्रीय आय को उपभोग के आधार पर परिभाषित किया है।

(अ) प्रो. मार्शल (ब) प्रो. पीगू

(स) प्रो. फिशर (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

2. राष्ट्रीय आय को मुद्रा में मापी जा सकने वाली परिभाषा निम्न में से किसने दी है?

(अ) प्रो. मार्शल (ब) प्रो. पीगू

(स) प्रो. फिशर (द) उपर्युक्त सभी ।

3. विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (N.N.P.) होता है-

(अ) N.N.P.= G.N.P. =Depreciation (ब) N.N.P.= G.N.P. + Depreciation

(स) N.N.P. = G.N.P. x depreciation (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

4. किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित समस्त अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के कुल द्राव्यिक मूल्य (बाजार कीमतों पर) को कहते हैं-

(अ) सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) (ब) विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP)

(स) प्रति व्यक्ति आय (द) वैयक्तिक आय ।

(उत्तर- 1. (स), 2. (ब), 3. (अ), 4. (अ))

ब्लॉक - II

इकाई -5
राष्ट्रीय आय की माप एवं सामाजिक लेखांकन
(MEASUREMENT OF NATIONAL INCOME AND SOCIAL ACCOUNTING)

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 राष्ट्रीय आय के माप की विधियां
5.4 सामाजिक लेखांकन के अंग
5.5 सामाजिक खातों का प्रदर्शन
5.6 सामाजिक लेखांकन का महत्व
5.7 सामाजिक लेखांकन की कठिनाइयाँ
5.8 राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाइयाँ एवं समस्यायें
5.9 राष्ट्रीय आय का महत्व
5.10 सार संक्षेप
5.11 मुख्य शब्द
5.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
5.13 संदर्भ सूची
5.14 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय आय माप (Measurement of National Income) एक महत्वपूर्ण आर्थिक प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य किसी देश की समग्र आर्थिक गतिविधियों का मूल्यांकन करना है। यह अर्थव्यवस्था के उत्पादन, खपत और आय के प्रवाह को समझने में मदद करता है। राष्ट्रीय आय के माप से यह पता चलता है कि एक देश ने एक विशेष अवधि में कितनी धनराशि का उत्पादन किया और उसका वितरण कैसे हुआ।
राष्ट्रीय आय मापने के तीन मुख्य तरीके हैं:

1. **उत्पादन पद्धति** (Production Method): इसमें समग्र उत्पादन की कुल वैल्यू का हिसाब लगाया जाता है, जिससे यह पता चलता है कि कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था ने कितनी वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन किया।

2. **आय पद्धति** (Income Method): इस पद्धति में सभी कारक आय जैसे मजदूरी, लाभ, किराया आदि को जोड़कर राष्ट्रीय आय का अनुमान किया जाता है।
3. **व्यय पद्धति** (Expenditure Method): इस पद्धति में सभी खर्चों जैसे उपभोक्ता खर्च, निवेश और सरकारी खर्च को जोड़कर राष्ट्रीय आय का माप किया जाता ।

सामाजिक लेखांकन (Social Accounting) एक विस्तृत प्रक्रिया है, जो विभिन्न आर्थिक गतिविधियों को व्यवस्थित रूप से रिकॉर्ड करने का कार्य करती है। यह न केवल राष्ट्रीय आय की गणना करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि इन आयों का वितरण विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों में कैसे हुआ। सामाजिक लेखांकन से सरकारों और नीति निर्माताओं को यह समझने में मदद मिलती है कि किसी भी नीति का समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा, और आर्थिक विकास की दिशा क्या होगी।

इन दोनों प्रक्रियाओं के माध्यम से किसी देश की आर्थिक स्थिति और विकास की गति का सही अनुमान लगाना संभव होता है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकें।
4. राष्ट्रीय आय की माप के विभिन्न तरीकों को समझ सकें।
5. सामाजिक लेखांकन की प्रक्रिया को समझ सकें।
6. सामाजिक और आर्थिक डेटा का विश्लेषण करने की क्षमता विकसित कर सकें।
7. भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख आर्थिक संकेतकों की पहचान कर सकें।
8. राष्ट्रीय आय के आंकड़ों के उपयोग और सीमाओं को समझ सकें।
9. भारतीय समाज में आर्थिक असमानता की स्थिति का आकलन कर सकें।

5.3 *राष्ट्रीय आय के माप की विधियां*

वर्तमान समय में राष्ट्रीय आय की माप के लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है। ये विधियाँ हैं -

I. उत्पादन गणना विधि (Census of Production Method); **II. आय प्राप्त विधि** (Income Received Method**); III. व्यय विधि** (Expenditure Method); IV. **सामाजिक लेखांकन विधि** (Social Accounting Method) ।

राष्ट्रीय आय के महत्व को स्वीकार किए जाने के बाद से ही इसकी गणना की विधियों की खोज की गई। प्रारम्भ में आय की माप की विधियों में अनेक दोष थे जिससे कि विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त आय की गणना करना अत्यधिक कठिन कार्य था, किन्तु पिछले कुछ दशकों में आय के माप की अनेक वैज्ञानिक विधियों को विकसित किया गया है जिससे कि सही-सही अनुमानों को प्राप्त करना सम्भव हुआ है।

वास्तविकता यह है कि राष्ट्रीय आय की माप के लिए कोई एक विधि पूर्णतः उपयुक्त नहीं होती। कारण यह है कि जहाँ कुछ आर्थिक क्षेत्र ऐसे होते हैं जहाँ **उत्पादन गणना विधि** अधिक उपयुक्त होती है, वहीं कुछ अन्य क्षेत्र ऐसे भी होते हैं जहाँ **आय प्राप्त विधि** अधिक अच्छे ढंग से प्रयुक्त की जा सकती है। यही कारण है कि अनेक देशों में उत्पादन-आय सम्मिश्रण विधि (Combination of Production & Income Method) को प्रयोग में लाया जाता है। राष्ट्रीय आय के माप की उपर्युक्त सभी विधियों की विस्तृत विवेचना निम्न प्रकार हैं: -

1. उत्पादन गणना विधि

(Census of Production Method)

राष्ट्रीय आय की गणना की यह सबसे पुरानी विधि है। इस विधि के अन्तर्गत वर्ष विशेष में उत्पादित समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं का शुद्ध मूल्य (Net Value) ज्ञात किया जाता है और उन सब को जोड़कर राष्ट्रीय आय ज्ञात की जाती है। **प्रो. शूप** (Prof. Shoup) इस विधि को "**अन्तिम उत्पादन योग विधि**" भी कहते हैं। चूँकि इस विधि में कुल उत्पादन का शुद्ध मूल्य ज्ञात किया जाता है, फलतः इस विधि को शुद्ध उत्पादन विधि (Net Output Method) अथवा वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रवाह रीति (Flow of Goods & Services method) कहा जाता है। कुछ विद्वान इस विधि को मूल्य वर्धित विधि (Value Added Method) भी कहते हैं।

उत्पादन- गणना विधि के अन्तर्गत उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का शुद्ध मूल्य ज्ञात किया जाता है और उनका योग करके राष्ट्रीय आय के आकार का अनुमान लगाया

जाता है। इस प्रकार इस विधि में मुख्य रूप से दो प्रकार के आँकड़ों की आवश्यकता होती है, यथा **- एक** देश में उत्पादित सभी अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा और दो

वर्ष विशेष में उत्पादित सभी वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य । तदुपरान्त वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा को उनकी कीमतों से गुणा करने पर मौद्रिक मूल्य प्राप्त हो जाता है। इन मौद्रिक मूल्यों का योग कर के कुल घरेलू उत्पाद ज्ञात किया जाता है।

इस विधि के द्वारा राष्ट्रीय आय की माप करने में मुख्य रूप से इस बात की ओर ध्यान देना पड़ता है कि एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं की गणना बार-बार अथवा **दोहरी गणना** (Double Counting) न हो जाये। इस समस्या को हल करने का तरीका यह है कि गणना में मध्यवर्ती उत्पादनों (Intermediate Products) को सम्मिलित न करके केवल अन्तिम **वस्तुओं एवं सेवाओं** (Final Goods and Services) के योग को ही लिया जावे। यहाँ मध्यवर्ती उत्पादनों से आशय उन पदार्थों से है जो कि अन्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए खरीदे जाते हैं, जैसे डबल रोटी बनाने के लिए आटा खरीदा जाता है। यहाँ आटा मध्यवर्ती पदार्थ है। इसी प्रकार अन्तिम पदार्थ वे होते हैं जो अन्य वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त न होकर केवल उपभोग में प्रयोग होते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में डबल रोटी अन्तिम पदार्थ है। अतः उत्पादन-गणना विधि से आय की गणना करते समय "आटा", जो कि एक मध्यवर्ती पदार्थ है, की गणना न करके अन्तिम पदार्थ "डबल रोटी" की गणना की जाती है।

"दोहरी गणना" से बचने के लिए "**मूल्य वर्धित विधि**" (Value Added Method) को भी प्रयुक्त किया जाता है। इस विधि में प्रत्येक उत्पादन स्तर पर मूल्य में की गई वृद्धि की ही गणना की जाती है। मूल्य वर्धित विधि को निम्न उदाहरण द्वारा सरलता से समझा जा सकता है: -

मूल्य वर्धित गणना विधि की तालिका

	उत्पादक का नाम	उत्पादन की किस्म	उत्पादन का कुल मूल्य (रु.)	वर्धित मूल्य या मूल्य में वृद्धि
1.	कृषक या किसान	गेहूँ	1,000	1,000
2.	आटा चक्की वाला	आटा	1,200	1200-1000 = 200
3.	डबल रोटी बनाने वाला	डबल रोटी	3,000	3000-1200 = 1800
4.	डबल रोटी बेचने वाला	विक्रय	3,500	3500-3000 = 500
	योग		8,700	1000 + 200 + 1800 + 500 = 3500

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि डबल रोटी अन्तिम पदार्थ है और राष्ट्रीय आय की गणना में दोहरी गणना से बचने के लिए केवल अन्तिम पदार्थ की बिक्री अर्थात् डबल रोटी से बिक्री या 3500 रुपए की गणना की जानी चाहिए। यदि प्रत्येक स्तर या

मध्यवर्ती उत्पादनों आटा, डबल रोटी आदि की गणना की जाती है तो यह 8,700 रुपए होता है। इसे राष्ट्रीय आय में नहीं जोड़ा जा सकता, क्योंकि इसमें गेहूँ, आटा एवं डबलरोटी की दोहरी गणना हुई है।

यदि केवल वर्धित मूल्य की गणना की जाती है, तब भी योग 3,500 रु. होगा, अर्थात गेहूं का मूल्य 1000 रु. आटा चक्की वाले ने 1000 रु. का गेहूँ का आटा बनाकर उसे 1200 रु. में बेचा, अर्थात केवल 200 रु. की वृद्धि की। इसी प्रकार डबल रोटी बनाने वाले ने 1200 रु. का आटा खरीदकर 3000 रु. की डबल रोटी बनाई, अर्थात 3000-1200 1800 रु. की मूल्य वृद्धि की। अन्त में विक्रेता ने 3000 रु. की डबल रोटी खरीद कर 3,500 रु. में बेची, अर्थात 500 रु. (3500-3000) की मूल्य वृद्धि की। इस प्रकार कुल मूल्य वृद्धि, यथा 1000+200+1800+500=3500 रु. हुई। संक्षेप में, दोहरी गणना से बचने के लिऐ दो तरीके है - **प्रथम**: केवल अन्तिम उत्पादन के मूल्य की गणना करना और **द्वितीय**: वर्धित मूल्य की गणना करना ।

उत्पादन गणना विधि के द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है, यथा- प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र और सेवा क्षेत्र या तृतीयक क्षेत्र। इन क्षेत्रों में सम्मिलित होने वाली प्रमुख मदें निम्न प्रकार हैं: -

(अ) प्राथमिक क्षेत्र (Primary Sector): - इस क्षेत्र में भूमि की सतह के ऊपरी भाग एवं नीचे के भाग से होने वाले उत्पादन को सम्मिलित किया जाता है। ऊपरी भाग से मुख्यतः कृषि, वानिकी, पशुपालन, मछली पालन आदि से उत्पादन होता है। भूमि की नीचे की सतह में विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ, यथा कोयला, लोहा, ताँबा, सोना आदि पाये जाते हैं।

(ब) द्वितीयक क्षेत्र (Secondary Sector): - इस क्षेत्र में मुख्यतः उद्योगों का समावेश होता है। इसी लिये इस क्षेत्र को विनिर्माण क्षेत्र (Manufacturing Sector) भी कहा जाता है। उद्योगों के अलावा इस क्षेत्र में गैस, बिजली आपूर्ति आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(स) सेवा क्षेत्र या तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector): - इस क्षेत्र में सभी प्रकार की सेवाएँ सम्मिलित रहती है, यथा- व्यापार, यातायात, बैंकिंग, बीमा, प्रशासन, संचार आदि।

इसके साथ ही इस विधि के अन्तर्गत उत्पादन कार्य में प्रयुक्त की जाने वाली मशीनों तथा अन्य पूँजीगत उपकरणों का मूल्य हास (Depreciation) मालूम करके उसे बाजार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{MP}) में से घटा देने पर बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDPmp) ज्ञात हो जाता है। यदि बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{MP}) में से अप्रत्यक्ष करों की राशि को घटा दिया जाता है तथा सरकारी सहायता

(सबसिडी) को जोड़ दिया जाता है तो साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDPFC) प्राप्त कि जा सकता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDPfC) के साथ विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय को समायोजित किया जाता है तो शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product OR NNP) या राष्ट्रीय आय (National Income) प्राप्त होती है। यदि विदेशों से शुद्ध आय धनात्मक है तो शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की राशि शुद्ध घरेलू उत्पाद से अधिक होगी। इसके विपरीत, विदेशों से शुद्ध आय ऋणात्मक होने पर शुद्ध घरेलू उत्पाद की राशि शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की राशि से अधिक होगी।

II. आय प्राप्त विधि

(Income Flow Method)

आय प्राप्त विधि को आय गणना रीति भी कहा जाता है। इस विधि में राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के लिए उत्पादन के सभी साधनों के भुगतान का योग किया जाता है। **प्रो. शूप** (Shoup) इस योग को साधन भुगतान योग (Factor Payment Total) कहते हैं। इस विधि में किसी वर्ष विशेष में "आय के प्रवाह" की गणना की जाती है, इसलिए इस विधि को "**आय प्रवाह रीति**" (Income Flow Method) भी कहा जाता है। संक्षेप में, **उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को जो शुद्ध आय प्राप्त होती है, उसका योग ही राष्ट्रीय आय होता है।**

देश की सम्पूर्ण जनशक्ति उत्पत्ति के साधनों के रूप में उत्पादन में सहयोग देती है और उनके इस योगदान के फलस्वरूप उन्हें कुल उत्पादन में से मजदूरी, वेतन, लगान, ब्याज एवं लाभ के रूप में पारिश्रमिक या आय प्राप्त होती है। यदि सभी साधनों को प्राप्त होने वाली आय को जोड़ दिया जाए तो राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है, किन्तु वास्तविकता यह है कि विभिन्न उद्योगों तथा उत्पादनरत इकाइयों द्वारा जो कुल उत्पादन होता है, उ उसे पूरा का पूरा उत्पत्ति के साधनों के मध्य वितरित नहीं किया जाता। इसका एक भाग सरकार द्वारा अप्रत्यक्ष करों के रूप में ले लिया जाता है। इसके साथ ही एक अन्य भाग पूँजीगत पदार्थों की घिसावट के कारण मूल्य हास के रूप में रख लिया जाता है। अतः आय प्राप्त विधि से राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने के लिए अप्रत्यक्षकरों की राशि एवं मूल्य हास को भी जोड़ लिया जाता है।

संक्षेप में, आय प्राप्त विधि से राष्ट्रीय आय (Gross National Product) की गणना के लिए निम्न मदों को जोड़ते हैं: -

1. मजदूरियाँ एवं वेतन: - उत्पादन में कार्यरत कर्मचारियों को पारिश्रमिक के रूप में दी जाने वाली मजदूरी एवं वेतन । इसमें कमीशन्, बोनस एवं सामाजिक सुरक्षा के रूप में प्राप्त आय भी जोड़ी जाती है।

2. लगान: - भूमि एवं अन्य सम्पत्ति-साधनों की पूर्ति करने वालों को पारिश्रमिक के रूप में दी जाने वाली आय, जिसे लगान कहते हैं, को जोड़ा जाता है।

3. ब्याज: - मुद्रा एवं पूँजी की पूर्ति करने वालों को देय पारिश्रमिक के रूप में ब्याज प्राप्त होता है।

4. लाभ: - एकाकी मालिकों, साझीदारों एवं व्यापारिक निगमों को लाभ प्राप्त होता है। व्यापारिक निगमों या कम्पनियों को प्राप्त होने वाला लाभ तीन भागों में बाँटा जाता है**, प्रथम** -निगम कर जो सरकार को दिया जाता है, **द्वितीय** -लाभांश (Dividend) के रूप में अंशधारियों को दिये जाने वाला हिस्सा, और **तृतीय**- अवितरित लाभ (Un-distributed Profit) जो कि व्यापारिक निगमों के पास ही रहता है।

5. अप्रत्यक्ष कर: -राज्य एवं केन्द्र सरकारें उत्पादन कर, बिक्रीकर आदि के रूप में कर लगाती है और इन्हें लागत का एक अंश मानकर व्यापारी वस्तुओं की कीमत में शामिल कर लेते हैं।

6. मूल्य ह्रास: - घिसावट या मूल्य हास का अनुमान पूँजीगत पदार्थों अथवा मशीनों की सम्पूर्ण अवधि को ध्यान में रखकर वार्षिक आधार पर लगाया जाता है।

इस विषय में यह तथ्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यदि कुल आय में मूल्य ह्रास सम्मिलित रहता है तो उसे कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) कहा जाता है। मूल्य हास को घटा देने से प्राप्त आय को शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) या राष्ट्रीय आय कहा जाता है।

7. विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय: -सकल घरेलू उत्पाद में विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय को जोड़ने से सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) प्राप्त होता है, अर्थात् राष्ट्रीय आय जानने के लिए विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय को जोड़ा जाता है।

संक्षेप में, सूत्र के रूप में इसे निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है: -

बाजार मूल्य पर राष्ट्रीय आय =मजदूरी एवं वेतन + व्याज + लगान +लाभ + विदेशों से शुद्ध आय+ प्रत्यक्ष कर +सामाजिक सुरक्षा

उत्पादन संगणना विधि के समान इसमें भी दोहरी गणना की सम्भावनाएँ हैं, जिनसे बचा जाना चाहिए। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति की आय ज्ञात करने के लिए उसके व्यापारिक व्यय को घटा देना चाहिए। इसी प्रकार, कम्पनी द्वारा बाँटे गये लाभ अथवा हिस्सेदारों की आय एक होती है, अतः इनमें से एक को ही जोड़ा जाना चाहिये। इस विधि में यह भी ध्यान

में रखा जाना चाहिए कि उत्पादक उत्पादन में से जो भाग अपने उपभोग के लिये निकालता है, उसे भी राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाना चाहिए।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस विधि के द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करने से आय के वितरण की जानकारी प्राप्त हो जाती है तथा आय की दोहरी गणना की सम्भावनाएँ भी तुलनात्मक कम हो जाती है। किन्तु इस विधि का उपयोग सीमित है। इस विधि के अन्तर्गत मुख्य रूप से 'आय-कर' से सम्बन्धित आंकड़ों को प्रयोग में लाया जाता है, किन्तु ये आँकड़े अधिक विश्वसनीय नहीं होते। आय-कर से सम्बन्धित आँकड़े भी उन्हीं देशों में अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं जिन देशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग आय कर अदा करता है। यह समस्या उस समय और अधिक गंभीर हो जाती है जब कि देश के किसी भी भाग में मुद्रा का प्रचलन न हो तथा लोगों को मजदूरी का भुगतान वस्तुओं के रूप में किया जाता है।

III. व्यय विधि

(Expenditure Method)

राष्ट्रीय आय गणना की यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि राष्ट्रीय आय एवं राष्ट्रीय व्यय दोनों बराबर होते हैं। यहाँ राष्ट्रीय व्यय से आशय उपभोग व्यय एवं विनियोग व्यय दोनों से होता है। उपभोग पर किए जाने वाले व्यय को **अन्तिम उपभोग व्यय** (Final Consumption Expenditure) कहा जाता है और यह व्यक्तियों, परिवारों एवं सरकार के द्वारा किया जाता है। **विनियोग व्यय** उत्पादन बढ़ाने, मूल्य हास के लिए पूँजीगत वस्तुएँ प्रतिस्थापित करने एवं नवीन प्लान्ट तथा मशीनें आदि लगाने के उद्देश्य से उत्पादकों एवं सरकार द्वारा किया जाता है।

आधुनिक युग में आयात निर्यात व्यापार का विशेष महत्व होता है। इसे राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जाता है। एक देश की सरकार एवं व्यावसायिक फर्में विदेशों से उपभोग एवं निवेश की वस्तुएँ खरीदते हैं, जिसे आयात पर व्यय कहा जाता है। इसी प्रकार, सरकार एवं व्यावसायिक फर्मे देश में उत्पादित वस्तुओं का निर्यात करती हैं। वस्तुओं के साथ-साथ **सेवाओं का आयात-निर्यात** भी किया जाता है, जैसे- जहाजरानी, बीमा, हवाई यातायात, बैंकिंग, पर्यटन आदि से सम्बन्धित सेवाएँ। शुद्ध निर्यात की गणना करने के लिए कुल वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्यात मूल्य में से वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात मूल्य को घटाया जाता। यह धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों हो सकता है, यथा शुद्ध निर्यात = वस्तुओं एवं सेवाओं का निर्यात मूल्य वस्तुओं एवं सेवाओं का आयात मूल्य। व्यय विधि के द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना कुल उपभोग व्यय (Consumption या

C) एवं विनियोग व्यय (Investment Expenditure OR I) के द्वारा की जाती है, अर्थात, राष्ट्रीय आय = C + I

उपर्युक्त सूत्र में निजी एवं सरकारी क्षेत्र के उपभोग व्यय एवं विनियोग व्यय सम्मिलित है। अतः बाजार मूल्य पर राष्ट्रीय आय या बाजार मूल्य पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNPMP) की गणना निम्नलिखित सूत्र द्वारा की जाती है:

$$GNP_{MP}=Cp+CG+Ip+Ig+ (X-M)$$

इस सूत्र में: - Cp = निजी उपभोग व्यय
Cg = सरकारी उपभोग व्यय
Ip = निजी विनियोग व्यय
Ig = सरकारी विनियोग व्यय
X = कुल निर्यात व्यापार
M = कुल आयात व्यापार

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस विधि में कुल व्यय को ज्ञात करने के लिए बाजार मूल्यों (Market Prices) का प्रयोग किया जाता है। इसलिए इस विधि में राष्ट्रीय आय की गणना पहले बाजार मूल्यों पर होती है। साधन लागत पर राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के लिए बाजार मूल्य पर राष्ट्रीय उत्पाद की राशि में से अप्रत्यक्ष कर घटाकर तथा सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता को जोड़ा जाता है।

व्यय विधि के महत्वपूर्ण घटक

(Important Components of Expenditure Method):

राष्ट्रीय आय की गणना की व्यय विधि के अन्तर्गत सम्मिलित किए जाने वाले महत्वपूर्ण घटक है: (1) निजी अन्तिम उपभोग व्यय, (2) सरकारी अन्तिम उपभोग व्यय, (3) स्थिर पूँजी निर्माण एवं स्टाक में परिवर्तन और (4) शुद्ध निर्यात मूल्य। इन घटकों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है: -

1. निजी अन्तिम उपभोग व्यय (Private Final Consumption Expenditure): - राष्ट्रीय आय की गणना में निजी अन्तिम उपभोग व्यय का महत्वपूर्ण स्थान है। निजी व्यय की गणना हेतु बाजार में वस्तुओं के कुल विक्रय की मात्रा एवं विभिन्न वस्तुओं के फुटकर मूल्य की आवश्यकता होती है। इसमें नाशवान वस्तुओं तथा सेवाओं पर व्यय के साथ टिकाऊ एवं अर्ध-टिकाऊ वस्तुओं पर हुए व्यय को भी सम्मिलित किया जाता है।

2. सरकार का अन्तिम उपभोग व्यय: - इस वर्ग में सम्मिलित व्यय दो प्रकार का होता है, यथा - एक सरकार द्वारा कर्मचारियों के पारिश्रमिक का भुगतान तथा सरकार

द्वारा वस्तुओं और सेवाओं का शुद्ध क्रय (Net Purchase) । इसमें सरकार द्वारा विदेशों से क्रय पर किया गया व्यय तथा विदेशी कर्मचारियों का पारिश्रमिक भी जोड़ा जाता है।

3. स्थिर पूँजी निर्माण एवं स्टॉक में परिवर्तन: -एक वर्ष में उपभोग के अलावा जो विनियोग होता है उसे पूँजी निर्माण भी कहा जाता है। पूँजी निर्माण से दो प्रकार की परिसम्पत्तियों का निर्माण होता है, प्रथम- निर्माण से सम्बन्धित (Relating to Construction) और द्वितीय मशीनें एवं उपकरण। इसके साथ ही पूँजी के विनियोग उत्पादकों के स्टॉक में भी वृद्धि होती है।

4. शुद्ध निर्यात मूल्य (Value of Net Export): - निर्यातों में से आयातों को घटा कर शुद्ध निर्यात का मूल्य ज्ञात किया जा सकता है।

राष्ट्रीय आय की गणना के लिए व्यय विधि का प्रयोग बहुत सीमित है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व तो इसका उपयोग बहुत कम था। किन्तु जब से अमरीका में प्रो. साइमन कुजनेट्स ने वस्तु प्रवाह रीति (Commodity Flow Method) तथा प्रो. लिमोन्टीफ ने आगत-निर्गत पद्धति (Input-Output System) का विकास किया है, तब से विकसित देशों में इस विधि का प्रयोग बढ़ा है। विकसित देशों में व्यय विधि का प्रयोग दूसरी अन्य रीतियों के साथ किया जाता है। वास्तव में इस रीति के प्रयोग का मुख्य उद्देश्य दूसरी रीतियों द्वारा अनुमानित राष्ट्रीय आय की विश्वसनीयता की जाँच करना होता है।

प्रश्न 1: राष्ट्रीय आय मापने के तीन प्रमुख दृष्टिकोण कौन से हैं?

IV. सामाजिक लेखांकन विधि
(Social Accounting Method)

राष्ट्रीय आय की माप की यह एक नवीन विधि है। इस विधि का विकास सन् 1930 की महामन्दी के बाद प्रो. रिचार्ड स्टोन, जे.आर हिक्स, हैराल्ड ईडी तथा एलन आदि अर्थशास्त्रियों ने किया है। इस विधि के अन्तर्गत केवल राष्ट्रीय आय की गणना ही नहीं की जाती, वरन् देश की सम्पूर्ण आर्थिक संरचना, क्षेत्रीय अन्तर्सम्बन्ध आदि आर्थिक क्रियाओं का विस्तृत विवरण विभिन्न लेखों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

प्रो. रिचार्ड स्टोन (Prof. Richard Stone) द्वारा प्रतिपादित सामाजिक लेखांकन विधि के अन्तर्गत देश की जनसंख्या को आय के आधार पर अनेक वर्गों में विभक्त किया जाता है। तदुपरान्त प्रत्येक वर्ग में सम्मिलित कुछ लोगों का चयन कर उनकी आय को ज्ञात किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त आय को आधार मानकर उसकी सम्पूर्ण आय की गणना की जाती है। इसी प्रकार जनसंख्या के अन्य वर्गों की आय भी ज्ञात की जाती है। इस प्रकार जनसंख्या के सभी वर्गों की आय को जोड़ कर कुल राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है।

प्रो. ऐडी (Edcy) **एवं प्रो. पीकोक** (Peacock) ने सामाजिक लेखांकन को परिभाषित करते हुए लिखा है, "सामाजिक लेखांकन मानव तथा मानवीय संस्थाओं की क्रियाओं के सांख्यिकीय वर्गीकरण से इस ढंग से सम्बन्धित है कि वह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्यकरण को समझने में सहायक होता है, परन्तु सामाजिक लेखांकन के अध्ययन का

क्षेत्र, आर्थिक क्रिया के केवल सांख्यिकीय वर्गीकरण को ही सम्मिलित नहीं करता, वरन् अर्थव्यवस्था के कार्यकरण के विश्लेषण हेतु इस ढंग से एकत्रित जानकारी के प्रयोग को भी सम्मिलित करता है।"

आवश्यक तत्व -

सामाजिक लेखांकन के मुख्य तत्व निम्न प्रकार है: -

i) समस्त अर्थव्यवस्था व उसके विभिन्न क्षेत्रों का सम्बन्ध - सामाजिक लेखांकन में व्यापारिक लेखों तथा द्वितीय लेखों तथा द्वितीय प्रविष्टि पद्धति के सिद्धान्त को लेकर चलते हैं। सामाजिक लेखांकन समस्त अर्थव्यवस्था के कार्यकरण तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करते हैं।

(ii) सामाजिक लेखांकन तथा आँकड़े दो सम्बन्धित वस्तुएँ हैं- आँकड़े अनुमानों के एकत्रीकरण हैं जो स्वयं उपयोगी है, परन्तु वे अन्य सांख्यिकीय संग्रहण में व्यक्त मूल्यों पर निर्भर नहीं हैं। लेखांकन कथन सांख्यिकीय श्रेणियों का एक समूह है, जिसमें प्रत्येक श्रेणी अन्य सभी श्रेणियों से एक अनोखे ढंग से बंधी रहती है। लेखांकन में एक मद के मूल्य में परिवर्तन दूसरे मद में परिवर्तन की आवश्यकता को उत्पन्न करता है।

(iii) सामाजिक लेखांकन केवल सांख्यिकीय जानकारी का एकत्रीकरण ही नहीं करता है, बल्कि आँकड़ों को इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि कथनों की संरचना से विभिन्न मदों के पारस्परिक सम्बन्धों को सुगमता से देखा जा सके।

(iv) सामाजिक लेखांकन की तीन दिशाएँ हैं (अ) साईमन कुजनेट्स की रीति, (ब) लिओन्टीफ की इनपुट आऊटपुट प्रणाली, (स) मौरिस कोपलैण्ड का द्रव्य प्रवाहों का अध्ययन ।

5.4 *सामाजिक लेखांकन के अंग*

सामाजिक लेखांकन के प्रमुख पाँच अंग होते हैं, यथा (1) उत्पादन खाता, (2) सरकारी खाता, (3) विदेशी खाता, (4) उपभोग खाता और (5) पूँजी खाता। इन अंगों की विस्तृत व्याख्या निम्न प्रकार है -

(1) उत्पादन खाता (Production Account) - यह खाता अर्थव्यवस्था के व्यवसाय क्षेत्र से सम्बन्धित रहता है। इसमें सभी प्रकार की उत्पादन क्रियाओं को सम्मिलित किया

जाता है जैसे कि निर्माणी, व्यापारिक आदि। इसमें सार्वजनिक, निजी कम्पनियाँ, स्वामित्व वाली फर्मे व एकाकी व्यापार, राज्य स्वामित्व के व्यावसायिक उपक्रम आदि सम्मिलित किए जाते हैं। इनमें समस्त उत्पादन क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है और समस्त भुगतान अन्य क्षेत्रों को प्रवाहित होते हैं। व्यवसाय क्षेत्र के उत्पादन खाते को निम्न सारणी में दिखाया जा सकता है:-

उत्पादन खाता

(करोड़ रुपए में)

	भुगतान	Rs.		प्राप्तियाँ	Rs.
1.	वैयक्तिक क्षेत्र को भुगतान जैसे मजदूरी, वेतन	290	5. उपभोग पर व्यय		230
2.	सरकार को भुगतान	15	6. सरकारी खरीद		40
3.	व्यापारिक बचत	10	7. सकल निजी घरेलू विनियोग		30
4.	वस्तुओं व सेवाओं का आयात	10	8. वस्तुओं व सेवाओं का निर्यात		25
	सकल राष्ट्रीय आय	325		सकल राष्ट्रीय व्यय	325

निजी क्षेत्र के भुगतान में किराया, ब्याज, लाभांश, मजदूरी, वेतन, कर्मचारी क्षतिपूर्ति व स्वामी की आय को सम्मिलित किया जाता है। सरकार को भुगतान में करों के रूप में सरकार को भुगतान व सामाजिक सुरक्षा पर भुगतान सम्मिलित किया जाता है। व्यापारिक बचत में उत्पादक का लाभ या निगम की बचत आती है। विदेशी क्षेत्र को भुगतान में वस्तुओं व सेवाओं का आयात सम्मिलित किया जाता है। इन सभी के योग से सकल राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है।

उत्पादन खाते के प्राप्ति भाग में माल व वस्तुओं की निजी क्षेत्र को बिक्री से प्राप्त आय को सम्मिलित करते हैं। सरकारी क्रय में व्यापारियों द्वारा सरकार को माल व सेवाओं की बिक्री को लिया जाता है। सकल निजी घरेलू विनियोग में पूँजीगत माल का सकल प्रवाह व माल में शुद्ध परिवर्तन को सम्मिलित किया जाता है।

शुद्ध निर्यात में व्यापारिक क्षेत्र द्वारा विश्व में माल व सेवाओं की बिक्री से अर्जित आय को सम्मिलित किया जाता है। इन समस्त मदों का योग ही व्यय के रूप में सकल राष्ट्रीय उत्पाद है।

(1) सरकारी खाता (Government Account) - सरकारी खाते में सरकारी क्षेत्र के आगमन व बाह्यगमन को सम्मिलित करते हैं। सरकारी क्षेत्र में समस्त प्रकार के सार्वजनिक अधिकारियों को लेते हैं जैसे कि केन्द्र, राज्य व स्थानीय सरकार। सरकारी खाते को निम्न प्रकार से दिखाया जा सकता है:

सरकारी खाता

(करोड़ रुपए में)

	भुगतान	Rs.		प्राप्तियाँ	Rs.
1.	व्यवसाय को भुगतान	32	5.	व्यवसाय से प्राप्तियाँ	16
2.	व्यक्तियों को भुगतान	8	6.	व्यक्तियों से प्राप्तियाँ	54
3.	सरकारी अधिशेष	18			
4.	विदेशियों को भुगतान	12			
	सरकारी व्यय व अधिशेष	70		सरकारी प्राप्तियाँ	70

(3) विदेशी खाता (Foreign Account) - विदेशी खाते में एक देश का बाहर के राष्ट्रों से होने वाले व्यवहारों को दिखाया जाता है। इस खाते में वस्तुओं व सेवाओं का अन्तर्राष्ट्रीय आवागमन व हस्तांतरण भुगतान व अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान शेष की स्थिति को दिखाया जाता है। भाड़ा व बीमा के व्ययों को पृथक से नहीं दिखाया गया है। इस खाते में निर्यात को भुगतान में बायीं ओर तथा आयात को प्राप्ति में दायीं ओर दिखाया गया है। यहाँ पर विश्व में होने वाले भुगतान एवं प्राप्तियों को दिखाया जाता है। इसे निम्न प्रकार से दिखाया जा सकता है :-

विदेशी खाता

(करोड़ रुपए में)

	भुगतान	Rs.		प्राप्तियाँ	Rs.
1.	वस्तुओं व सेवाओं का आयात	10	5.	माल व सेवाओं का निर्यात	28
2.	विदेशियों को हस्तांतरण भुगतान	8			
3.	सरकार द्वारा विदेशियों को हस्तांतरण भुगतान	7			
4.	शुद्ध विदेशी विनियोग	3			
	विदेशों से शुद्ध प्राप्तियाँ	28		विदेशियों को शुद्ध भुगतान	28

(4) उपभोग खाता (Consumption Account) - उपभोग खाता निजी क्षेत्र के आय एवं व्यय खाते को प्रदर्शित करता है। घरेलू व निजी क्षेत्र में समस्त उपभोक्तागण एवं गैर लाभ अर्जित संस्थाएँ सम्मिलित की जाती है जैसे कि क्लब व संस्थाएँ। उपभोग खाते को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है

उपभोग खाता

(करोड़ रुपए में)

	भुगतान	Rs.		प्राप्तियाँ	Rs.
1.	उपभोग व्यय	225	5.	व्यापार, मजदूरी व वेतन आदि से प्राप्तियाँ	290
2.	सरकार को भुगतान	50			
3.	निजी बचत	20	6.	सरकार से प्राप्तियाँ	15
4.	विदेशियों को हस्तांतरण	10			
	निजी व्यय व बचत	305		निजी आय	305

उपभोग खाते की बायीं ओर की मुख्य मदों में घरेलू उपभोक्ता द्वारा अपनी माँग की पूर्ति हेतु वस्तुओं व सेवाओं के क्रय पर होने वाला व्यय सम्मिलित किया जाता है। सरकार को भुगतान में कर एवं विशेष बीमा अंशदान आता है। अगली मद निजी बचत है जिसका उपयोग घरेलू क्षेत्र में विनियोग में किया जाता है। विदेशियों को हस्तांतरण में विदेशी प्रतिभूतियों में विनियोग या देश के निवासियों द्वारा शिक्षा पर या विदेशों में यात्रा पर व्यय को सम्मिलित किया जाता है। उपभोग खाते के दायीं ओर व्यवसाय व घरेलू उपभोक्ताओं की आय को सम्मिलित करते हैं। इसमें मजदूरी, वेतन, लाभ, ब्याज, लाभांश, किराया, चालू हस्तांतरण आदि सम्मिलित किए जाते हैं। सरकार से प्राप्तियों में हस्तांतरण भुगतान एवं सार्वजनिक ऋणों पर शुद्ध ब्याज का भुगतान आता है।

(5) पूँजी खाता (Capital Account) - पूँजी खाता बताता है कि बचत सदैव घरेलू व विदेशी विनियोग के बराबर होता है। बचत को सदैव स्थायी पूँजी और देश या विदेश में स्टॉक या सम्पत्तियों में लगाया जा सकता है। पूँजी खाते को निम्न सारणी में दिखाया गया है: -

पूँजी खाता

(करोड़ रुपए में)

	[illegible]	Rs.		[illegible]	Rs.
1.	[illegible]	40	3.	[illegible]	10
2.	[illegible]	5	4.	[illegible]	20
			5.	[illegible]	15
	[illegible]	45		[illegible]	45

सकल निजी विनियोजन में सकल पूँजीगत वस्तुओं का प्रवाह एवं स्टॉक में शुद्ध परिवर्तन को सम्मिलित किया जाता है। चालू खाते में विदेशी आधिक्य को शुद्ध विदेशी विनियोग में लेते हैं। सीधे हाथ की ओर सकल बचतों में व्यावसायिक व निजी बचत एवं सरकारी बचत आती है।

4.5 सामाजिक खातों का प्रदर्शन

निजी खातों की ही भाँति सामाजिक लेखों को द्विप्रविष्टि आधार पर प्रदर्शित किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा अनुमोदित सारणी के रूप में सामाजिक लेखांकन के प्रारूप को दिखाया जाता है। एक सामाजिक लेखांकन सारणी को सामाजिक खाता मेट्रिक्स भी कहा जाता है। अतः एक व्यवहार मेट्रिक्स का उपयोग सामाजिक खाते में किया जा सकता है, जिसमें प्रत्येक लाइन में दूसरे क्षेत्र का भुगतान तथा प्रत्येक कॉलम में दूसरे क्षेत्र की प्राप्तियों को दिखाया जाता है। मिलान करने हेतु यह आवश्यक है कि एक लाइन का योग, कॉलम के योग के बराबर होना चाहिए। सामाजिक खाते की मेट्रिक्स को निम्न सारणी में दिखाया जा सकता है जिसमें भुगतान के प्रवाह एवं प्राप्तियों को व उनके सम्बन्ध को दिखाया गया है। इस सारणी में प्रत्येक खाते की एक लाइन है, जिसमें भुगतान को दिखाया गया है तथा एक कॉलम में प्राप्तियों को दिखाया गया है, इसे निम्न तालिका की सहायता से दिखाया जा सकता है:-

सामाजिक खाते का मेट्रिक्स प्रवाह

(करोड़ रुपए में)

प्राप्तियाँ / भुगतान	खाता					योग
	1 उत्पादन	2 सरकारी	3 विदेशी	4 उपभोग	5 पूँजी	
उत्पादन	–	15	10	290	10	325
सरकारी	40	–	12	8	32	
विदेशी	25	–	–	–	–	
उपभोग	290	34	30	–	10	
पूँजी	30	–	7	–	–	
योग	325					

सामाजिक खाता मेट्रिक्स में तीन बातों को स्पष्ट रूप से बताया गया है

(i) प्रत्येक सेल एक क्षेत्र के खाते के भुगतान तथा दूसरे क्षेत्र खाते की प्राप्तियों को समान आधार पर प्रदर्शित करता है।

(ii) प्रत्येक क्षेत्रीय खाते का कुल योग उस क्षेत्र की कुल प्राप्तियों के बराबर रहता है।

(iii) सामाजिक लेखांकन मेट्रिक्स में समस्त क्षेत्रों का कुल भुगतान सभी क्षेत्रों की कुल प्राप्तियाँ के बराबर रहता है।

5.6 *सामाजिक लेखांकन का महत्व*

सामाजिक लेखांकन के उपयोग व महत्व को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है

(1) अनेक व्यवहार - प्रत्येक देश में आर्थिक जगत में अनेक व्यवहार किए जाते हैं जो कि क्रय विक्रय, आय प्राप्त करने, भुगतान करने, निर्यात, आयात करों को चुकाने आदि से सम्बन्धित होते हैं। सामाजिक लेखांकन रखने से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि इन विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को सही ढंग से वर्गीकृत कर दिया जाता है तथा उसी की सहायता से राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय व्यय, बचत, विनियोग, उपभोग व्यय, उत्पादन व्यय, सरकारी व्यय, विदेशी भुगतान व प्राप्तियों आदि को ज्ञात किया जा सकता है।

(2) विभिन्न क्षेत्रों का सापेक्षिक महत्व - सामाजिक लेखों की सहायता से देश में विभिन्न क्षेत्रों के सापेक्षिक महत्व को ज्ञात किया जा सकता है। इसकी सहायता से यह कहा जा सकता है कि क्या उत्पादन क्षेत्र, उपभोग क्षेत्र, विनियोग क्षेत्र आदि का राष्ट्रीय लेखे के अन्य क्षेत्रों से महत्व अधिक है या नहीं।

(3) अनुसंधानकर्ता को मार्गदर्शन - सामाजिक लेखांकन द्वारा आर्थिक अनुसंधानकर्ता को उचित मार्गदर्शन दिया जा सकता है कि उसे किस प्रकार के समंक एकत्रित करने चाहिए जिससे देश की अर्थव्यवस्था का सही ढंग से विश्लेषण किया जा

सके। यह समंक सकल राष्ट्रीय उत्पाद, वस्तुओं व सेवाओं पर सरकारी व्यय, निजी उपभोग व्यय, सकल निजी विनियोग आदि से सम्बन्धित हो सकते हैं।

(4) जीवन स्तर में परिवर्तन - सकल राष्ट्रीय उत्पाद में परिवर्तन को चालू मूल्यों पर मूल्यांकित करके प्रति व्यक्ति उत्पादन को व्यक्त करते हुए प्रदर्शित किया जाता है। इसी प्रकार से उत्पादकता के स्तर में परिवर्तन को सापेक्षिक सकल राष्ट्रीय उत्पाद के रूप में स्थिर मूल्य के रूप में मूल्यांकित करके प्रति व्यक्ति कार्यरत जनसंख्या के रूप में मापा जा सकता है।

(5) अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में निर्भरता - सामाजिक लेखांकन द्वारा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में निर्भरता की जानकारी प्रदान की जा सकती है। इसका अध्ययन सामाजिक लेखांकन की मेट्रिक्स व्यवस्था की सहायता से किया जा सकता है।

(6) कार्य निष्पादन का निर्धारण - बड़े व्यावसायिक गृहों द्वारा सामाजिक लेखांकन की सहायता से उनकी प्रगति व कार्य निष्पादन का अध्ययन करके अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित सूचनाओं के आधार पर उनकी कार्यप्रणाली, प्रगति आदि का अध्ययन करके उनकी प्रगति की योजना बनायी जा सकती है।

(7) अर्थव्यवस्था के ढाँचे का अध्ययन - सामाजिक लेखांकन के द्वारा अर्थव्यवस्था के ढाँचे का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है। इसकी सहायता से न केवल राष्ट्रीय आय बल्कि उत्पादन व उपभोग के आकार, करारोपण एवं बचत का स्तर तथा अर्थव्यवस्था का विदेशी व्यापार पर निर्भरता आदि की जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(8) सम्बन्धों का वर्गीकरण - सामाजिक लेखांकन द्वारा बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (घटक मूल्य पर) का सकल राष्ट्रीय उत्पाद से सम्बन्ध को वर्गीकृत करने में सहायता प्रदान की जाती है।

(9) प्रवृत्तियों का मार्गदर्शन - सामाजिक लेखांकन के विभिन्न भागों में विचलन होने से अर्थव्यवस्था के अन्दर आय वितरण की प्रवृत्ति की जानकारी व मार्गदर्शन प्राप्त हो जाता है।

(10) अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली की बाह्य तस्वीर - सामाजिक लेखांकन की सहायता से अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली की बाह्य तस्वीर की जानकारी प्राप्त हो जाती है। अर्थव्यवस्था की आन्तरिक पूर्वानुमान की जानकारी प्राप्त करने में भी इसका उपयोग किया जा सकता है तथा भावी पूर्वानुमान लगाए जा सकते हैं। अतः सामाजिक लेखांकन द्वारा पूर्वानुमान के आँकड़ों में स्थिरता लायी जा सकती है।

(11) सरकारी नीतियों पर प्रभाव - सामाजिक लेखांकन द्वारा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए सरकारी नीतियों के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है तथा राष्ट्रीय आय लेखे के आधार पर अर्थव्यवस्था के संचालन हेतु नवीन नीतियों का निर्माण

सम्भव हो सकता है। इनका मुख्य कार्य सरकार को आर्थिक दशाओं के नियंत्रण करने सम्बन्धी मार्गदर्शन प्रदान करना है जिससे आर्थिक नीतियों का निर्माण हो सके तथा राष्ट्रीय आय को अधिकतम करके रोजगार को उच्च स्तर पर रखा जा सके, देश में आय व धन की असमानता को कम किया जा सके, मूल्यों में अनावश्यक वृद्धि को रोका जा सके तथा विदेशी विनिमय को सुरक्षित रखा जा सके।

(12) अन्तर्राष्ट्रीय कार्य में उपयोगी - सामाजिक लेखांकन अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों के लिए भी उपयोगी है। विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के सामाजिक लेखांकन के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर राष्ट्रों को अविकसित, अर्द्धविकसित एवं विकसित राष्ट्रों में विभाजित किया जा सकता है। इसी विभाजन के आधार पर संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न संस्थाएँ विश्व के गरीब राष्ट्रों को सहायता देने का प्रावधान करती है।

अतः सामाजिक लेखांकन आर्थिक मॉडल का आधार निर्माण करती है जिससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के व्यवहार का विश्लेषण किया जा सके व आर्थिक पूर्वानुमान एवं आर्थिक नीति सम्बन्धी समस्याओं का समाधान संभव हो सके।

(13) आर्थिक क्रियाओं का अधिसूचक - (a) सामाजिक लेखांकन किसी विशिष्ट समय पर अर्थव्यवस्था में उत्पादन स्तर को मापता है तथा उत्पादन स्तर के कारणों पर भी जोर डालता है।

(b) विभिन्न समयावधि में सामाजिक लेखांकन की तुलना करके अर्थव्यवस्था की प्रगति हेतु दीर्घकालीन मार्ग को ज्ञात किया जा सकता है।

(c) सामाजिक लेखों से ही अर्थव्यवस्था की प्रगति एवं अवनति का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

(14) परिवर्तनों का विस्तृत सारांश - सामाजिक लेखांकन अर्थव्यवस्था में मुख्य परिवर्तनों का एक विस्तृत सारांश प्रस्तुत करता है।

(15) असन्तुलन के कारणों की व्याख्या - सामाजिक लेखांकन यह बताता है कि अर्थव्यवस्था में कहाँ सन्तुलन है तथा कहाँ पर असन्तुलन है तथा यह असन्तुलन के कारणों को स्पष्ट करता है।

(16) भावी आर्थिक नीति का यंत्र - सामाजिक लेखे देश की अर्थव्यवस्था के भावी आर्थिक नीति का नियोजन का महत्वपूर्ण यंत्र के रूप में कार्य करते हैं।

(17) बजट को केन्द्र बिन्दु - उन्नत देशों में सामाजिक लेखांकन के साथ सरकार के, बजट को समायोजित किया जाता है।

(18) आर्थिक नाड़ी पर नियंत्रण - सामाजिक लेखांकन राष्ट्र की आर्थिक नाड़ी पर ध्यान रखता तथा देश में विवेकपूर्ण ढंग से आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायता प्रदान करता है।

प्रश्न 2: सामाजिक लेखा क्या है?

प्रश्न 3: सकल घरेलू उत्पाद (GDP) क्या है?

5.7 *सामाजिक लेखांकन की कठिनाइयाँ*

सामाजिक लेखांकन की तैयारी में निम्न कठिनाइयों उपस्थित होती हैं: -

(1) दोहरी गणना की कठिनाई (Difficulty in Double Counting) - सामाजिक लेखांकन को तैयार करने में सबसे बड़ी कठिनाई दोहरी गणना की आती है। यह कठिनाई अन्तिम एवं अन्तरिम माल में भेद न करने के कारण उदय होती है। जैसे बेकरी में आटे का उपयोग करना एक मध्यस्थ माल है, जबकि घर में भोजन हेतु आटे का उपयोग करना एक अन्तिम उत्पाद है। इसी प्रकार से सरकार द्वारा नवीन निर्मित भवन को क्रय करना, अर्थव्यवस्था में उपभोग उत्पादन माना जाता है। दूसरी ओर एक निजी फर्म द्वारा उसी भवन का क्रय करना वर्ष का सकल विनियोग माना जाता है। अतः एक ही माल सामाजिक लेखांकन में उपभोग एवं विनियोग के रूप में दिखाया जाता है, जो कि सामाजिक लेखांकन की तैयारी में कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है।

(2) इन्वेन्टरी समायोजन (Inventory Adjustments) - सभी प्रकार के स्टॉक में परिवर्तन को, चाहे धनात्मक हो या ऋणात्मक हो, उन्हें सामग्री मूल्यांकन समायोजन के अन्तर्गत उत्पादन खाते में समायोजित कर लिया जाता है, परन्तु कठिनाई यह है कि फर्म द्वारा सामग्री को उनके वास्तविक लागत पर लिखा जाता है न कि उनके पुर्नस्थापना लागत पर। जब मूल्य बढ़ते हैं तो सामग्री की पुस्तमूल्य में लाभ होता है व मूल्य घटने पर उसमें हानि होती है। अतः व्यावसायिक खातों में सामाजिक लेखांकन के अन्तर्गत सही ढंग से सामग्री का मूल्यांकन करने हेतु मूल्यांकन में समायोजन करना आवश्यक है, जो एक कठिन कार्य है।

(3) मुद्रा में मूल्यांकन की कठिनाई (Difficulty in Measuring in Money) - सामाजिक लेखांकन में समस्त आय व भुगतानों को मुद्रा में मापा जाता है। परन्तु ऐसी अनेक वस्तुएँ व सेवाएँ हैं, जिन्हें मुद्रा में मापा जाना कठिन होता है। जैसे कि घर की स्त्री का घर का काम करने की सेवाएँ, व्यक्ति द्वारा शौक पूरा करने हेतु पेन्टिंग करना, अध्यापक द्वारा अपने घर पर अपने ही बच्चों को पढ़ाना, आदि का मुद्रा में मूल्यांकन करना कठिन रहता है। इसी प्रकार से देश में अनेक गैर-व्यापारिक वस्तुएँ व सेवाएँ हैं जिनका मूल्यांकन नहीं हो पाता है जैसे की किचिन बाग में उगायी गयी सब्जियों का उपयोग परिवार द्वारा ही किया जाना, मकान को मालिक द्वारा ही प्रयोग करना, कृषक द्वारा निजी उपयोग हेतु खेती के एक भाग को रखना। ऐसी समस्त बाजार में न बिकने वाली वस्तुओं को मुद्रा में मापा जाना कठिन होता है। अतः सामाजिक लेखांकन को तैयार करने में कठिनाइयाँ उपस्थित होती है।

(4) सार्वजनिक सेवाएँ (Public Service) - सार्वजनिक क्षेत्र में ऐसी अनेक सेवाएँ हैं, जिन्हें सामाजिक लेखांकन में अनुमान लगाने में समस्या आती है, जैसे कि पुलिस, फौज, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि । इसी प्रकार से बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओं के अंशदान को सामाजिक लेखांकन में नहीं मापा जा सकता क्योंकि उनके द्वारा प्रदत्त अनेक लाभों को मौद्रिक रूप में मापा जाना कठिन रहता है।

(5) **हास** (Depreciation) - सामाजिक लेखांकन में व्यापारिक खाते बनाते समय हास के अनुमान लगाने में कठिनाइयों आती हैं। जैसे कि उस पूँजी सम्पत्ति का ह्रास ज्ञात करना कठिन होता है जिसका जीवन बहुत ज्यादा हो जैसे 50 वर्ष या अधिक। यह कठिनाई उस समय और बढ़ जाती है जबकि सम्पत्ति का मूल्य प्रति वर्ष परिवर्तित होता हो। इन सम्पत्तियों के ह्रास का सामाजिक लेखांकन में समायोजन करना एक कठिन समस्या माना जाता है।

5.8 *राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाइयाँ एवं समस्यायें*

किसी भी देश में राष्ट्रीय आय की गणना करते समय मुख्य रूप से निम्नलिखित कठिनाइयाँ एवं समस्याओं का सामना करना पड़ता है: -

(1) सैद्धान्तिक कठिनाइयाँ (Theoretical Difficulties) - यह निर्णय करना कठिन होता है कि राष्ट्रीय आय की गणना में किसे सम्मिलित किया जाये और किसे छोड़ा जाये। सैद्धान्तिक रूप से कुछ कठिनाइयाँ इस प्रकार हैं- (i) राष्ट्रीय आय की गणना अवधि एक वर्ष की होती है, किन्तु अनेक वस्तुओं का उत्पादन एक वर्ष से अधिक समय में होता है जिसकी गणना करना कठिन है। (ii) अनेक सेवाओं की गणना करना भी कठिन है जैसे- गृहस्वामिनी की सेवा को नापना। (iii) राष्ट्रीय आय में उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं को शामिल किया जाता है जिनका मुद्रा में विनिमय होता है, वस्तु विनिमय या गैर विनिमय वाली वस्तुओं (जैसे कृषक द्वारा कृषि उपज उपभोग हेतु रखना) की गणना नहीं की जाती है।

(2) वस्तु विनिमय (Barter System) - जिन देशों में वस्तु विनिमय प्रणाली अधिक मात्रा में प्रचलित होती है वहाँ सम्पूर्ण विनिमय का मौद्रिक मूल्य ज्ञात करना कठिन होता है। इससे अर्थव्यवस्था का एक बड़ा भाग राष्ट्रीय आय की गणना से रह जाता है। यह समस्या अल्पविकसित एवं पिछड़े देशों में अधिक है।

(3) दोहरी गणना (Double Counting) -राष्ट्रीय आय की गणना में दोहरी गणना का दोष आ जाता है। खेती से उत्पन्न कपास की कृषि आय में गणना कर ली जाती है तथा उसी की जिनिंग फैक्ट्री में रुई और बिनौले के रूप में गणना कर ली जाती है। इस प्रकार की आय गणना में दोहरी गणना के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। यद्यपि दोहरी गणना

से बचने के लिये उन्नत एवं नवीन सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया जाने लगा है, तथापि दोहरी गणना की सम्भावना सदैव बनी रहती है।

(4) सांख्यिकी आँकड़ों की कमी (Lack of Statistical Information) - राष्ट्रीय आय की गणना के लिए पर्याप्त और पूर्ण आँकड़ों की आवश्यकता होती है। किन्तु लगभग सभी अर्थव्यवस्थाओं में विभिन्न क्षेत्रों की आय के पर्याप्त आँकड़े नहीं मिलते हैं। संगठित क्षेत्र जैसे बैंक, उद्योग, आदि के आँकड़े तो मिल जाते हैं किन्तु असंगठित क्षेत्र जैसे कृषि, पशुपालन, मछली उत्पादन आदि के सही सही आँकड़े नहीं मिलते हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय आय के अनुमान पूर्ण सही नहीं होते हैं।

(5) मूल्य ह्रास की गणना (Calculation of Depreciation) - शुद्ध राष्ट्रीय आय की गणना करने का एक दोष यह है कि मशीनों तथा अन्य पूँजीगत सामान में कितनी तथा किस तरह की घिसावट आई है, यह ज्ञात करना कठिन है। यदि पूँजी के परिमाण एवं गुणों में कोई परिवर्तन न हो तो यह समस्या उत्पन्न नहीं होती है, किन्तु पूँजी की मात्रा एवं उसके गुणों में सदैव हास होता रहता है। यह हास कितना हुआ इसको जानना कठिन है। मूल्य हास की कोई सर्वमान्य दर नहीं है। अतः इसकी गणना करना भी सम्भव नहीं है।

(6) दोषपूर्ण निर्देशांक (Defective Index Numbers) - राष्ट्रीय आय की गणना एवं तुलना के लिए मूल्य स्तरों में होने वाले परिवर्तन को निर्देशांक के द्वारा मापा जाता है। किन्तु निर्देशांकों के निर्माण एवं उपयोग में अनेक प्रकार के दोष होते हैं, इससे राष्ट्रीय आय के आँकड़े भी गलत हो जाते हैं।

(7) सरकारी नीति (Government's Policy) - राष्ट्रीय आय के आँकड़ों पर सरकारी नीति या व्यवहार के गम्भीर प्रभाव पड़ते हैं। सामान्यतः सरकार अपने द्वारा दी गई मजदूरी और वेतन के आधार पर अन्य क्षेत्रों के आय के आँकड़े तैयार कर लेती है। इससे राष्ट्रीय आय की गणना में गम्भीर दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

(8) अशिक्षा - (Illiteracy) अल्प-विकसित देशों में अधिकांश लोग अशिक्षित होते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे अपनी आय, उपभोग, उत्पादन, बचत, विनियोग आदि से सम्बन्धित हिसाब नहीं रखते । इससे वहाँ राष्ट्रीय आय की गणना करना कठिन है। अशिक्षा के कारण लोग अपने उपभोग, बचत व आय सम्बन्धी आँकड़े किसी को भी नहीं बताते हैं।

(9) व्यावसायिक विशिष्टीकरण का अभाव (Lack of Professional Specialisation)- जब अर्थव्यवस्था में विशिष्टीकरण का सर्वथा अभाव रहता है, तब लोग एक ही वर्ष में एक से अधिक व्यवसायों से आय प्राप्त करते हैं। इसके

परिणामस्वरूप वे अपनी आय का सही-सही हिसाब नहीं रख पाते हैं। ऐसी दशा में राष्ट्रीय आय की गणना करना कठिन होता है।

(10) सरकार की व्यय नीति तथा करारोपण (Expenditure Policy & Taxation) – सरकार के प्रशासनिक व्यय एवं उसके क्रियान्वयन में भिन्नता होती है। प्रत्येक देश की सरकार की कर नीति एवं व्यय नीति भी भिन्न होती है। करारोपण के भय से लोग जहाँ एक ओर अपनी आय कम बताने की प्रवृत्ति रखते हैं वहीं सरकार के व्यय बढ़ने पर लोगों की आय में वृद्धि होना स्वाभाविक है। इस प्रकार सरकार की व्यय एवं कर नीति भी राष्ट्रीय आय की गणना करने में कठिनाई उत्पन्न करती है।

(11) अविश्वसनीय आँकड़े (Unreliable Data) - राष्ट्रीय आय सम्बन्धी सूचना अविश्वसनीयता के दोष से पीड़ित होती है, क्योंकि सामान्यतः व्यक्ति अपनी आय सम्बन्धी सूचना गलत देता है। इस प्रकार उत्पादकों, परिवारों एवं फर्मों के आय-व्यय सम्बन्धी आँकड़े भी गलत होते हैं।

(**12) विदेशी फर्मों की आय का प्रभाव** (Impact of the Income of Foreign Firms) - विदेशी फर्मों को प्राप्त होने वाली आय का भी राष्ट्रीय आय पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि विदेशी फर्मों की आय की गणना वह देश भी कर लेता है जहाँ वे स्थित हैं तथा वह देश भी कर लेता है जिसके लोगों ने पूँजी लगाई है। इससे गणना में दोहरेपन का दोष आ जाता है।

5.9 राष्ट्रीय आय का महत्व

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की समुचित जानकारी राष्ट्रीय आय के अध्ययन के बिना सम्भव नहीं है। कारण यह है कि राष्ट्रीय आय अर्थव्यवस्था की प्रगति का सूचक होती है। इसके द्वारा इस बात की जानकारी होती है कि अर्थव्यवस्था में प्रगति की दर क्या है। इसी कारण राष्ट्रीय आय के समंकों को अर्थव्यवस्था की आर्थिक स्थिति का दर्पण कहा जाता है। संक्षेप में, राष्ट्रीय आय की गणना के महत्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता है:

(i) जीवन स्तर का सूचक (Indicator of Standard of Living): राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित समंकों के द्वारा उस देश के लोगों के रहन-सहन के स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। जिस देश में "प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय" जितनी अधिक होती है वहाँ के नागरिकों का जीवनस्तर भी प्रायः उतना ही ऊँचा होता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय में तेजी से वृद्धि होने का अर्थ भी यही है कि उस देश के निवासियों का जीवन स्तर तेजी से सुधर रहा है। संक्षेप में, राष्ट्रीय आय को उस देश के निवासियों के जीवन-स्तर का सूचक माना जाता है।

(ii) आर्थिक विकास की कसौटी (Criteria of Economic Development): सामान्यतः आर्थिक विकास से आशय राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से है। यही कारण है कि आर्थिक विकास कार्यक्रमों एवं योजनाओं का मुख्य लक्ष्य राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि करना होता है । राष्ट्रीय आय sको आर्थिक विकास की कसौटी माना जाता है। किसी भी देश की आर्थिक आर्थिक प्रगति उस देश की राष्ट्रीय आय से मापी जा सकती है। राष्ट्रीय आय के आकार एवं उनकी वृद्धि की गति से इस बात का भी पता लगाया जा सकता है कि इस देश में उन्नति हो रही है या नहीं।

(**iii) योजना निर्माण और क्रियान्वयन में सहायक** (Helpful in Plan Formulation & Implementation): देश में नियोजित विकास के संचालन के लिए राष्ट्रीय आय समंकों की सहायता ली जाती है। योजना के लक्ष्यों को निर्धारित करते समय इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय में किस प्रतिशत से वृद्धि करने का लक्ष्य रखा जाए।

(iv) देश के आर्थिक कल्याण का सूचक (Indicator of Economic Welfare): किसी भी देश की राष्ट्रीय आय का अध्ययन करके इस बात का पता लगाया जा सकता है कि उस देश में जीवन स्तर व आर्थिक कल्याण किस प्रकार का है। यदि किसी देश में प्रति व्यक्ति आय बढ़ रही है और आय का हस्तान्तरण गरीबों के पक्ष में हो रहा है तो यह माना जा सकता है कि उस देश में औसत जीवन स्तर ऊपर उठ रहा है और जनता के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो रही है।

(v) आर्थिक नीति का आधार (Basis of Economic Policy): राष्ट्रीय आय सरकार की आर्थिक नीति के निर्माण में आधार का काम करती है। कर नीति का निर्धारण राष्ट्रीय आय के आधार पर ही होता है।

(vi) अन्तर्राष्ट्रीय तुलना (International Comparision): विश्व में विभिन्न राष्ट्रों के आर्थिक स्तर का मापदण्ड उन राष्ट्रों की राष्ट्रीय आय ही है। राष्ट्रीय आय के द्वारा विभिन्न देशों की कुल तथा प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय की तुलनात्मक जानकारी उपलब्ध हो जाती है।

(vii) करदेय क्षमता का अनुमान (Estimation of Taxable Capacity): राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित आंकड़ों का अध्ययन करने से लोगों की कर देय क्षमता के बारे में जानकारी उपलब्ध होती है और इसके आधार पर सरकार अपनी कराधान प्रणाली का निर्माण करती है।

(viii) आय के वितरण की जानकारी (Knowledge of the Distribution of Income): राष्ट्रीय आय के आँकड़ों से देश में आय के वितरण की जानकारी प्राप्त होती है। इसी से क्षेत्रीय असमानता का ज्ञान भी प्राप्त होता है। अतः राष्ट्रीय आय के अध्ययन

के आधार पर सरकार ऐसे उपाय अपना सकती है जिससे असमानता को समाप्त किया जा सके।

(ix) आय, व्यय एवं बचत का अनुमान (Estimates of Income, Expenditure & Savings): राष्ट्रीय आय के समंकों के द्वारा देश में विद्यमान आय, व्यय एवं बचत का अनुमान लगाया जा सकता है और उनमें उचित अनुपात रखने की दिशा में प्रयत्न किए जा सकते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय सम्बन्धी आँकड़ों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन आँकड़ों से जहाँ अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है वहीं भूतकाल में हुए परिवर्तनों का विश्लेषण एवं भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का अनुमान लगाया जा सकता है।

5.10 सार संक्षेप

राष्ट्रीय आय का माप और सामाजिक लेखा (Measurement of National Income and Social Accounting) एक महत्वपूर्ण आर्थिक प्रक्रिया है, जो एक देश की आर्थिक स्थिति और विकास का मूल्यांकन करने में मदद करती है। राष्ट्रीय आय का माप उस समयावधि में एक देश में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य को दर्शाता है। इसे तीन प्रमुख दृष्टिकोणों से मापा जा सकता है:

1. **उत्पादन दृष्टिकोण** (Production Approach): इसमें एक देश के सभी क्षेत्रों द्वारा उत्पादित कुल वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य जोड़कर राष्ट्रीय आय का माप किया जाता है।
2. **आय दृष्टिकोण** (Income Approach): इस दृष्टिकोण में, प्रत्येक आर्थिक व्यक्ति और संस्थाओं द्वारा अर्जित आय जैसे मजदूरी, लाभ, किराया और ब्याज को जोड़कर राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है।
3. **व्यय दृष्टिकोण** (Expenditure Approach): इसमें, कुल उपभोक्ता व्यय, सरकारी खर्च, निवेश, और निर्यात-आयात के अंतर को जोड़कर राष्ट्रीय आय मापी जाती है।

सामाजिक लेखा (Social Accounting) का उद्देश्य आर्थिक गतिविधियों के रिकॉर्ड को व्यवस्थित करना और विभिन्न क्षेत्रों के योगदान का विश्लेषण करना है। इसमें, उत्पादन, आय और व्यय की जानकारी को विभिन्न खाता पुस्तिकाओं में दर्शाया जाता है, जैसे कि उत्पादन खाता, आय खाता, और व्यय खाता। सामाजिक लेखा से सरकार को नीति निर्माण में सहायता मिलती है और आर्थिक विकास की दिशा तय करने में मदद मिलती है। यह प्रक्रिया आर्थिक विकास को समझने और नीति निर्धारण में सहायक होती है।

5.11 *मुख्य शब्द*

1. **राष्ट्रीय आय** (National Income): एक निश्चित समयावधि में एक देश द्वारा उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य।
2. **उत्पादन दृष्टिकोण** (Production Approach): इस दृष्टिकोण में एक देश के सभी क्षेत्रों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य जोड़कर राष्ट्रीय आय का माप किया जाता है।
3. **आय दृष्टिकोण** (Income Approach): इसमें उन सभी व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा अर्जित आय जैसे मजदूरी, लाभ, किराया और ब्याज को जोड़कर राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है।
4. **व्यय दृष्टिकोण** (Expenditure Approach): इसमें कुल उपभोक्ता व्यय, सरकारी खर्च, निवेश और निर्यात-आयात के अंतर को जोड़कर राष्ट्रीय आय मापी जाती है।
5. **सामाजिक लेखा** (Social Accounting): यह आर्थिक गतिविधियों के रिकॉर्ड को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के योगदान को समझने के लिए विभिन्न खाता पुस्तिकाओं का उपयोग किया जाता है।
6. **सकल घरेलू उत्पाद** (GDP): देश के अंदर एक वर्ष में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य।
7. **निर्यात (**Exports): देश से बाहर भेजी गई वस्तुएं और सेवाएं।
8. **आय का वितरण** (Distribution of Income): एक समाज में विभिन्न व्यक्तियों के बीच आय का बंटवारा।
9. **व्यय** (Expenditure): उपभोग, निवेश और सरकारी खर्च के लिए किया गया धन।
10. **समीकरण** (Equations): गणनाओं या माप की प्रक्रियाओं के दौरान प्रयोग होने वाले सूत्र या समीकरण।

5.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: राष्ट्रीय आय मापने के तीन प्रमुख दृष्टिकोण हैं:

1. उत्पादन दृष्टिकोण (Production Approach): इस दृष्टिकोण में देश में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य को जोड़कर राष्ट्रीय आय का माप किया जाता है। यह मापता है कि विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों (जैसे कृषि, उद्योग, सेवा) ने कितनी वस्तुएं और सेवाएं उत्पादन की हैं।

2. आय दृष्टिकोण (Income Approach): इस दृष्टिकोण में, सभी व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा अर्जित आय (मजदूरी, लाभ, किराया, ब्याज) को जोड़कर राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है।
3. व्यय दृष्टिकोण (Expenditure Approach): इस दृष्टिकोण में, उपभोक्ता व्यय, निवेश, सरकारी खर्च और निर्यात-आयात के अंतर को जोड़कर राष्ट्रीय आय की माप की जाती है।

उत्तर 2: सामाजिक लेखा (Social Accounting) एक प्रक्रिया है, जिसमें देश की आर्थिक गतिविधियों का व्यवस्थित रूप से रिकॉर्ड रखा जाता है। इसमें विभिन्न खाता पुस्तिकाओं का उपयोग किया जाता है, जैसे उत्पादन खाता, आय खाता, और व्यय खाता, ताकि यह समझा जा सके कि विभिन्न क्षेत्रों का आर्थिक योगदान कितना है। यह सरकार को नीति निर्धारण में मदद करता है और विकास के लक्ष्य निर्धारित करने में सहायक होता है।

उत्तर 3: सकल घरेलू उत्पाद (GDP) एक देश के भीतर एक वर्ष में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य है। यह एक महत्वपूर्ण संकेतक है जो देश की आर्थिक स्थिति को मापने में मदद करता है।

5.13 संदर्भ सूची

- चौधरी, एस. (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय आय की माप.* नई दिल्ली: पेंगुइन इंडिया।
- गुप्ता, र. (2019). *सामाजिक लेखांकन: सिद्धांत और अभ्यास.* मुंबई: टैगोर पब्लिकेशन।
- कुमार, आर. (2021). *भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और विकास.* दिल्ली: ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- शर्मा, आर. (2023). *राष्ट्रीय आय और सामाजिक लेखांकन के विधियाँ.* जयपुर: मैकमिलन पब्लिशिंग।
- मिश्रा, पी. (2018). *भारतीय अर्थव्यवस्था: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य.* पुणे: सीएसडी पब्लिशर्स।

5.14 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय को परिभाषित कीजिए। इसे कैसे मापा जाता है? विस्तार से व्याख्या कीजिए।

Define National Income. How it is calculated? Explain in detail. 2.

2. राष्ट्रीय आय की गणना की विभिन्न पद्धतियां बताइये। राष्ट्रीय आय की गणना में प्रमुख कठिनाइयाँ कौन सी है?

Explain various methods of calculating National Income. What are the main difficulties in measuring National Income.

3.सामाजिक लेखांकन क्या है? इसके प्रमुख अंगों की विवेचना कीजिए।

What is Social Accounting? Discuss its main components.

4. आय विश्लेषण में सामाजिक लेखांकन के महत्व की व्याख्या कीजिए।

Discuss the importance of Social Accounting in income analysis.

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय की गणना में प्रमुख कठिनाइयाँ कौन सी है?
2. उत्पाद गणना विधि क्या है?
3. राष्ट्रीय आय के अध्ययन का क्या महत्व है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सकल घरेलू उत्पाद में विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय को जोड़ने से प्राप्त होता है-

(31) NNP (ब) GNP

(स) NDP (द) PI ।

2. राष्ट्रीय आय के आकलन में व्यावहारिक कठिनाई होती है-

(अ) सांख्यिकीय आँकड़ों की कमी (ब) दोहरी गणना

(स) अविश्वसनीय आँकड़े (द) उपर्युक्त सभी ।

3. राष्ट्रीय आय की माप के लिए किस विधि का प्रयोग किया जाता है-

(अ) उत्पादन गणना विधि (ब) आय प्राप्त विधि

(स) व्यय विधि (द) उपर्युक्त सभी ।

(उत्तर- 1. (ब), 2. (द), 3. (द))

इकाई -6
भारत में राष्ट्रीय आय की गणना
(Estimation of National Income in India)

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 भारत में राष्ट्रीय आय की गणना
6.4 भारत में राष्ट्रीय आय की गणना की रीति
6.5 भारत में राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय
6.6 राष्ट्रीय आय की संरचना
6.7 भारतीय राष्ट्रीय आय की विशेषताएँ
6.8 भारत में राष्ट्रीय आय की गणना की कठिनाइयाँ अथवा सीमाएँ
6.9 भारत में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण
6.10 भारत में राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के सुझाव
6.11 सार संक्षेप
6.12 मुख्य शब्द
6.13 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
6.14 संदर्भ सूची
6.15 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय आय का अनुमान भारत की अर्थव्यवस्था की स्थिति और विकास को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। यह अनुमान देश की कुल उत्पादन क्षमता, उपभोग, निवेश और आय के वितरण को दर्शाता है। राष्ट्रीय आय के आंकड़े सरकार को नीति बनाने, योजना और बजट के निर्णय लेने में मदद करते हैं। भारत में राष्ट्रीय आय का अनुमान मुख्यतः तीन विधियों से किया जाता है: उत्पादन विधि, आय विधि और व्यय विधि। उत्पादन विधि में सभी क्षेत्रों में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की कुल मूल्य का हिसाब लिया जाता है। आय विधि में कारक आय (जैसे मजदूरी, मुनाफा) का कुल योग निकाला जाता है। व्यय विधि में कुल खर्च (उपभोग और निवेश) का मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त आंकड़े देश के आर्थिक विकास, रोजगार, मुद्रास्फीति और अन्य आर्थिक कारकों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकें।
4. रोजगार सृजन और विकास की दिशा में निवेश को प्राथमिकता देने की योजना बना सकें।
5. सामाजिक और आर्थिक समानता की स्थापना के लिए उपायों का निर्धारण कर सकें।
6. विकास के लाभ सभी वर्गों और हिस्सों तक पहुँचाने के तरीके समझ सकें।
7. देश की आर्थिक वृद्धि में सहायक कारकों का विश्लेषण कर सकें।
8. संसाधनों के वितरण और संतुलन के महत्व को समझ सकें।
9. संबंधित क्षेत्रों में सुधार की दिशा में कदम उठा सकें।

6.3 भारत में राष्ट्रीय आय की गणना

वर्तमान आर्थिक प्रगति के युग में प्रत्येक देश के लिए राष्ट्रीय आय की गणना करना महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय आय की गणना से- (i) देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति का ज्ञान होता है, (ii) राष्ट्रीय आय में विभिन्न क्षेत्रों के योगदान का पता लगता है तथा (iii) यह भी ज्ञात होता है कि वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन प्रवाह विनियोक्ताओं को किस ओर ले जा रहा है। इसके साथ ही देशवासियों की उपभोग प्रवृत्ति का भी ज्ञान होता है। इसी सन्दर्भ में भारत की राष्ट्रीय आय की गणना करना भी महत्वपूर्ण है।

भारत की राष्ट्रीय आय की गणनाओं के अनुमानों को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-यथा (i) स्वतन्त्रता के पूर्व के अनुमान और (ii) स्वतन्त्रता के बाद के अनुमान । इन अनुमानों की विस्तृत व्याख्या निम्न प्रकार है:-

स्वतन्त्रता के पूर्व के अनुमान (Pre-independence Estimates) -

स्वतन्त्रता के पूर्व भारत की राष्ट्रीय आय की गणना के लिए कोई भी सरकारी संस्था नहीं थी। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कुछ अर्थशास्त्रियों ने

व्यक्तिगत तौर पर भारत की राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय के निम्नलिखित अनुमान लगाये थे-

तालिका - 1

स्वतन्त्रता के पूर्व भारत की राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय

	अनुमान कर्ता	अनुमान का वर्ष	राष्ट्रीय आय (करोड़ रुपयों में)	प्रति व्यक्ति आय (रुपयों में)
1.	दादाभाई नौरोजी	1868	340	20
2.	एच.वी. एट्किंसन	1875	574	31
3.	सर जॉर्ज वाकर	1887-88	675	30
4.	विलियम डिग्बी	1899	350	17
5.	फिन्डले शिराज	1911	1942	8
6.	वाडिया और जोशी	1913-14	1967	44
7.	शाह और खम्बाटा	1921-22	2364	74
8.	वी.के.आर.वी. राव	1931-32	3689	62
9.	दादाभाई पन्नालाल	1945-46	6234	198

स्वतन्त्रता के पूर्व भारत की राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने वाले विद्वानों ने अलग-अलग रीतियों एवं आधार का प्रयोग किया, जैसे (1**) दादा भाई नौरोजी, फिण्डले शिराज**, **वाडिया एवं जोशी, शाह तथा खम्बाटा** ने कृषि-क्षेत्र के आंकड़े इकट्ठे किये। साथ ही गैर कृषि क्षेत्र की आय को प्रतिशत रूप में मानकर समत्र राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया। **(2) डॉ. वी.के.आर.वी. राव** ने देश को तीन प्रमुख क्षेत्रों में बाँटकर राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया। ये तीनों क्षेत्र थे (क) कृषि एवं अन्य प्राथमिक व्यवसाय, (ख) उद्योग, व्यापार, यातायात सार्वजनिक सेवाएँ, प्रशासन, घरेलू सेवाएं आदि और (ग) गृह सम्पत्ति एवं अन्य अविशिष्टं क्षेत्र। डॉ. राव ने पहले क्षेत्र के लिए उत्पादन विधि तथा दूसरे एवं तीसरे क्षेत्र के लिए आय गणना रीति का प्रयोग किया। डॉ. राव ने विदेशों से प्राप्त आय को भी राष्ट्रीय आय में जोड़ा था।

स्वतन्त्रता के पूर्व के राष्ट्रीय आय सम्बन्धी अनुमान न तो वैज्ञानिक थे और न ही उनकी गणना में शुद्धता का विशेष ध्यान रखा गया था। संक्षेप में इन अनुमानों के प्रमुख दोष निम्नलिखित थे-

(i) सभी अनुसंधानकर्ताओं के अनुमान कल्पना से अधिक प्रभावित थे। कई विद्वानों ने वास्तविक तत्वों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया, जैसे कृषि का कुछ ने 50 प्रतिशत तो कुछ ने 10 प्रतिशत भाग ही राष्ट्रीय आय में शामिल किया।

(ii) प्रत्येक अनुसंधानकर्ता ने सुविधानुसार भिन्न-भिन्न प्रणालियों का प्रयोग किया।

(iii) उनकी राष्ट्रीय आय की मुख्य शब्द में समानता नहीं थी।

(iv) आँकड़ों में शुद्धता का अभाव था।

संक्षेप में, स्वतन्त्रता के पूर्व के राष्ट्रीय आय सम्बन्धी अनुमान अवैज्ञानिक, अवास्तविक, काल्पनिक एवं अतार्किक थे।

स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रीय आय की गणना

(Post-Independence Estimates of National Income)

स्वतन्त्रता के बाद भारत की राष्ट्रीय आय समंकों के युक्ति युक्त एवं वैज्ञानिक बनाने के उद्देश्य से सन् 1949 में **प्रो. पी.सी. महलनोवीस** की अध्यक्षता में राष्ट्रीय आय समिति की स्थापना की गई। श्री डी.आर. गाडगिल तथा डॉ. वी. के. आर.वी. राव इस समिति के सदस्य थे। इसके साथ ही प्रो. साइमन कुजनेट्स (पेन्सिलवेन्या विश्वविद्यालय), प्रो. रिचर्ड स्टोन (केम्ब्रीज विश्व विद्यालय), डॉ. डर्कसन (राष्ट्रसंघ लेखा कार्यालय) को इस समिति का विशेष सलाहकार बनाया गया।

राष्ट्रीय आय समिति ने अपना अन्तरिम प्रतिवेदन 15 अप्रैल, 1951 तथा अन्तिम प्रतिवेदन 1954 में दिया। समिति के अन्तरिम प्रतिवेदन के अनुसार भारत की राष्ट्रीय आय 8710 करोड़ रुपये थी, किन्तु अन्तिम प्रतिवेदन के अनुसार यह 8650 करोड़ रुपये थी।

राष्ट्रीय आय समिति के सुझावों को अमल में लाने के लिए भारत सरकार ने अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए। इस आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना का कार्य केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (Central Statistical Organisation) को सौंप दिया गया। शुरू में केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन के द्वारा चालू एवं स्थिर (1948-49) मूल्यों पर राष्ट्रीय आय के आँकड़े प्रकाशित किए गए थे। ये आँकड़े राष्ट्रीय आय । समिति की प्रथम एवं अन्तिम रिपोटों की विधियों पर आधारित थे। किन्तु इसके बाद राष्ट्रीय आय की गणना को वैज्ञानिक एवं तार्किक बनाने के अनेक प्रयास किए गए। केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा समय समय पर निम्नलिखित तीन आधारों पर राष्ट्रीय आय की गणना की जाती रही है।

(I) परम्परागत श्रृंखला (Conventional Series): - केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन ने प्रारम्भ में परम्परागत श्रृंखला के अन्तर्गत 1948-49 से लेकर 1964-65 तक की अवधि के लिए राष्ट्रीय आय के आंकड़े चालू कीमतों कीमतों एवं स्थिर कीमतों (1948-49) के आधार पर प्रस्तुत किये। । इस श्रृंखला में अर्थव्यवस्था को 13 भागों में विभाजित किया गया तथा उत्पादन एवं आय विधि के द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना की गई।

(II) संशोधित श्रृंखला (Revised Series):- केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन ने आय के नवीन क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय आय की गणना के लिए अपनाई जाने वाली रीति पर पुनर्विचार किया तथा सन् 1967 से परम्परागत श्रृंखला को बंद करके संशोधित श्रृंखला प्रारम्भ की। इस श्रृंखला में भी चालू मूल्यों एवं 1960-61 को आधार वर्ष मानकर राष्ट्रीय आय की गणना की जाने लगी। आधार वर्ष को 1948-49 से बदल कर 1960-61 करने के अनेक कारण थे, जैसे- (i) कीमत स्तर में वृद्धि, (ii) अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन आदि। संशोधित श्रृंखला के अन्तर्गत 1960-61 से 1975-76 की अवधि तक की राष्ट्रीय आय चालू एवं 1960-61 की कीमतों पर निकाली गई है।

(III) नई श्रृंखलाए (New Series):- संशोधित श्रृंखला को 1975-76 में पुनरीक्षित किया गया। केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन ने 1961 के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों एवं 1971 की जनगणना सम्बन्धी आँकड़ों को ध्यान में रखकर वर्ष 1960-61 के स्थान पर 1970-71 को आधार वर्ष मानकर स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय की गणना प्रारम्भ की। सन् 1986 से आधार वर्ष में परिवर्तन किया गया और वर्ष 1980-81 को आधार वर्ष मानकर राष्ट्रीय आय की गणना की गई। पुनः सन् 1998 से नई श्रृखंला प्रारम्भ की गई और 1993-94 के मूल्यों को आधार वर्ष मानकर राष्ट्रीय आय की गणना की गई। तत्पश्चात् केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन ने 1999-2000 को आधार वर्ष मानकर स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय की गणना प्रारम्भ की है। वर्तमान में 2004-2005 के मूल्यों को आधार वर्ष मानकर राष्ट्रीय आय की गणना की जा रही है।

6.4 भारत में राष्ट्रीय आय की गणना की रीति

संशोधित एवं नई श्रृंखला में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को तीन व्यावसायिक क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है। ये क्षेत्र हैं प्राथमिक क्षेत्र (Primary Sector), द्वितीयक क्षेत्र (Secondary Sector) और तृतीयक या सेवा क्षेत्र (Tertiary Sector) । इन क्षेत्रों में विभिन्न व्यवसायों को निम्न प्रकार रखा गया है: -

एक- प्राथमिक क्षेत्र (Primary Sector): (i) कृषि, (ii) वन, (iii) लट्ठे बनाना, (iv) मछली पालन और (v) खनन एवं उत्खनन।

दो- द्वितीयक क्षेत्र (Secondary Sector) :(i) पंजीकृत एवं गैर-पंजीकृत उद्योग, (ii) निर्माण, (iii) विद्युत, गैस एवं जल सम्भरण क्षेत्र ।

तीन-तृतीयक या सेवा क्षेत्र (Tertiary Sector): (i) परिवहन एवं संचार, (ii) विपणन एवं व्यापार, (iii) बैंक एवं बीमा कम्पनी, (iv) स्थाई सम्पत्ति,(v) सरकारी प्रशासन एवं प्रतिरक्षा, (vi) अन्य सेवाएं और (vii) विदेशी सौदे ।

राष्ट्रीय आय की गणना के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों में होने वाली आय की गणना की जाती है। इसके लिए मुख्यतः उत्पादन विधि एवं आय विधि का प्रयोग किया जाता है। विनिर्माण या मेन्युफेक्चरिंग क्षेत्र के लिए व्यय विधि या वस्तु प्रवाह विधि का प्रयोग किया जाता है। राष्ट्रीय आय की गणना के लिए पुनः व्यावसायिक क्षेत्रों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। ये वर्ग एवं इसमें प्रयुक्त गणना विधि निम्न प्रकार है: --

A-वर्ग: इस वर्ग में कृषि, वन, लट्ठे बनाना, मछली पालन, खनन एवं उत्खनन, पंजीकृत विनिर्माण (मेन्युफेक्चरिंग क्षेत्र) एवं निर्माण क्षेत्र को रखा गया है। इस वर्ग में राष्ट्रीय आय की गणना के लिए उत्पादन विधि का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए इन क्षेत्रों में उत्पादन की मात्रा एवं मूल्य के आँकड़ों का संकलन किया जाता है। तदुपरान्त उत्पादन की मात्रा का प्रतिइकाई मूल्य से गुणा कर के सकल उत्पादन का मूल्य ज्ञात किया जाता है।

B-वर्ग: इस वर्ग में विद्युत, रेल एवं:वायु यातायात, संगठित सड़क एवं जल यातायात, संचार, बैंक एवं बीमा, स्थावर सम्पत्ति, सार्वजनिक प्रशासन एवं प्रतिरक्षा को सम्मिलित किया जाता है। इस वर्ग में आय विधि को प्रयुक्त किया जाता है। इसके अन्तर्गत साधन-आय (Factor Prices), जिसकी जानकारी विभिन्न कम्पनियों या उद्योगों के वार्षिक प्रतिवेदनों से प्राप्त होती है, का संकलन किया जाता है। तदुपरान्त उन्हें जोड़ कर वार्षिक आय के आँकड़े प्राप्त किए जाते हैं।

C-वर्ग: इस वर्ग के अन्तर्गत असंगठित उद्योग, गैस तथा जल आपूर्ति, असंगठित सड़क तथा जल यातायात, संग्रहण, व्यापार, होटल, आवास गृहों का स्वामित्व और अल्प

सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है। इस वर्ग में भी आय विधि का प्रयोग किया जाता है। इसके

अन्तर्गत उपर्युक्त व्यावसायों में कार्यरत जनसंख्या या श्रमशक्ति एवं उनकी औसत उत्पादकता की जानकारी संकलित की जाती है। ये आँकड़े नगणना प्रतिवेदन, न्यादर्श सर्वेक्षण एवं अन्य स्त्रोतों से संकलित किए जाते हैं। तदुपरान्त प्रत्येक क्षेत्र में श्रमिकों की संख्या को उनकी औसत उत्पादकता से गुणा करके कुल उत्पाद या आय की गणना की जाती है।

6.5 *भारत में राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय*

स्वतंत्रता के बाद से ही देश के आर्थिक विकास हेतु पंचवर्षीय योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है और अब तक ग्यारहवी पंचवर्षीय योजनाएं पूर्ण की जा चुकी हैं तथा बारहवीं योजना का कार्य प्रगति पर है। इस अवधि में राष्ट्रीय आय में औसतन लगभग 4.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई है। सन् 1950-51 से 2011-12 तक राष्ट्रीय आय एवं प्रतिव्यक्ति आय के आँकड़ों का तुलनात्मक विवरण तालिका-दो में दर्शाया गया है।

तालिका - दो

सकल तथा शुद्ध राष्ट्रीय आय

(2004-2005 की कीमतों के आधार पर)

वर्ष Year	सकल राष्ट्रीय आय (GNP-Rs. in crores)		शुद्ध राष्ट्रीय आय (NNP-Rs. in crores)		प्रति व्यक्ति आय (शुद्ध राष्ट्रीय आय) in Rupees	
	चालू कीमतों के आधार पर	स्थिर कीमतों के आधार पर	चालू कीमतों के आधार पर	स्थिर कीमतों के आधार पर	चालू कीमतों के आधार पर	स्थिर कीमतों के आधार पर
1950-51	9995	278677	9464	255405	264	7114
1990-91	524268	1331040	471628	1202305	5621	14330
2004-05	2949089	2949089	2629198	2629198	24143	24143
2011-12	8199276	5171538	7328878	4568249	60972	38005

स्त्रोत: - Economic Survey 2011-12, Table 1.1, Page A-3

तालिका क्रमांक दो से भारत की राष्ट्रीय आय के संबंध में निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं: -

(i) वर्तमान या चालू कीमतों पर भारत की सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) जहाँ वर्ष 1950-51 में 9995 करोड़ रुपए थी, बढ़कर वर्ष 2004-05 में 2949089 करोड़ रु. एवं 2011-12 में 8192876 करोड़ रु. हो गयी अर्थात् 820 गुना बढ़ी

(ii) इसी प्रकार चालू कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) जहाँ वर्ष 1950-51 में 9464 करोड़ रू. था, जो बढ़कर 2011-12 में 7328878 करोड़ रु. हो गया अर्थात् 774 गुना अधिक रहा।

(iii) वर्तमान या चालू कीमतों के अनुसार भारत की प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय (शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद) वर्ष 1950-51 में केवल 264 रु. थी, जो बढ़कर 2011-12 में 60972 रु. हो गई, अर्थात् इस अवधि में लगभग 230 गुना बढ़ी।

(iv) स्थिर कीमतों (आधार वर्ष 2004-05) के आधार पर भारत का सकल राष्ट्रीय उत्पाद वर्ष 1950-51 में 288677 करोड़ रु. से बढ़कर 2011-12 में 5171538 करोड़ रु. हो गया। इसी प्रकार स्थिर कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) वर्ष 1950-51 में 255405 करोड़ रु. से बढ़कर 2011-12 में 4568249 करोड़ रु. हो गया। प्रति व्यक्ति आय (शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद) स्थिर कीमतों पर 1950-51 में 7114 रु. से बढ़कर 2011-12 में 38005 रु. हो गया। अतः स्पष्ट है कि जहाँ वर्तमान या चालू कीमतों पर भारत की राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, वहाँ स्थिर कीमतों के आधार पर यह वृद्धि हुई तुलनात्मक कम रही है।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि विश्व बैंक द्वारा वर्ष 2010 में प्रकाशित प्रतिवेदन के अनुसार सन् 2008 में परम्परागत गणनानुसार भारत की प्रति व्यक्ति आय लगभग 1070 डालर थी। इसी प्रतिवेदन के अनुसार क्रयशक्ति पर आधारित नवीन गणना प्रणाली के आधार पर भारत की प्रति व्यक्ति आय लगभग 3337 डालर थी।

पंचवर्षीय योजनाओं में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दरें समान नहीं रही हैं। इन दरों का तुलनात्मक विवरण तालिका-तीन में दर्शाया गया है।

तालिका-तीन

योजनावधि में राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय की वार्षिक वृद्धि दरें (2004-2005 की कीमतों पर)

	प्रथम योजना (1951-56)	द्वितीय योजना 1956-61	तृतीय योजना 1961-66	चतुर्थ योजना 1969-74	पंचम योजना 1974-79	छठी योजना 1980-85	सातवीं योजना (1985-90)	आठवीं योजना 1992-97	नवीं योजना 1997-02	दसवीं योजना 2002-07	ग्यारहवीं योजना 2007-12
राष्ट्रीय आय	4.2	4.2	2.6	3.2	4.9	5.4	5.5	6.7	5.5	7.5	7.7
प्रति व्यक्ति आय	2.4	2.2	0.1	0.9	2.6	3.1	3.3	4.6	3.5	5.9	6.3

तालिका क्रमांक-तीन से स्पष्ट है कि प्रथम चार पंचवर्षीय योजनाओं में राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में धीमी वृद्धि हुई है। तीसरी योजना में युद्ध एवं सूखे के कारण राष्ट्रीय आय में कमी आई है। तदुपरान्त पांचवीं योजना से राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि तीव्र गति से हुई है। दसवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में 7.5 प्रतिशत एवं प्रति व्यक्ति आय में 5.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) में राष्ट्रीय आय में 7.7 प्रतिशत एवं प्रति व्यक्ति आय में 6.3 प्रतिशत की वृद्धि होने का अनुमान है।

6.6 राष्ट्रीय आय की संरचना

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था एवं उसकी विकास दर को समझने के लिये यह आवश्यक होता है कि राष्ट्रीय आय (राष्ट्रीय उत्पाद) की संरचना को समझा जाय। राष्ट्रीय आय में हजारों उद्योगों एवं सेवाओं का योगदान रहता है। इन उद्योगों या क्षेत्रों का योगदान अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ परिवर्तित होता रहा है। सामान्यतः राष्ट्रीय आय में योगदान देने वाली मदों को 3 वर्गों या क्षेत्रों में बांटा जाता है, यथा प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र एवं तृतीयक या सेवा क्षेत्र। प्राथमिक क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि, वन, मत्स्य पालन, खनिज एवं उत्खनन आदि को सम्मिलित किया जाता है। द्वितीयक क्षेत्र में विनिर्माण (Manufacturing), निर्माण (Constructions), गैस, जल आपूर्ति आदि को सम्मिलित किया जाता है। तृतीय या सेवा क्षेत्र में मुख्यतः यातायात, संवादवाहन, व्यापार, बैंकिंग, बीमा, सार्वजनिक प्रशासन, सुरक्षा एवं सेवाओं की अन्य मदों को सम्मिलित किया जाता है। भारत में इन क्षेत्रों के आधार पर राष्ट्रीय आय की संरचना को तालिका चार में दर्शाया गया है।

तालिका-चार

साधन लागत पर राष्ट्रीय आय की संरचना (प्रतिशत में)

क्षेत्र	1993-94 की कीमतों पर			1999-2000 की कीमतों पर	
	1950-51	1990-91	1999-2000	2000-01	2008-09
अ प्राथमिक क्षेत्र	59.2	34.9	27.5	26.2	17.0
ब द्वितीयक क्षेत्र	13.3	24.5	24.6	24.5	25.7
स तृतीयक या सेवा क्षेत्र	27.5	40.6	47.9	50.3	57.3
कुल-सकल घरेलू उत्पाद	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0

तालिका क्रमांक-चार के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि पिछले 60 वर्षों में जहां प्राथमिक क्षेत्र का योगदान क्रमशः कम हुआ है, वहीं द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों का योगदान बढ़ा है। किन्तु अभी भी प्राथमिक क्षेत्र, जिसमें कृषि प्रमुख मद है, का योगदान महत्वपूर्ण है।

अतः स्पष्ट है कि देश देश की राष्ट्रीय आय की संरचना में परिवर्तन बहुत धीमी गति से हो रहा है। अतः यह आवश्यक है कि उद्योग, खनन, परिवहन, वाणिज्य आदि क्षेत्रों का तीव्र गति से विकास किया जाये, जिससे अर्थव्यवस्था का पिछड़ापन • दूर होगा तथा संतुलित विकास के साथ आर्थिक प्रगति होगी।

6.7 भारतीय राष्ट्रीय आय की विशेषताएँ

स्वतंत्रता के बाद भारत की राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय की मात्रा, संरचना एवं क्षेत्रीय योगदान में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान किए गए प्रयासों से इसमें क्रमशः वृद्धि हुई है। भारतीय राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार हैं:-

(1) राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय में धीमी वृद्धि (Slow Growth of National & Per-capita Income) - वर्ष 1950-51 से 1998-99 की अवधि में जहां राष्ट्रीय आय में (1980-81 के मूल्यों पर) लगभग 4.3 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है, वहीं प्रतिव्यक्ति आय केवल 2.4 प्रतिशत की दर से बढ़ी है। राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय में यह वृद्धि दर पंचवर्षीय योजनाओं में रखे गए लक्ष्य से बहुत कम है। अभी भी देश की लगभग 22 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे अपना जीवन-यापन कर रही है। अतः यह कहा जा सकता है कि नियोजित प्रयासों के बाबजूद भी देश की राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई।

वर्ष 2007 से 2012 के दौरान राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर 7.7 प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर (2004-2005 की कीमतों पर) बढ़कर 6.3 प्रतिशत हो गयी।

(2) कृषि की प्रधानता (Pre-dominance of Agriculture) - भारत के कुल घरेलू उत्पाद (राष्ट्रीय आय) में कृषि क्षेत्र से प्राप्त आय का सदा महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्धपि कुल आय में कृषि क्षेत्र से प्राप्त आय का प्रतिशत धीरे-धीरे कम होता जा रहा है, फिर भी अन्य सभी क्षेत्रों की तुलना में कृषि क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार जहाँ वर्ष 1950-51 में कुल घरेलू उत्पाद (राष्ट्रीय आय) में कृषि क्षेत्र (प्राथमिक क्षेत्र) का योगदान लगभग 59.2 प्रतिशत था जो घटकर वर्ष 2010-11 में 16.8 प्रतिशत रह गया है। किन्तु अभी भी कृषि क्षेत्र का योगदान अन्य क्षेत्रों की तुलना में सर्वाधिक है।

(3) राष्ट्रीय आय में सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान (Contribution of Public Sector in National Income) - योजना काल में सार्वजनिक क्षेत्र का व्यापक विस्तार हुआ है। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान बढ़ता रहा है। वर्ष 1950-51 में शुद्ध राष्ट्रीय आय में सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान 8.5 प्रतिशत था, जो 1980-81 तक बढ़कर 10.5 प्रतिशत और 2001-02 तक बढ़कर लगभग 24.0 प्रतिशत हो गया है।

(4) राष्ट्रीय आय का असमान वितरण (Un-equal Distribution of National Income) – देश के आर्थिक विकास के लिए अपनाये गये योजनाबद्ध विकास के बावजूद भी समाज में राष्ट्रीय आय का असमान वितरण दिखाई देता है। अभी भी देश के 1000 औद्योगिक घरानों के पास राष्ट्रीय आय का 68 प्रतिशत भाग है जबकि शेष 32 प्रतिशत भाग देश की समस्त जनसंख्या में बंटा हुआ है। योजनाकाल में आय का असमान वितरण अधिक बढ़ा है।

(5) क्षेत्रीय भिन्नता (Regional Disparities) - राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय के सन्दर्भ में भारत में क्षेत्रीय भिन्नताएं बहुत अधिक हैं। दूसरे शब्दों में, जहां कुछ राज्यों में प्रतिव्यक्ति आय बहुत अधिक है, वहीं अन्य राज्यों में बहुत कम है। उदाहरणार्थ-चालू मूल्यों पर प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय वर्ष 2010-11 में जहां पंजाब में 60746 रुपए, गोवा में 132719 रुपए, महाराष्ट्र में 83471 रुपए और हरियाणा में 92327 रुपए हैं वहीं यह बिहार में केवल 20069 रुपए, उड़ीसा में 36923 रुपए और असम में 30413 रुपए ही हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि भारत में क्षेत्रीय भिन्नता बहुत अधिक है।

(6) राष्ट्रीय आय पर जनसंख्या का प्रभाव (Impact of Population on National Income) - भारत में जनसंख्या की वृद्धि दर पिछले 60 वर्षों में औसतन लगभग 1.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है। इसके विपरीत राष्ट्रीय आय की वार्षिक औसत वृद्धि दर 4.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। इस प्रकार बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय को बढ़ी हुई जनसंख्या समाप्त कर रही है। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय की वास्तविक वृद्धि दर 2.4

प्रतिशत रह गई है। इस प्रकार बढ़ती हुई जनसंख्या ने राष्ट्रीय आय की वृद्धि को महत्वहीन बना दिया है।

(7) राष्ट्रीय आय का अधिकांश भाग खाद्य पदार्थों पर व्यय होता है - देश में राष्ट्रीय आय का लगभग 53 प्रतिशत से अधिक भाग खाद्य पदार्थों पर व्यय होता है। इसके अतिरिक्त अनुत्पादक उपभोग पर भी लोगों का व्यय बहुत अधिक है जिसके परिणामस्वरूप बचत और विनियोग हेतु कम राशि उपलब्ध रहती है।

इस प्रकार योजना काल में भारत की राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियों में अनेक परिवर्तन दिखाई देते हैं।

प्रश्न 1: राष्ट्रीय आय का आकलन क्यों आवश्यक है?

6.8 भारत में राष्ट्रीय आय की गणना की कठिनाइयाँ अथवा सीमाएँ

भारत में राष्ट्रीय आय की गणना की कठिनाइयों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, यथा (अ) सामान्य कठिनाइयाँ और (ब) विशेष कठिनाइयाँ। इन कठिनाइयों का विस्तृत विवरण निम्नप्रकार है:

(अ) सामान्य कठिनाइयाँ (General Difficulties) ये कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं-

(1) सेवाओं की गणना (Estimation of Services) - भारत की राष्ट्रीय आय की गणना में किस सेवा को शामिल किया जाये और किसे नहीं, यह गम्भीर प्रश्न है। जैसे गृहणी द्वारा घर की सेवा करना, मालिक द्वारा स्वयं कार चलाना, गृहणी द्वारा हस्तकला की वस्तुएं बनाना आदि इन कार्यों व सेवाओं का राष्ट्रीय आय पर प्रभाव अवश्य पड़ता है, किन्तु भारत में इन सेवाओं को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता है। अतः राष्ट्रीय आय की सही गणना नहीं होती है।

(2) आधार वर्ष में सम्मिलित न की गई वस्तुएं (Commodities not Included in Base Year)- अभी तक भारत में समय-समय पर आधार वर्ष बदलते रहे हैं। भारत एक विकासशील देश है जहाँ प्रतिवर्ष अनेक प्रकार की नई-नई वस्तुओं का उत्पादन किया जा रहा है। इन सभी वस्तुओं को आधार वर्ष में सम्मिलित करना सम्भव नहीं होता है, क्योंकि आधार वर्ष में उन्हीं वस्तुओं को शामिल किया जाता है जो उस वर्ष में उत्पन्न हो रही होती हैं। इस प्रकार आधार वर्ष के बाद उत्पन्न होने वाली अनेक वस्तुओं के उत्पादन, विक्रय व आय आदि को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता। इससे राष्ट्रीय आय की गणना सही नहीं होती।

(ब) विशेष कठिनाइयाँ (Specific Difficulties) - राष्ट्रीय आय की गणना में आने वाली विशेष कठिनाइयाँ निम्न प्रकार है-

(1) अमौद्रिक क्षेत्र (Non-Monotised Sector) - अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का सही-सही अनुमान केवल उन्हीं क्षेत्रों में लगाया जा सकता है, जहाँ सम्पूर्ण विनिमय मुद्रा में होता है। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले विनिमय का एक बढ़ा भाग मुद्रा में न होकर वस्तुओं में होता है। ऐसी दशा में राष्ट्रीय आय का सही अनुमान लगाना कठिन है।

(2) सांख्यिकी आँकड़ों का अभाव (Lack of Statistical Information) - राष्ट्रीय आय की गणना के लिए उत्पादन, बचत, व्यय, उपभोग, कार्यशील जनसंख्या, मजदूरी, लाभ, लगान आदि आँकड़ों की आवश्यकता होती है जो भारतीय अर्थव्यवस्था में कठिनाई से मिलते हैं। इनको एकत्रित करने वाले कर्मचारी, जैसे पटवारी, ग्रामसेवक आदि अप्रशिक्षित होते हैं। अतः उनके द्वारा एकत्रित आँकड़ों को पूर्णतः विश्वसनीय मानना उचित नहीं है।

(3) जनसहयोग का अभाव (Lack of Public Cooperation) - भारत में राष्ट्रीय आय की गणना में लोगों का पूर्ण सहयोग नहीं मिलता है। लोग करारोपण के डर से अपनी आय सम्बन्धी आँकड़े नहीं बताते हैं। इससे राष्ट्रीय आय की गणना करना कठिन होता है।

(4) व्यावसायिक विशिष्टीकरण का अभाव (Lack of Professional Specialisation) - भारत में विभिन्न व्यवसायों में लगे लोगों के आय सम्बन्धी आँकड़े उपलब्ध नहीं है। देश में अनेक लोग एक से अधिक व्यवसायों में लगे हैं, जैसे एक ही दुकानदार किराने, कपड़े, ब्याज पर उधार देने आदि का व्यवसाय करता है। ऐसी दशा में प्रत्येक मद से उसे कितनी आय मिल रही है, यह ज्ञात करना कठिन

(5) विभिन्न राज्यों की आय में भिन्नताएं (Diversities in the Income Pattern of Different States) - भारत के सभी राज्यों की भूमि, जलवायु, वन, रहन-सहन, औद्योगिक उत्पादन, कृषि उत्पादन, रीति-रिवाज, प्राकृतिक साधनों आदि में पर्याप्त भिन्नताएं हैं। अतः सभी राज्यों के आय सम्बन्धी आँकड़े अलग-अलग एकत्रित करना कठिन है।

(6) गैर-कानूनी आय जिसके विषय में जानकारी नहीं दी जाती (Un-reported Illegal Income)- भारतीय अर्थव्यवस्था में एक बहुत बड़ा भाग कालेधन (Black Money) का है और यह धन गैर-कानूनी आय से प्रतिवर्ष बड़ रहा है। गैर-कानूनी धन्धों एवं व्यवसायों से प्राप्त आय को या तो छिपाया जाता है या उसकी बहुत थोड़ी मात्रा अन्य व्यवसायों के साथ जोड़ कर बताई जाती है। इससे आय के अनुमान भी सही नहीं हो पाते।

6.9 भारत में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण

योजनाओं के 1950-51 से 2010-11 के 60 वर्षों के बाद भी भारत की राष्ट्रीय आय विकसित देशों की प्रति व्यक्ति एवं राष्ट्रीय आय की तुलना में बहुत कम है। विश्व विकास प्रतिवेदन (2008) के अनुसार वर्ष 2006 में स्विजरलैण्ड में प्रति व्यक्ति आय 5723 डालर है, अमेरिका में 44970 डालर, जापान में 38410 डालर, इंग्लैण्ड में 40180 डालर जबकि भारत में यह केवल 820 डालर थी।

(1) कृषि की पिछड़ी दशा (Backward State of Agriculture) - भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र का योगदान लगभग 20 प्रतिशत है। किन्तु भारतीय कृषि आज भी अत्यधिक पिछड़ी हुई दशा में है। कृषि के पिछड़ेपन के अनेक कारण हैं, जैसे भूमि का उप-विभाजन एवं उपखण्डन, मानसून पर निर्भरता, उर्वरकों का सीमित प्रयोग, परम्परागत कृषि तकनीक आदि। इससे कृषि उत्पादन कम है और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय भी कम है।

(2) पूंजी की कमी (Lack of Capital) - देश की राष्ट्रीय आय बढ़ाने के लिये पर्याप्त मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है। अनुमान है कि भारत में वर्तमान समय में पूंजी उत्पादन अनुपात 4:1 है। इसका अर्थ है राष्ट्रीय आय में 1 रुपये की वृद्धि के लिए 4 रुपयों का विनियोग करना। किन्तु यहाँ बचत दर कम होने से विनियोग योग्य पूंजी का अभाव है, जिससे आर्थिक विकास धीमी गति से होता है।

(3) औद्योगीकरण की धीमी गति (Slow Growth of Industrialisation) - भारत में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय कम होने का एक कारण देश में औद्योगीकरण की धीमी गति का होना भी है। देश में बुनियादी उद्योगों के साथ-साथ उपभोक्ता उद्योगों की कमी है, जिससे राष्ट्रीय आय भी धीमी गति से बढ़ रही है।

(4) जनसंख्या वृद्धि (Population Growth) -भारत की जनसंख्या लगभग 1.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की गति से बढ़ रही है। जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने के कारण जहां एक ओर उपभोग व्यय में तेजी से विस्तार हो रहा है, वहीं बचत एवं विनियोग पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

(5) बेरोजगारी की समस्या (Problem of Un-employment) - भारत में बेरोजगारी की समस्या दिन-प्रतिदिन गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। वर्तमान समय में पूंजी प्रधान तकनीक बढ़ रही है, जिससे श्रमिकों को रोजगार नहीं मिल रहा है। अदृश्य बेरोजगारी की समस्या, दृश्य बेरोजगारी की समस्या से भी गम्भीर है। इससे देश की जनशक्ति का समुचित उपयोग नहीं हो रहा है और परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय आय धीमी गति से बढ़ रही है।

(6) साहसियों की कमी (Lack of Entrepreneurs) - राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिए बड़ी मात्रा में विनियोग की आवश्यकता होती है। किन्तु विनियोग करके उत्पादन की

जोखिम उठाने के लिए भी योग्य साहसियों की आवश्यकता होती है। भारत में योग्य साहसियों का नितान्त अभाव है जिससे विनियोग, उत्पादन, रोजगार आदि क्षेत्रों में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पा रही है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय कम है।

(7) परिवहन एवं संचार साधनों का अभाव (Lack of the Means of Transport and Communications) - आर्थिक क्रियाओं को गति देने के लिए बुनियादी सुविधाओं, जैसे यातायात एवं संचार साधनों का पर्याप्त मात्रा में विकसित होना आवश्यक है। इन साधनों के विकास से देश का विकास स्वतः हो जाता है। लेकिन भारत में परिवहन तथा संचार साधनों जैसी बुनियादी सुविधाओं की कमी से अन्य आर्थिक प्रक्रियाएं सुस्त है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय भी कम है।

(8) प्राकृतिक साधनों का अपूर्ण विदोहन (Un-utilised Natural Resources) - भारत में प्राकृतिक साधन तो प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं किन्तु उनकी पूर्ण जानकारी न होने से उनका उपयोग नहीं हो रहा है। जिससे राष्ट्रीय आय कम है। इतना ही नहीं, ज्ञात प्राकृतिक साधनों का भी पूर्ण विदोहन नहीं हो रहा है।

(9) भाग्यवादिता एवं रुढ़िवादिता - भारत में प्रति व्यक्ति एवं राष्ट्रीय आय कम होने का एक मुख्य कारण यहाँ के निवासियों का भाग्यवादी एवं रूढ़िवादी होना है। उनका मत है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा। फलतः यहाँ के निवासी न तो जोखिम उठाना चाहते है और न ही उन्नत तकनीकी को अपना कर उत्पादन में वृद्धि करने का प्रयास ही करते हैं। इससे उत्पादन कम होता है जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति आय कम रहती है।

(10) बाजार की सीमितता (Market Limitations) - भारतीय कम भौतिकतावादी हैं, इसी से यहाँ वस्तुओं और सेवाओं की माँग कम रहती है। परिणामस्वरूप बाजार की सीमितता के कारण राष्ट्रीय आय भी कम है। इसके साथ ही भारत में निर्मित वस्तुओं को विदेशी वस्तुओं से कड़ी प्रतियोगिता करनी पड़ रही है। नई आर्थिक नीति एवं भूमण्डलीकरण के बाद यह प्रतियोगिता और अधिक बड़ी हो गई है।

(11) राजनैतिक एवं प्रशासनिक कारण (Political & Administrative Reasons) - केन्द्र व राज्यों में भिन्न राजनैतिक दलों की सरकारें होने पर केन्द्र राज्यों के विकास में कम रुचि लेता है जिससे उत्पादन, प्रति व्यक्ति आय व राष्ट्रीय आय में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो रही है। आतंकवाद एवं हिंसा का भी उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। इसके साथ ही देश में विद्यमान भ्रष्टाचार ने भी आर्थिक वातावरण को दूषित किया है।

प्रश्न 2: राष्ट्रीय आय के आकलन के प्रमुख तरीके कौन-कौन से हैं?

प्रश्न 3: भारतीय राष्ट्रीय आय का आकलन किस संस्था द्वारा किया जाता है?

6.10 भारत में राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के सुझाव

भारत की राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है और इसमें पिछले 58 वर्षों में जो वृद्धि हुई है, उसकी गति भी बहुत धीमी रही है। राष्ट्रीय आय में तेजी से वृद्धि के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं: -

1. बचत एवं विनियोग में वृद्धि: - पूंजी की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। पूंजी की कमी का मुख्य कारण बचतों का कम होना है। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद बचत एवं विनियोगों में काफी वृद्धि हुई है, तथापि इसमें और अधिक वृद्धि की आवश्यकता है। अतः जन-साधारण को बचतों को बढ़ाने के प्रति प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

2. जनसंख्या नियंत्रण: - भारत की राष्ट्रीय आय में पिछले 60 वर्षों में औसतन लगभग 4.3 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है, जब कि इस अवधि में जनसंख्या 1.9 प्रतिशत की दर से बढ़ी है, अर्थात प्रति व्यक्ति आय में केवल 2.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अतः जनसंख्या की वृद्धि दर को नियंत्रित करना बहुत जरूरी है। दूसरे शब्दों में, जनसंख्या नियंत्रण के क्षेत्र में भारत को चीन का अनुशरण करना चाहिए।

3. उन्नत तकनीक: -राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि आवश्यक है और वस्तुओं एवं सेवाओं में वृद्धि के लिए उत्पादन तकनीक में आधुनिकता लाना जरूरी है। भारत में अभी तक "शोध एवं विकास" (Research & Develpment) को पर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि उन्नत तकनीक केवल बड़े उद्योगों के लिए ही जरूरी नहीं है वरन् लघु एवं कुटीर उद्योगों के साथ ही कृषि के लिए भी आवश्यक है।

4. निर्यात व्यापार: - उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण के बाद से देश के निर्यात व्यापार में वृद्धि आवश्यक हो गई है। अपने उत्पादों को विदेशी प्रतियोगिता के अनुकूल बनाकर विश्व बाजारों में लोकप्रियता प्राप्त करना बहुत आवश्यक। सूचना प्रौद्यौगिकी एवं कम्प्युटर साफ्टवेयर में और अधिक विस्तार किया जाना चाहिए।

इस सन्दर्भ में पिछले 60 वर्षों का अनुभव सन्तोषजनक नहीं रहा। निर्यातों की तुलना में आयातों के अधिक होने से हमारा व्यापार सन्तुलन सदैव प्रतिकूल रहा है। अतः निर्यात बढ़ाने के लिए न केवल नये बाजारों की खोज की जानी चाहिए, वरन् उत्पादित माल की गुणवत्ता में भी सुधार किया जाना चाहिए।

5. शिक्षा शक्षा एवं प्रशिक्षण: -उत्पादन एवं आय बढ़ाने के लिए कुशल एवं प्रशिक्षित जनशक्ति आवश्यक है, जिससे कि विदेशी प्रतियोगिता का सही ढंग से सामना कर सकें। सूचना प्रौद्यौगिकी के विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि देश में यदि शिक्षा प्रणाली में युक्तियुक्त परिवर्तन किया जाता है तो भारत विश्व में एक अग्रणी देश बन

सकता है। अतः यह आवश्यक है कि सामान्य शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ तकनीकी शिक्षा को विशेष महत्व दिया जावे ।

6. सामाजिक पर्यावरण में सुधार: - प्रायः यह कहा जाता है कि भारत में कठोर श्रम करने की संस्कृति नहीं है। इस दिशा में चीन एवं जापान से हमें बहुत कुछ सीखना है। धार्मिक अन्धापन, सामाजिक कुरीतियां, जाति प्रथा, भाग्य वादिता आदि अनेक ऐसे घटक हैं जिनसे भारत की प्रगति बाधित हुई है। अतः आवश्यक है कि कठोर मानसिक एवं शारीरिक श्रम करने के योग्य सामाजिक पर्यावरण निर्मित किया जावे।

7. आधारभूत सुविधाओं का विकास: - उत्पादन एवं आय में वृद्धि के लिए आधारभूत सुविधाओं, जैसे परिवहन, विद्युत, संचार आदि क्षेत्रों में पर्याप्त विकास आवश्यक है। अतः यह आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में पर्याप्त पूंजी निवेश किया जावे। आधारभूत सुविधाओं के विकास के लिए निजी क्षेत्र के साथ-साथ विदेशी पूंजी को भी आकर्षित किया जाना चाहिए।

7.प्रशासनिक क्षमता में सुधार: - योजनाओं के क्रियान्वयन का दायित्व प्रशासन पर रहता है। अतः प्रशासन से भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद जैसी बुराइयों को दूर किया जाना चाहिए एवं त्वरित निर्णय लेकर कार्य करने की संस्कृति का विस्तार होना चाहिए।

6.11 सार संक्षेप

भारत में राष्ट्रीय आय का अनुमान आर्थिक गतिविधियों के मूल्य का माप है, जो देश की समग्र आर्थिक स्थिति को दर्शाता है। राष्ट्रीय आय का अनुमान तीन प्रमुख तरीकों से किया जाता है: उत्पादन विधि, आय विधि और व्यय विधि।

1. **उत्पादन विधि (Production Method)**: इस विधि में विभिन्न उद्योगों और क्षेत्रों द्वारा उत्पादित वस्त्रों और सेवाओं का मूल्य जोड़ा जाता है। इसमें कृषि, उद्योग, और सेवा क्षेत्र के उत्पादन का योग किया जाता है।
2. **आय विधि (Income Method)**: इस विधि में सभी कारकों (कर्मचारी, पूंजी आदि) से मिलने वाली आय का योग किया जाता है। इसमें मजदूरी, लाभ, ब्याज और किराया आदि शामिल होते हैं।
3. **व्यय विधि (Expenditure Method)**: इस विधि में सभी प्रकार के खर्चों का योग किया जाता है, जैसे उपभोग व्यय, निवेश व्यय और सरकारी खर्च।

राष्ट्रीय आय का अनुमान नीति निर्धारण, आर्थिक विकास, और योजना बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह देश की समृद्धि का मापदंड है और इसके

आधार पर सरकार विभिन्न आर्थिक नीतियाँ बनाती है, जिससे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है।

6.12 मुख्य शब्द

1. **राष्ट्रीय आय (National Income)**: एक देश के भीतर किसी विशेष समय अवधि (आम तौर पर एक वर्ष) में निर्मित सभी वस्त्रों और सेवाओं का कुल मूल्य। यह किसी भी देश की आर्थिक स्थिति का मापदंड होता है।
2. **उत्पादन पद्धति (Production Method)**: इस पद्धति में, राष्ट्रीय आय का अनुमान उस समय अवधि में उत्पादित सभी वस्त्रों और सेवाओं के कुल मूल्य से किया जाता है।
3. **आय पद्धति (Income Method)**: इस पद्धति में, राष्ट्रीय आय का अनुमान उत्पादन प्रक्रिया से जुड़े विभिन्न कारकों जैसे मजदूरी, किराया, ब्याज और लाभ के माध्यम से किया जाता है।
4. **व्यय पद्धति (Expenditure Method)**: इस पद्धति में राष्ट्रीय आय का अनुमान उपभोक्ताओं, सरकार और व्यापारियों द्वारा की गई कुल खरीददारी (व्यय) के आधार पर किया जाता है।
5. **सकल घरेलू उत्पाद (GDP - Gross Domestic Product)**: यह एक देश के भीतर एक निश्चित समय में निर्मित सभी वस्त्रों और सेवाओं का कुल मूल्य होता है।

6.13 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: राष्ट्रीय आय का आकलन किसी देश की आर्थिक स्थिति और विकास स्तर का निर्धारण करने के लिए महत्वपूर्ण होता है। यह हमें देश की कुल उत्पादन क्षमता, सेवाओं और वस्तुओं की उपलब्धता, तथा आर्थिक स्वास्थ्य के बारे में जानकारी देता है। इसके द्वारा सरकार को आर्थिक नीति बनाने, योजनाओं का निर्धारण करने, और सामाजिक-आर्थिक सुधारों के लिए दिशा निर्देश प्राप्त होते हैं।

उत्तर 2: राष्ट्रीय आय का आकलन करने के तीन प्रमुख तरीके होते हैं:

1. **उत्पादन विधि (Production Method):** इस विधि में, देश में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य का जोड़ किया जाता है। इसमें प्रत्येक उद्योग के योगदान को ध्यान में रखा जाता है।

2. **आय विधि (Income Method):** इस विधि में, समस्त आर्थिक गतिविधियों से प्राप्त आय (वेतन, लाभ, किराया आदि) का कुल योग लिया जाता है। यह विधि उत्पादन के दौरान उत्पन्न होने वाली आय को मापती है।
3. **व्यय विधि (Expenditure Method):** इस विधि में, विभिन्न आर्थिक इकाइयों द्वारा वस्तुओं और सेवाओं पर किए गए खर्च का योग लिया जाता है, जैसे उपभोक्ता खर्च, निवेश, और सरकारी खर्च।

उत्तर 3: भारत में राष्ट्रीय आय का आकलन *केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय (CSO)* द्वारा किया जाता है। यह संस्था समय-समय पर राष्ट्रीय आय के आंकड़े प्रकाशित करती है, जिससे देश की आर्थिक स्थिति का सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

6.14 संदर्भ सूची

- कुमार, ए. (2019). भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास: एक समग्र दृष्टिकोण. दिल्ली: शैक्षिक प्रकाशन।
- शर्मा, आर. (2021). भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और विकास. जयपुर: राजकमल प्रकाशन।
- वर्मा, जी. (2022). राष्ट्रीय आय और आर्थिक वृद्धि: भारतीय संदर्भ. लखनऊ: पेंग्विन।
- यादव, एम. (2020). भारत में राष्ट्रीय आय की गणना और इसके प्रभाव. कोलकाता: विज्ञान वाणी।
- सिंह, ए. (2023). भारत की अर्थव्यवस्था: एक समकालीन विश्लेषण. मुंबई: आर्य प्रकाशन।

6.15 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

L राष्ट्रीय आय क्या है? हमारे देश में प्रयुक्त राष्ट्रीय आय गणना की वर्तमान रीति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

What is National Income? Examine critically the present method of National Income cstimation followed in our country.

2. राष्ट्रीय आय की परिभाषा दीजिए और उस विधि का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए जो केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन के द्वारा भारत की राष्ट्रीय आय के बारे में अनुमान लगाने के लिए प्रयोग में ली जाती है।

Define National Income & describe briefly the method which is followed by Central Statistical Organisation for estimation of National Income in India.

3.भारत में राष्ट्रीय आय की गणना की कठिनाइयाँ बताइये और उन्हें दूर करने के उपाय सुझाइए।

Explain the difficulties in calculating national income in india and suggest measures to overcome them.

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

(1) भारत की राष्ट्रीय आय पर एक टिप्पणी लिखिए।

(2) भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि का महत्व ।

(3) भारत में राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय कम होने के क्या कारण है?

(4) भारत में राष्ट्रीय आय की गणना कैसे की जाती है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) भारत की राष्ट्रीय आय समिति (1949) के अध्यक्ष थे -

(अ) प्रो. महलनोवीस (ब) प्रो. दाण्डेकर

(स) प्रो. शिराज (द) प्रो. घोष

(2) भारत में वर्तमान समय में वास्तविक राष्ट्रीय आय की गणना का आधार वर्ष है -

(अ) 1980-81 (ब) 2004-05

(स) 1999-2000 (द) 1993-94

(3) भारत में राष्ट्रीय आय की गणना किस संस्था के द्वारा की जाती है ?

(अ) योजना आयोग (ब) वित्त आयोग

(स) केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (द) राष्ट्रीय न्यादर्श सर्वेक्षण

(4) भारत में राष्ट्रीय आय की गणना किस विधि से की जाती है ?

(अ) आय विधि (ब) उत्पादन विधि

(स) आय एवं उत्पादन विधि (द) उपर्युक्त कोई नहीं

उत्तर- (1) अ, (2), ब (3) स, (4) स

इकाई -7
राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक कल्याण
(NATIONAL INCOME AND ECONOMIC WELFARE)

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 आर्थिक कल्याण का अर्थ
7.4 क्या आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का सूचक है?
7.5 राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण में सम्बन्ध
7.6 क्या राष्ट्रीय आय को आर्थिक कल्याण का सूचक स्वीकार किया जा सकता है?
7.7 सार संक्षेप
7.8 मुख्य शब्द
7.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
7.10 संदर्भ सूची
7.11 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय आय एक देश में एक निश्चित समयावधि में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मौद्रिक मूल्य है। इसे आमतौर पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP) या सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) के रूप में मापा जाता है। राष्ट्रीय आय का आंकलन यह बताता है कि किसी देश की अर्थव्यवस्था कितनी समृद्ध है और उसका आर्थिक प्रदर्शन कैसा है।

आर्थिक कल्याण का अर्थ है समाज के विभिन्न वर्गों की समग्र भलाई और जीवन स्तर में सुधार। यह न केवल आर्थिक समृद्धि को बल्कि स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, और सामाजिक सुरक्षा जैसे पहलुओं को भी शामिल करता है। उच्च राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण का सीधा संबंध नहीं होता, क्योंकि एक देश की आय बढ़ने के बावजूद उसकी जनता की जीवन गुणवत्ता में सुधार नहीं हो सकता।

इसलिए, आर्थिक विकास के साथ-साथ समाज के सभी वर्गों की भलाई को सुनिश्चित करना आवश्यक है ताकि विकास का लाभ समग्र रूप से समाज तक पहुँच सके।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. आर्थिक स्थिरता और वृद्धि के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. सामाजिक और आर्थिक समानता को बढ़ावा देने के उपायों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
5. रोजगार सृजन और आर्थिक विकास के लिए नीति निर्धारण में योगदान दे सकेंगे।
6. वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भारत की स्थिति को समझ सकेंगे।
7. संसाधनों का समुचित वितरण सुनिश्चित करने के उपायों की पहचान कर सकेंगे।
8. भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार की दिशा पर विचार कर सकेंगे।
9. देश के समग्र आर्थिक विकास के लिए योजनाओं और नीतियों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

7.3 आर्थिक कल्याण का अर्थ

"आर्थिक कल्याण में दो शब्दों, आर्थिक एवं कल्याण का संयुक्त प्रयोग है। इनमें से आर्थिक शब्द का अर्थ है, मनुष्य की धन से सम्बन्धित क्रियाएं, और कल्याण शब्द का अर्थ है आनन्द, हित, भलाई, कुशलता, तृप्ति आदि ।" किन्तु कल्याण से सम्बन्धित उक्त सभी अर्थों में सूक्ष्म अन्तर है, फिर भी कल्याण शब्द का अर्थ अच्छा या उत्तम हो सकता है। प्रो. पीगू ने कल्याण शब्द का विश्लेषण निम्नलिखित ढंग से किया है

(**1) कल्याण एक मानसिक दशा है** (Welfare is a Mental Condition) - कारण यह है कि कल्याण चेतना से सम्बन्धित एक मानसिक आभास वाला शब्द है।

(2) कल्याण को सापेक्षिक ढंग से मापा जा सकता है (Welfare can be Relatively Measured)- कल्याण को मापने के लिए किलोग्राम, लीटर या मीटर जैसी भौतिक माप की इकाइयों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसे तुलनात्मक रूप से मापा जा सकता है, जैसे किसी एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति की तुलना में अधिक अच्छी दशा में होना।

(3) कल्याण का क्षेत्र: आर्थिक और अनार्थिक (Scope of Welfare: Economic and Non-Economic) - **"कल्याण"** एक व्यापक शब्द है जो अनेक कारणों से प्रभावित होता है। कल्याण सम्बन्धी सभी कारणों का अध्ययन करना कठिन है। फिर भी प्रो. पीगू ने कल्याण शब्द की विवेचना दो रूपों में की है- (i) आर्थिक कल्याण और (ii) अनार्थिक कल्याण। आर्थिक कल्याण और अनार्थिक कल्याण का योग कुल कल्याण कहलाता है। प्रो. पीगू का मत है कि अर्थशास्त्र का उद्देश्य मानव कल्याण को बढ़ाना है, जिसे मुद्रा में

मापा जा सकता है। अतः सामान्यतः अर्थशास्त्र में हम केवल आर्थिक कल्याण का भी अध्ययन करते हैं। **प्रो. पीगू** के शब्दों में, आर्थिक कल्याण, सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मुद्रा में मापा जा सकता है।

प्रो. पीगू इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि 'यद्यपि आर्थिक और अनार्थिक कल्याण के बीच कोई स्पष्ट रेखा नहीं खीचीं जा सकती, फिर भी मुद्रा के मापदण्ड के द्वारा इनमें एक काम चलाऊ भेद करना सम्भव है।' संक्षेप में, आर्थिक कल्याण से आशय कुल कल्याण के उस भाग से है जिसको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मुद्रा के मापदण्ड से मापा जा सके।

7.4 क्या आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का सूचक है?

प्रश्न यह है कि क्या आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का सूचक या बेरोमीटर है अथवा नहीं। इस प्रश्न के उत्तर में अर्थशास्त्रियों में परस्पर मतभेद है। जहां कुछ अर्थशास्त्री आर्थिक कल्याण को कुल कल्याण का सूचक मानते हैं वहीं कुछ नहीं मानते। इन दोनों दृष्टिकोणों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है: -

(A) आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का सूचक है

(Economic Welfare is an Index of Total Welfare): -

कल्याणवादी अर्थशास्त्र के अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्यों के अध्ययन से स्पष्ट है कि आर्थिक कल्याणकुल कल्याण का एक अंग है। ऐसी दशा में आर्थिक कल्याण, सामाजिक कल्याण के सूचक (बेरोमीटर) का काम करता है। अन्य शब्दों में, किसी कारण का आर्थिक कल्याण पर जो प्रभाव पड़ता है उसे देखकर यह मालूम हो जाता है कि उसका कुल कल्याण पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का सूचक होता है। आर्थिक कल्याण को कुल कल्याण का सूचक निम्नलिखित दो मान्यताओं के आधार पर माना जाता है -

(i) जो कारण आर्थिक कल्याण को प्रभावित करते हैं वे कारण अनार्थिक कल्याण को बिल्कुल भी प्रभावित नहीं करते हैं। यदि वे कारण अनार्थिक कल्याण को भी प्रभावित करते हैं तो यह निश्चित रूप से कहना कठिन होगा कि आर्थिक कल्याण का कुल कल्याण पर क्या प्रभाव पड़ा है।

(ii) आर्थिक कल्याण पर पड़ने वाले प्रभाव अनार्थिक कल्याण पर भी पड़े। अन्य शब्दों में, जिस कारण से आर्थिक कल्याण बढ़ता है या कम होता है, उसी कारण से अनार्थिक कल्याण को भी बढ़ना या कम होना चाहिए। यदि कोई प्रभाव एक ही दिशा में

नहीं होता तो आर्थिक कल्याण के परिवर्तन को देखकर सही रूप से कुल कल्याण में होने वाले परिवर्तनों की भविष्यवाणी करना गलत होता है।

(B)आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का सूचक नही है।

(Economic Welfare is not an Index of Total Welfare): -

कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का सूचक नहीं है। इसके निम्नलिखित कारण दिये जाते है

(1) आय प्राप्ति एवं व्यय का ढंग (Method of Income & Expenditure) - आर्थिक कल्याण तथा अनार्थिक कल्याण को दो तत्व प्रभावित करते हैं (1) आय प्राप्त करने का तरीका और (2) आय को व्यय करने का ढंग। हो सकता है कि एक व्यक्तित्व समाज को हानि पहुंचाये बिना आय प्राप्त करता हो, लेकिन यदि वह गलत ढंग से व्यय करता है तो आर्थिक कल्याण बढ़ने पर अनार्थिक कल्याण नहीं बढ़ता है। इसके विपरीत यदि वह चोरी, या गैर कानूनी ढंग से आय प्राप्त करके अच्छे कार्यों पर व्यय करता है तो आर्थिक कल्याण कम होगा, किन्तु अनार्थिक कल्याण बढ़ेगा।

(2) कुल कल्याण को अनेक तत्व प्रभावित करते हैं (Many Factors Effects Total Welfare) - कुल कल्याण को आर्थिक कारण ही नहीं वरन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि कारण भी प्रभावित करते हैं। प्रो. पीगू के अनुसार "हम जो जानना चाहते हैं वह यह नहीं कि कल्याण कितना अधिक है या कम है, बल्कि हम यह जानना चाहते हैं कि उन कारणों के प्रचलन द्वारा जिन्हें सक्रिय ढंग से प्रचलित करना राजनीतिज्ञों या अन्य शक्तियों का दायित्व है, कल्याण की मात्रा किस प्रकार से प्रभावित होती है।"

(3) विपरीत प्रभावों की सम्भावना (Possibility of Opposite Effects): - कई बार एक कारण आर्थिक कल्याण को किसी एक दिशा में और अनार्थिक कल्याण को दूसरी दिशा में प्रभावित करे तो इन दोनों विपरीत प्रभावों से समाज पर पड़ने वाला कुल प्रभाव निष्क्रिय हो जाता है।

(4) कुल कल्याण पर प्रभाव न पड़े (Total Welfare may Remain Un-effected): - आर्थिक कारणों से आर्थिक कल्याण तो प्रभावित होता है किन्तु यह सम्भव है कि कुल कल्याण पर उसका प्रभाव न पड़े।

(5) मुद्रा सभी प्रकार के कैल्याण का उचित मापदण्ड नहीं है (Moncy is not a Proper Instrument for Measuring all Kinds of Welfare): - प्रो. पीगू का मत है कि "आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का वह भाग है जिसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा के मापदण्ड से मापा जा सकता है।" इस कथन के अनुसार एक देश के भौतिक पदार्थों

जैसे कपड़ा, गेहूं, टेबल, कुर्सी, रेडियो, दूरदर्शन आदि को तो मुद्रा में मापा जा सकता है, किन्तु देशप्रेम, समाजसेवा आदि को मुद्रा में में मापना सम्भव नहीं है। इस प्रकार अभौतिक कल्याण को मुद्रा में मापकर आर्थिक कल्याण में शामिल करना सम्भव नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का मापक या सूचक नहीं है।

प्रश्न 1: राष्ट्रीय आय क्या है? इसे मापने के प्रमुख तरीके कौन से हैं?

7.5 राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण में सम्बन्ध

राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यही कारण है कि किसी एक में परिवर्तन होने पर दूसरे में भी परिवर्तन अवश्य होते है। राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक कल्याण के सम्बन्ध का अध्ययन निम्नलिखित दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है:-

(A) राष्ट्रीय आय के परिमाण में परिव्रर्तन का आर्थिक कल्याण पर प्रभाव (Impact of a Change in the Magnitude of National Income on Economic welfare)

राष्ट्रीय आय के परिमाण अथवा मात्रा का सीधा सम्बन्ध आर्थिक कल्याण से है, क्योंकि राष्ट्रीय आय का परिमाण बढ़ने पर आर्थिक कल्याण भी बढ़ता है। इसके विपरीत राष्ट्रीय आय का परिमाण कम होने पर आर्थिक कल्याण भी कम होता है। संक्षेप में, राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण में धनात्मक सम्बन्ध है।

राष्ट्रीय आय की मात्रा या परिमाण को अनेक तत्व प्रभावित करते हैं। जैसे- मानवीय साधनों का समुचित उपयोग, प्राकृतिक एवं भौतिक साधनों का उचित विदोहन, उत्पादन विधि की कुशलता, यातायात एवं सन्देशवाहन साधनों का विकास आदि। यदि ये घटक विकसित दशा में हैं तो राष्ट्रीय आय का परिमाण बढ़ता है और परिणामस्वरूप आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय आय बढ़ने पर प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है, जिससे लोगों के रहन-सहन का स्तर बढ़ता है। उपभोग में वृद्धि होती है, उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है, जिससे आर्थिक कल्याण बढ़ता है। इसके विपरीत राष्ट्रीय आय का परिमाण कम होने पर आर्थिक कल्याण भी कम हो जाता है।

इस सन्दर्भ में **प्रो. पीगू** का विचार है कि राष्ट्रीय आय का परिमाण बढ़ने पर यह आवश्यक नहीं कि सदैव आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो। प्रो. पीगू के अनुसार निम्न दशाओं में राष्ट्रीय आय का परिमाण बढ़ने पर आर्थिक कल्याण बढ़ता है

(1) राष्ट्रीय आय बढ़ने पर गरीबों की आय कम न हो (The Income of Poors should not Decrease with an Increase in National Income): -राष्ट्रीय आय

बढ़ने पर यदि केवल अमीरों की आय बढ़े और गरीबों की आय कम हो तो आर्थिक कल्याण नहीं बढ़ेगा। इतना ही नहीं उक्त दशा में आर्थिक कल्याण कम हो जायेगा। क्योंकि किसी भी देश में अमीरों की तुलना में गरीबों की संख्या बहुत अधिक होती है। इसके विपरीत अमीरों की आय में वृद्धि के साथ-साथ गरीबों की आय में भी वृद्धि हो अथवा गरीबों की आय में कोई कमी न हो, तब भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। प्रो. पीगू के शब्दों में, "यह प्रत्यक्ष है कि यदि गरीबों को मिलने वाले लाभ के अंश में कमी न आये तो कुल राष्ट्रीय आय के परिमाण में वृद्धि अवश्य ही आर्थिक कल्याण में वृद्धि ला देगी।"

(2) राष्ट्रीय आय बढ़ने पर लोगों की रुचि में परिवर्तन अच्छाई की ओर हो: - राष्ट्रीय आय बढ़ने पर प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ती है। प्रति व्यक्ति आय बढ़ने से लोग अधिक मात्रा में वस्तुओं का उपभोग करते हैं। आय बढ़ने पर लोगों की रुचियों में परिवर्तन आता है। वे पुरानी वस्तुओं के स्थान पर नई वस्तुओं के उपभोग के प्रति आकर्षित होते हैं। यदि लोगों की उपभोग रुचियों में होने वाला परिवर्तन अच्छाई की ओर है तो उससे आर्थिक कल्याण बढ़ता है। इसके विपरीत यदि लोग बढ़ी हुई आय को शराब पीने, जुआ खेलने और अन्य हानिकारक वस्तुओं का उपभोग करने पर व्यय करते हैं तो आर्थिक कल्याण में कमी आती है।

(3) राष्ट्रीय आय में वृद्धि के तरीके भी आर्थिक कल्याण को प्रभावित करते हैं (The Method of Increase in National Income also Effects Economic Welfare): -जिस देश में उत्पादन वृद्धि के लिए नवीन आविष्कारों एवं अनुसन्धानों का प्रयोग किया जाता है तथा श्रमिकों को समुचित सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाती है वहाँ राष्ट्रीय आय बढ़ने पर आर्थिक कल्याण बढ़ता है। इसके विपरीत, जिस देश में गैर कानूनी तरीकों, जैसे-चोरी, तस्करी, श्रमिकों के शोषण से अर्थात श्रमिकों के काम के घण्टे बढ़ाकर, उन्हें कम मजदूरी देकर, बच्चों व स्त्रियों से अधिक काम लेकर, खराब वातावरण में काम करवाकर उत्पादन बढ़ाया जाता है, तो वहाँ राष्ट्रीय आय के बढ़ने पर भी आर्थिक कल्याण नहीं बढ़ता है।

(4) उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन से ही आर्थिक कल्याण बढ़ता है (Economic Welfare Increases with the Production of Utility Goods): -किसी भी देश में उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन होने और उनके परिमाण में वृद्धि होने पर आर्थिक कल्याण बढ़ता है। इसके विपरीत दशा में आर्थिक कल्याण घटता है। उदाहरण के लिए यदि किसी अल्प विकसित देश में पक्के मकान, सड़कें, रेल, हवाई यातायात, शिक्षा स्वास्थ्य आदि की सुविधाएँ बढ़ती हैं, तो देश में निश्चय ही आर्थिक कल्याण भी बढ़ेगा। इसके विपरीत, यदि एक अल्पविकसित देश शराब, भाँग, अफीम आदि अथवा अन्य

नशीले पदार्थों आदि का उत्पादन करके लोगों को बेचता है, तो आर्थिक कल्याण घटता है।

(5) जनसंख्या पर नियन्त्रण (Control on Population): -किसी भी देश की मानव शक्ति उस देश की जनसंख्या में निहित होती है, किन्तु यदि जनसंख्या राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ती है, तो उत्पादन बढ़ने पर भी आर्थिक कल्याण कम हो जाता है, क्योंकि जनसंख्या बढ़ने पर प्रतिव्यक्ति आय एवं प्रति व्यक्ति उपभोग कम हो जाता है।

(B) राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन का आर्थिक कल्याण पर प्रभाव: - (Impact of a Change in Distribution of National Income on Economic Welfare)

राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन का अर्थ है समाज के किसी एक वर्ग-विशेष के लोगों के हाथों से दूसरे वर्ग के लोगों के हाथों में आय का हस्तान्तरण। किसी भी समाज में सामान्यतः दो वर्ग, अमीर और गरीब होते हैं। राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन का आर्थिक कल्याण पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ता है –

(1) गरीब वर्ग से अमीर वर्ग की ओर राष्ट्रीय आय का हस्तान्तरण (Transfer of National Income from Poor to Rich): - इससे गरीब और अधिक गरीब तथा अमीर और अधिक अमीर हो जावेंगे। परिणाम स्वरूप गरीबों का उपभोग स्तर कम हो जावेगा तथा अमीरों के उपभोग स्तर पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतः इस प्रकार के हस्तान्तरण से आर्थिक कल्याण कम होगा।

(2) अमीर वर्ग से गरीब वर्ग की ओर राष्ट्रीय आय का हस्तान्तरण (Transfer of National Income from Rich to Poor): - यदि राष्ट्रीय आय का वितरण अमीर वर्ग से गरीब वर्ग के पक्ष में होता है तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। इसमें धन अमीरों से गरीबों की ओर प्रवाहित होता है। फलतः गरीब वर्ग के उपभोग स्तर में वृद्धि होगी जिससे उनका कल्याण बढ़ेगा। राष्ट्रीय आय का वितरण गरीबों के पक्ष में करने के लिए सरकार अमीरों के धन को विभिन्न प्रकार के करों के द्वारा कम करती है तथा विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों के द्वारा गरीबों की आय बढ़ाती है।

(3) गरीबों की आय बढ़ाकर धन का हस्तान्तरण करना (Transfer of Wealth Through Raising the Income of Poor): - सरकार राष्ट्रीय आय के वितरण की नीति से गरीबों की आय बढ़ाकर भी आर्थिक कल्याण बढ़ा सकती है। सरकार गरीबों की आय अनेक उपायों से बढ़ा सकती है। जैसे न्यूनतम मजदूरी दर निश्चित करना, गरीबों के उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना तथा उन्हें कम कीमत पर उपलब्ध कराना आदि। प्रो. पीगू के शब्दों में, "कोई भी कारण जो वास्तविक आय के बहुत अधिक भाग

का गरीबों के पक्ष में वृद्धि करता है, यदि वह किसी भी दृष्टिकोण से राष्ट्रीय आय के आकार में कमीं नहीं करता, तो वह सामान्यतः आर्थिक कल्याण बढ़ाता है।"

(4**) अमीरों की अप्रयुक्त आय गरीबों के पक्ष में वितरित करने से आर्थिक कल्याण बढ़ता है** (Economic Welfare Increases Through the Transfer of Un-utilised Income of Rich in Favour of Poors): - आर्थिक कल्याण सम्पूर्ण आय से प्रभावित नहीं होता है, वर्न वह आय के उस भाग से प्रभावित होता है जिसका लोग उपभोग करते हैं। अतः यदि अमीरों की आय का वह भाग जिसका वे उपभोग नहीं करते हैं गरीबों को दे

दिया जाये तो अमीरों के आर्थिक कल्याण पर तो कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, किन्तु गरीब वर्ग, जो आय की कमी के कारण अत्यावश्यक उपभोग से वंचित रहता है, अपना उपभोग बढ़ा देगा जिससे गरीबों का आर्थिक कल्याण बढ़ जावेगा।

प्रश्न 2: आर्थिक कल्याण क्या है? इसके प्रमुख तत्व कौन से हैं
प्रश्न 3: राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण में क्या अंतर है?

7.6 क्या राष्ट्रीय आय को आर्थिक कल्याण का सूचक स्वीकार किया जा सकता है

सामान्यतः यह माना जाता है कि राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय आर्थिक कल्याण का सूचक है। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से आर्थिक कल्याण बढ़ता है और इसके विपरीत, आय में कमी होने से आर्थिक कल्याण घटता है। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से जीवन की सुख-सुविधाओं में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। इसके विपरीत कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि राष्ट्रीय आय को आर्थिक कल्याण का सही माप नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सकल राष्ट्रीय आय की गणना करते समय मानव कल्याण को प्रभावित करने वाले तत्वों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। इन विद्वानों के अनुसार ये तत्व निम्न प्रकार है:-

(1) रहन-सहन का स्तर (Standard of Living): -राष्ट्रीय आय समाज के रहन-सहन के स्तर को नहीं बताती है। यदि राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग युद्ध सामग्री के निर्माण एवं पूंजीगत माल पर व्यय किया जाता है और छोटा भाग उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण पर व्यय किया जाता है, तो इससे राष्ट्रीय आय तो अधिक होगी किन्तु आर्थिक कल्याण घट जावेगा।

(2) जीवन की गुणवत्ता (Quality of Life): - सकल राष्ट्रीय आय में जीवन का गुणात्मक परिवर्तन सम्मिलित नहीं किया जाता है जो समाज के कल्याण को बताता है। शहरों में जीवन तनावपूर्ण होता है। वहाँ रोजाना दुर्घटनाएं होती है। भीड़, परिवहन,

निवास, बिजली, जल संकट आदि बना रहता है। जिससे जीवन में गुणात्मक कमी आती है और सामाजिक कल्याण कम होता है। इसके विपरीत ग्रामों में प्राकृतिक सौन्दर्य, स्वच्छ जल मिलता है, पर्यावरण दूषित नहीं होता, इससे जीवन में गुणात्मक सुधार होता है। किन्तु इसे राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता।

(3) विश्राम (Leisure): - मनुष्य को मिलने वाला विश्राम भी मानव कल्याण या आर्थिक कल्याण को प्रभावित करता है, जिसकी राष्ट्रीय आय में गणना नहीं की जाती है। उदाहरण के लिए अधिक घण्टे काम करने से लोगों को कम आराम मिलता है, और उनकी प्रसन्नता कम हो जाती है। इसके विपरीत कम घण्टे काम करने वालों को अधिक प्रसन्नता और आराम मिलता है। किन्तु विश्राम को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता है।

(4) उत्पादन की किस्म (Nature of Production): - समाज को विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन से भिन्न-भिन्न सन्तोष मिलता है, जिसे सकल राष्ट्रीय उत्पादन में मापना कठिन है। उदाहरणार्थ, एक देशोम्पू मिल को सिगरेट बनाने तथा शुद्ध जल की पूर्ति पर किये गये व्यय से राष्ट्रीय आय में समान वृद्धि होने पर भी समाज को समान सन्तोष नहीं मिलता है, क्योंकि सिगरेट कल्याण नहीं बढ़ाती, जबकि शुद्ध जल कल्याण बढ़ाता है।

(5) सौदे जिनका मौद्रिक विनिमय नहीं होता (Transactions Without Monetary Exchange): -कई गैर बाजारगत लेन-देन जेसे-गृहणी की सेवाएं आदि कल्याण को बढ़ाती हैं, जबकि उन्हें सकल राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता ।

(6) बाह्य दशाएं (External Conditions): - कई बाह्य दशाएं कल्याण बढ़ाती है किन्तु उन्हें राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता, जैसे एक बगीचे के पास रहने वाला व्यक्ति बगीचे की आबोहवा में प्रसन्न होता है, जो उसके कल्याण को बढ़ाता है, जबकि कारखाने के दूषित वातावरण में रहने वाला बीमार व परेशान रहता है।

प्रश्न 4: सतत विकास का राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण पर क्या प्रभाव है?

7.7 सार संक्षेप

राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण दो महत्वपूर्ण आर्थिक अवधारणाएँ हैं जो किसी देश की समृद्धि और विकास को मापने में मदद करती हैं। राष्ट्रीय आय वह कुल मौद्रिक मूल्य है जो किसी देश में एक निश्चित समयावधि (आमतौर पर एक वर्ष) में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का होता है। इसे आमतौर पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP) या सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) के रूप में मापा जाता है। यह किसी देश की आर्थिक स्थिति और विकास दर को दर्शाता है।

दूसरी ओर, आर्थिक कल्याण का उद्देश्य समाज के सभी वर्गों की भलाई और जीवन स्तर में सुधार करना है। इसमें न केवल आर्थिक समृद्धि बल्कि स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, और सामाजिक सुरक्षा जैसी सेवाओं का भी ध्यान रखा जाता है। जबकि उच्च राष्ट्रीय आय एक देश की समृद्धि को दिखाती है, यह जरूरी नहीं कि इसका मतलब समाज के हर वर्ग के जीवन स्तर में समान सुधार हो। इसलिए, राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि आर्थिक विकास का लाभ सभी लोगों तक पहुंचे और समाज में समानता और समृद्धि का स्तर बढ़े।

7.8 *मुख्य शब्द*

1. **राष्ट्रीय आय (National Income)**: एक देश में एक निश्चित समयावधि में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मौद्रिक मूल्य। यह देश की समग्र आर्थिक गतिविधियों का माप है।

2. **सकल घरेलू उत्पाद (GDP)**: किसी देश के भीतर एक वर्ष के दौरान उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य। यह आर्थिक विकास और उत्पादन को मापने का प्रमुख तरीका है।

3. **सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)**: यह GDP का विस्तार है, जो देश के भीतर और बाहर दोनों जगहों पर उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य जोड़ता है। इसमें विदेशी आय भी शामिल होती है।

4. **प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)**: किसी देश की कुल राष्ट्रीय आय को देश की जनसंख्या से विभाजित करके प्राप्त होने वाली औसत आय। यह जीवन स्तर का मापदंड है।

5. **आर्थिक कल्याण (Economic Welfare)**: समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन स्तर और भलाई में सुधार। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, और सामाजिक सुरक्षा शामिल होती है।

6. **विकास (Development)**: एक निरंतर प्रक्रिया जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलाव होते हैं, जिससे देश के नागरिकों की भलाई में सुधार आता है।

7. **समानता (Equality)**: संसाधनों और आय का समान वितरण, ताकि समाज में गरीबी कम हो और सभी वर्गों को समान अवसर मिलें।

8. **बेरोजगारी (Unemployment)**: एक स्थिति जब लोग काम करने योग्य होते हुए भी नौकरी नहीं पा पाते, जो आर्थिक कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

9. **सतत विकास (Sustainable Development)**: विकास की ऐसी प्रक्रिया जो वर्तमान जरूरतों को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी संसाधनों की सुरक्षा सुनिश्चित करती है।

10.**महंगाई (Inflation)**: कीमतों में निरंतर वृद्धि, जो राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण को प्रभावित करती है।

7.9 *स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर*

उत्तर 1: राष्ट्रीय आय एक देश में एक निश्चित समयावधि (आमतौर पर एक वर्ष) में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मौद्रिक मूल्य है। इसे मापने के प्रमुख तरीके निम्नलिखित हैं:

- **सकल घरेलू उत्पाद (GDP)**: किसी देश के भीतर एक वर्ष में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य।
- **सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)**: GDP के साथ-साथ विदेशों से प्राप्त आय और विदेशी निवेश को जोड़कर मापा जाता है।
- **नेट राष्ट्रीय उत्पाद (NNP)**: GNP से पूंजी और संसाधनों के क्षरण (Depreciation) को घटाकर प्राप्त किया जाता है।
-

उत्तर 2: आर्थिक कल्याण समाज के सभी वर्गों के जीवन स्तर में सुधार लाने और उनकी भलाई को बढ़ाने से संबंधित है। यह केवल आर्थिक समृद्धि को नहीं, बल्कि स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, और सामाजिक सुरक्षा जैसी सेवाओं को भी शामिल करता है। आर्थिक कल्याण के प्रमुख तत्व हैं:

- **स्वास्थ्य सेवाएँ**: बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करना ताकि जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो।
- **शिक्षा**: शिक्षा के स्तर को बढ़ाना और सभी वर्गों को समान अवसर देना।
- **सामाजिक सुरक्षा**: गरीब और असहाय वर्गों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ लागू करना।
- **रोजगार अवसर**: बेरोजगारी को कम करना और रोजगार सृजन करना।

उत्तर 3: राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण दोनों का उद्देश्य देश की समृद्धि को बढ़ाना है, लेकिन इनमें अंतर है। राष्ट्रीय आय केवल आर्थिक उत्पादन और आय का माप है, जबकि आर्थिक कल्याण समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन स्तर में सुधार लाने से संबंधित है। उच्च राष्ट्रीय आय का मतलब यह नहीं कि सभी वर्गों का जीवन स्तर समान रूप से

बेहतर हो, लेकिन आर्थिक कल्याण यह सुनिश्चित करता है कि समग्र रूप से सभी वर्गों की भलाई हो।

उत्तर 4: सतत विकास यह सुनिश्चित करता है कि वर्तमान पीढ़ी अपनी जरूरतें पूरी कर सके, जबकि भविष्य की पीढ़ियों के लिए संसाधनों की सुरक्षा भी हो। यह राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है, क्योंकि यह आर्थिक विकास

के साथ-साथ पर्यावरण और सामाजिक कल्याण का भी ध्यान रखता है। सतत विकास से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है और जीवन स्तर में सुधार आता है, जिससे आर्थिक कल्याण बढ़ता है।

7,10 *संदर्भ सूची*

- शर्मा, ए. (2018). *भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और विकास.* दिल्ली: राउटलेज।
- रॉय, आर. (2021). *राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण: सिद्धांत और व्यवहार.* मुम्बई: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- सिंह, बी. (2019). *भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्लेषण: समकालीन दृष्टिकोण.* नई दिल्ली: वी.आर.एस. पब्लिशर्स।
- पांडे, के. (2022). *आर्थिक विकास और कल्याण: भारतीय संदर्भ.* कोलकाता: पेंगुइन बुक्स।
- कुमारी, श. (2023). *भारतीय अर्थव्यवस्था में रोजगार और सामाजिक समानता.* पटना: एसबीसी पब्लिकेशन।
- सिंह, जो. (2020). *भारत की विकास नीति: आर्थिक दृष्टिकोण.* जयपुर: पब्लिशिंग हाउस।

7.11 *अभ्यास प्रश्न*

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक कल्याण क्या है? क्या आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का सूचक है। सतर्क उत्तर दीजिए।

What is Economic Welfare? Is Economic welfare a barometer of total Welfare?

2. "राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण" पर निबन्ध लिखिए।

Write an essay on "National Income & Economic Welfare".

3. राष्ट्रीय आय के परिमाण में परिवर्तन होने पर आर्थिक कल्याण पर क्या प्रभाव पड़ता है? व्याख्या कीजिये ।

What are the effects on Economic Welfare due to changes in National Income? Discuss.

4. राष्ट्रीय आय के आकार एवं वितरण में परिवर्तन का आर्थिक कल्याण पर पड़ने वाले प्रभावों को समझाइये ।

Discuss how the changes in the size and pattern of distribution of National Income effects economic welfare.

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

(5) राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक कल्याण में सम्बन्ध बताइये ।

(6) आर्थिक और अनार्थिक कल्याण में क्या अन्तर है?

(7) आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का सूचक है। समझाइये

(8) "गरीबों की आय बढ़ाने के लिए धन का हस्तान्तरण आवश्यक है।" समझाइये ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण में सम्बन्ध

(अ) धनात्मक

(ब) ऋणात्मक

(स) गुणात्मक

(द) उपर्युक्त सभी

(2) कल्याणवादी अर्थशास्त्र के जनक है-

(अ) एडम स्मिथ (ब) कार्ल मार्क्स (स) पीगू

(द) महात्मा गांधी

(3) राष्ट्रीय आय बढ़ने पर लोगों की रुचियों में परिवर्तन होना चाहिए। (

(अ) शराब पीने की

(ब) अच्छी पुस्तकें पढ़ने की

(स) कहानियाँ सुनाने की,

(द) चुपचाप बैठने की।

उत्तर-, (1) (अ), (2) (स), (3) (ब)

इकाई -8
रोजगार का प्रतिष्ठित सिद्धान्त
(Classical Theory of Employment)

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 रोजगार का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

8.4 से' का बाजार नियम

8.5 पीगू का दृष्टिकोण

8.6 प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचना

8.7 सार संक्षेप

8.8 मुख्य शब्द

8.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

8.10 संदर्भ सूची

8.11 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

क्लासिकल रोजगार सिद्धांत एक महत्वपूर्ण आर्थिक सिद्धांत है जो 18वीं और 19वीं शताब्दी में विकसित हुआ। इस सिद्धांत को मुख्य रूप से ऐडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो, और जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किया गया। क्लासिकल सिद्धांत का मुख्य विचार यह था कि एक अर्थव्यवस्था में रोजगार स्वचालित रूप से पूर्ण रोजगार के स्तर तक पहुंच जाएगा, यदि बाजार में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो।

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार, अगर कोई बेरोजगारी है, तो वह अस्थायी होती है और इसे बाजार की स्वचालित प्रक्रियाएँ हल कर लेंगी। इस सिद्धांत के अनुसार, श्रम, पूंजी और अन्य संसाधन स्वतंत्र रूप से संचालित होते हैं, और उनका स्वाभाविक रूप से उपयोग होता है।

क्लासिकल रोजगार सिद्धांत का यह भी मानना था कि वास्तविक वेतन दर, पूंजी और श्रम के बीच संतुलन बनाए रखता है, जिससे पूर्ण रोजगार सुनिश्चित होता है। इसके

अलावा, इस सिद्धांत के अनुसार, यदि किसी देश में मजदूरी दर घटती है, तो बेरोजगारी घटने और रोजगार बढ़ने की संभावना होती है।

क्लासिकल सिद्धांत के विपरीत, बाद में कीनियन सिद्धांत ने यह तर्क दिया कि सरकार को अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप करना चाहिए, ताकि बेरोजगारी और आर्थिक असंतुलन को कम किया जा सके।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. रोजगार सृजन की प्रक्रिया और इसकी महत्ता को समझ सकेंगे।
4. आर्थिक विकास के साथ रोजगार की स्थिति में सुधार के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
5. समाज में बेरोजगारी के कारणों को समझ कर इसके समाधान की दिशा में विचार कर सकेंगे।
6. श्रम बाजार की संरचना और उसमें रोजगार सृजन के प्रभावों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
7. रोजगार और सामाजिक न्याय के बीच संतुलन बनाने के उपायों को पहचान सकेंगे।
8. आधुनिक रोजगार नीतियों और उनकी कार्यक्षमता का विश्लेषण कर सकेंगे।
9. सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में रोजगार सृजन के संभावनाओं का आकलन कर सकेंगे।

8.3 रोजगार का प्रतिष्ठित सिद्धान्त

रोजगार सिद्धान्त किसी भी अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार के निर्धारिक तत्वों का विश्लेषण करता है। कुल रोजगार के निर्धारिक तत्व ही देश की राष्ट्रीय आय का स्तर एवं उत्पादन की मात्रा को निर्धारित करते है। संक्षेप में किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में रोजगार के स्तर में होने वाले परिवर्तनों का महत्वपूर्ण स्थान है।

रोजगार सिद्धान्त प्रस्तुत करने का **श्रेय लार्ड जे. एम. कीन्स** को है, जिन्होंने सन् 1936 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **"General Theory of Employment, Interest & Money**" में रोजगार का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। इससे पूर्व प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने भी रोजगार का सिद्धान्त दिया था। किन्तु कीन्स का सिद्धान्त प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों से सर्वथा भिन्न है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र के सिद्धान्त एक विशेष स्थिति पर लागू

होते हैं जबकि कीन्स का सिद्धान्त सामान्य स्थिति से सम्बन्धित है। प्रतिष्ठित सिद्धान्त में **जे. एस. मिल, मार्शल, पीगू, प्रो. जे.बी. से** का नाम महत्वपूर्ण है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा पूर्ण रोजगार को एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की सामान्य स्थिति माना गया था। उनका मत था कि पूर्ण प्रतियोगिता में बेरोजगारी एक अस्थायी तथा असाधारण तत्व होता है जो कुछ समय बाद स्वयं ही समाप्त हो जाता है। अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार स्थापित होने कि स्थिति उत्पन्न हो जाती है जबकि सरकार निजी उत्पादकों या श्रम संघों द्वारा आर्थिक शक्तियों के निर्बाध ढंग से कार्य करने में किसी भी प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न न करें। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने रोजगार के उपलब्ध साधनों का तो अध्ययन किया, परन्तु इस ओर बहुत कम ध्यान दिया कि उपलब्ध साधनों का वास्तविक उपभोग अथवा रोजगार कैसे निर्धारित होता है।

प्रतिष्ठित सिद्धान्त बिना मुद्रा स्फीति के पूर्ण रोजगार की विद्यमानता मानता है। अर्थव्यवस्था में आर्थिक पद्धति में ऐसी स्वचालित शक्तियाँ होती है जो पूर्ण रोजगार प्राप्त करने में सहायक है। अतः पूर्ण रोजगार को एक सामान्य स्थिति माना जाता है और इस स्तर से बिखराव को एक असामान्य स्थिति माना है जो कि स्वतः ही पूर्ण रोजगार की ओर ले जाता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने रोजगार सम्बन्धी व्याख्या का आधार प्रो. जे.बी. से के बाजार नियम को बनाया है।

मान्यताएँ

(Assumptions)

रोजगार का प्रतिष्ठित सिद्धान्त निम्न मान्यताओं पर आधारित है :-

(1) अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति के बिना ही पूर्ण रोजगार विद्यमान रहता है।

(2) श्रम व उत्पाद बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति विद्यमान रहती है।

(3) अर्थव्यवस्था का सम्पूर्ण उत्पादन उपभोग एवं विनियोग व्यय में विभाजित किया जाता है।

(4) मजदूरी एवं मूल्य में लोच पायी जाती है।

(5) अल्पकाल में पूँजी स्टॉक एवं तकनीकी ज्ञान अपरिवर्तित रहता है।

(6) अर्थव्यवस्था में बिना विदेशी व्यापार के बन्द निर्बाध पूँजी अर्थव्यवस्था पायी जाती है।

(7) सभी श्रमिक समान प्रकार के हैं।

(8) मुद्रा की मात्रा दी हुई रहती है।

(9) मुद्रा मजदूरी व वास्तविक मजदूरी प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है तथा वह आनुपातिक है।

8.4 'से' का बाजार नियम

प्रतिष्ठित विचारधारा का मुख्य आधार फ्रांसीसी **अर्थशास्त्री जे.बी. से** (Jean Baptist Say -1767-1832) द्वारा प्रतिपादित बाजार का नियम है। इस नियम के अनुसार पूर्ति स्वयं अपनी माँग उत्पन्न कर लेती है क्योंकि पूर्ति उत्पादन द्वारा बढ़ जाती है व साथ में उत्पत्ति के साधनों की आय भी बढ़ जाती है, जिसके फलस्वरूप वस्तुओं की माँग भी बढ़ जाती है। अतः पूर्ति बढ़ने के साथ-साथ माँग भी बढ़ती जाती है। 'से' के अनुसार यह उत्पादन ही है जो कि वस्तुओं के लिए बाजार उत्पन्न करता है। जब सम्पूर्ण उत्पादन स्वतः ही बिक जाएँ तो अति-उत्पादन की स्थितिउत्पन्न ही नहीं हो पाती है। अतः अर्थव्यवस्था में सामान्य बेरोजगारी की दशा भी उत्पन्न नहीं हो पाती है।

'से' के नियम के अनुसार उपभोग उत्पादन के साथ- साथ चलता जाता है या उत्पादन की माँग का एक मात्र कारण माना जाता है। उत्पत्ति के साधनों को अपने द्वारा उत्पादित माल बेचने पर उन्हें मौद्रिक आय प्राप्त होती है और उससे उनकी क्रय-शक्ति बढ़ जाती है। उत्पादित मूल्य के बराबर ही आय उत्पन्न होती है और इस आय की सहायता से ही बाजार से अन्य माल भी खरीदा जा सकता है। प्रत्येक माल जो बाजार में लाया जाए, वह अन्य वस्तुओं के लिए माँग उत्पन्न करता है। 'से' के अनुसार यदि कार्य दुःखदायी हो, तो कोई भी व्यक्ति माल का उत्पादन नहीं करेगा जब तक कि वह इस माल को उस माल से विनिमय करने को तैयार न हो हो जिसे वह चाहता हो।

अतः माल की पूर्ति में ही उसकी माँग निहित रहती है। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था में अति उत्पादन की स्थिति उत्पन्न नहीं हो पाती है क्योंकि पूर्ति सदैव माँग तक ही सीमित हो जाती है। कोई विशिष्ट वस्तु का अति उत्पादन सम्भव हो सकता है, क्योंकि कभी-कभी उत्पादक माँग का सही अनुमान नहीं लगा पाते हैं। परन्तु यह एक अस्थायी स्थिति होती है और बाद में उत्पादन में कमी करके इसे समायोजित किया जा सकता है। जे. एस. मिल का मत है कि, "उपभोग उत्पादन के साथ रहता है तथा उत्पादन ही माँग का मूल कारण रहता है। बिना माँग के कभी भी पूर्ति नहीं की जाती है। माँग की तुलना में उत्पादन कभी भी अधिक नहीं होता है। अतः पूर्ति स्वयं अपनी माँग उत्पादित करती है, जिससे सामान्य उत्पादन का आधिक्य नहीं होता और वहाँ सामान्य बेरोजगारी नहीं हो पाती है।

'से' के नियम के अनुसार, "माँग का मुख्य स्रोत घटक आय का प्रवाह है, जो कि उत्पादन कि प्रक्रिया से स्वयं ही उत्पन्न होता है। जब उत्पादक विभिन्न इनपुट का प्रयोग उत्पादन कार्यों में करता है, तो वह आवश्यक आय उपार्जित करता है तथा घटकों को किराया, मजदूरी व व्याज आदि के रूप में भुगतान करता है। इससे पुनः माँग का सृजन हो जाता है। अतः पूर्ति स्वयं अपनी माँग का सृजन करती है। यह इस मान्यता पर

आधारित है कि उत्पादन के घटकों द्वारा अर्जित आय को वस्तुओं के क्रय में व्यय कर दिया जाता है।"

जो धन व्यय नहीं किया जाता उसे बचा लिया जाता है और उसे विनियोजित कर दिया जाता है। यदि इसमें अन्तर हों, तो ब्याज दर की सहायता से समानता लाने के प्रयास किए जाते हैं। प्रतिष्ठित विचारधारा के अनुसार ब्याज, बचत का एक पारितोषक है। यदि ब्याज दर ऊँची है, तो बचत की मात्रा भी अधिक रहेगी। यदि विनियोग बचत से अधिक है, तो ब्याज की दर में वृद्धि होगी। इससे बचत बढ़ेगी और विनियोग कम हो जाएँगे और पूर्ण रोजगार पर यह दोनों बराबर हो जाते हैं। अतः ब्याज दर बढ़ने पर बचत बढ़ जाती है तथा विनियोग की मात्रा में समानता स्थापित हो जाती है।

बचत एवं विनियोग में समानता सम्बन्धी व्यवस्था को **चित्र 1** से स्पष्ट किया जा सकता है: -

चित्र में दोनों वक्र है बिन्दु पर मिलते हैं और ब्याज की दर OR है जहाँ OA बचत व विनियोग दोनों बराबर है। यदि विनियोग बढ़कर I'T' हो जाए तो ब्याज दर बढ़कर OR, हो जाती है तथा विनियोगOA से बढ़कर OB हो जाता है। नया साम्य E, पर होता है जहाँ बचत व विनियोग दोनों वक्र मिलते हैं यह नया साम्य है। जहाँ बचत और विनियोग बराबर है।

मौद्रिक अर्थव्यवस्था में 'से' का नियम मुद्रा के प्रतिष्ठित सिद्धान्त पर निर्भर है, जिसमें बताया गया है कि मूल्य स्तर मुद्रा की पूर्ति का एक कार्य है। सूत्र रूप में- MV=PT

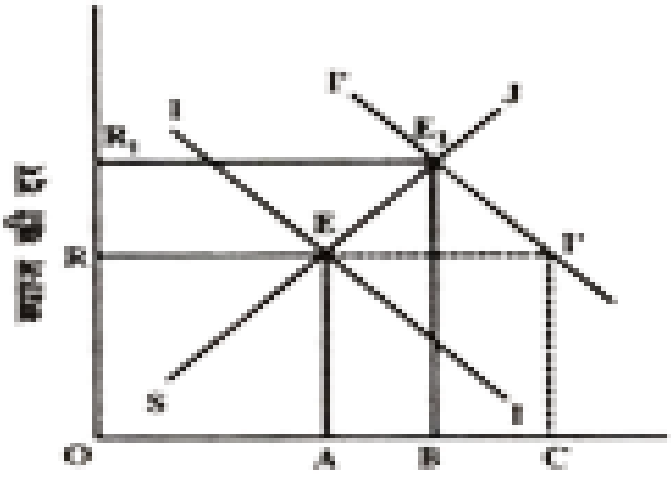

बचत व विनियोग

रेखाचित्र - 1

यहाँ पर M मुद्रा की पूर्ति, मुद्रा की गति, P = मूल्य स्तर एवं T = व्यवहार की मात्रा। सूत्र के अनुसार कुल मुद्रा की पूर्ति (MV) अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन (PT) के बराबर होती है। मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन आने से मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन आ जाता है। यह मान लिया गया है कि मुद्रा ही विनिमय का माध्यम है। इसे रेखा चित्र-2 द्वारा दिखाया जा सकता है।

चित्र-2 में यह दर्शाया गया है कि उत्पादन स्थिर रहने की दशा में मुद्रा की मात्रा में होने वाली वृद्धि से मूल्य स्तर बढ़ता है। चित्र में QQ उत्पादन की मात्रा है तथा मुद्रा की पूर्ति रेखा। मुद्रा की मात्रा में M' वृद्धि होने पर मूल्य स्तर भी OP से बढ़कर OP' हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मुद्रा की पूर्ति एवं मूल्य स्तर में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

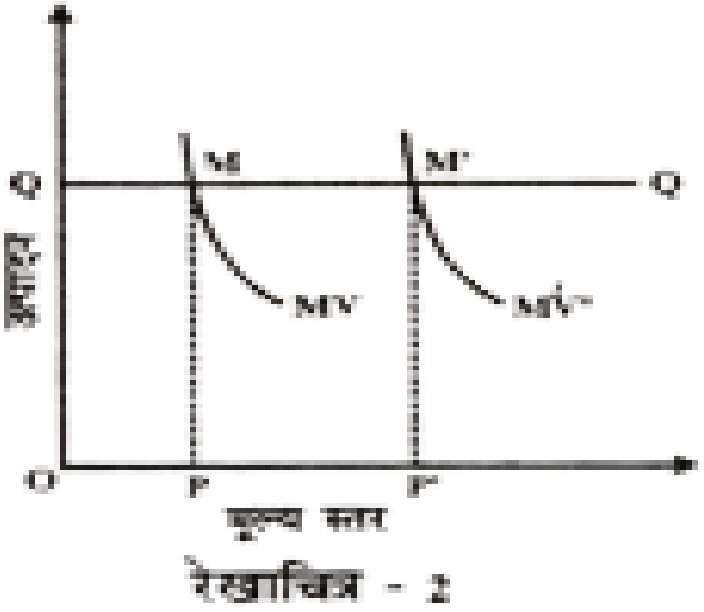

रेखाचित्र - 2

प्रश्न 1: क्लासिकल रोजगार सिद्धांत क्या है?

8.5 पीगू का दृष्टिकोण

पीगू ने 'से' के नियम को श्रम बाजार के रूप में प्रतिपादित किया है। पीगू के अनुसार, स्वतंत्र प्रतियोगिता में आर्थिक पद्धति की प्रवृत्ति श्रम बाजार में पूर्ण रोजगार प्रदान करने की होती है। स्वतंत्र बाजार की कार्यप्रणाली से ही बेरोजगार की स्थिति उदय हो जाती है। यदि समस्त सरकारी प्रयास हटा दिए जाएँ तथा प्रतियोगिता की शक्तियाँ कार्यरत रहें, तो मजदूरी दर पर पूर्ण रोजगार प्राप्त किया जा सकता है। पूर्ण प्रतियोगिता में, कार्य के दौरान मजदूरी दरों में एक प्रवृत्ति होगी कि माँग से सम्बन्ध स्थापित करते हुए प्रत्येक को रोजगार प्राप्त हो। इसे निम्न सूत्र से समझाया जा सकता है –

$$N = qy/w$$

N = श्रमिकों की संख्य
q = मजदूरी व वेतन के रूप में अर्जित आय का भाग
y = राष्ट्रीय आय
w = मुद्रा मजदूरी दर

मुद्रा मजदूरी दर में (w) में कमी करके श्रमिकों की संख्या (N) में वृद्धि की जा सकती है। अतः मजदूरी में कमी करके पूर्ण रोजगार को प्राप्त किया जा सकता है। इसे निम्न चित्र 3 से दिखाया जा सकता है-

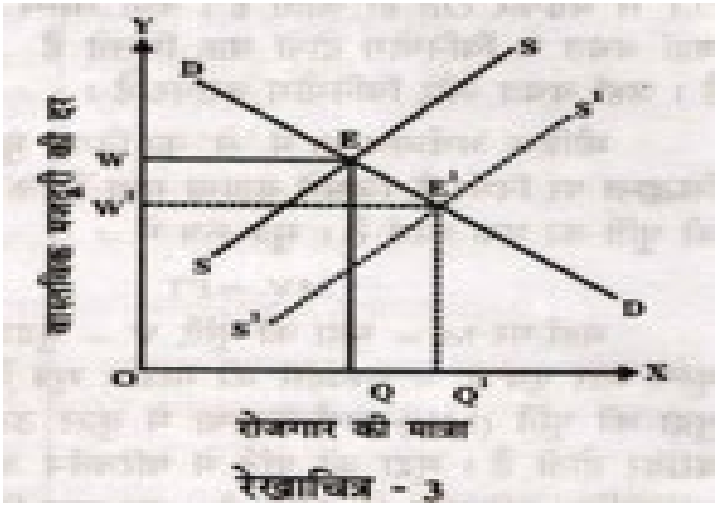

रेखाचित्र - 3

रेखाचित्र-3 में DD श्रम की माँग रेखा एवं SS श्रम की पूर्ति रेखा है। साम्य बिन्दु है जहाँ श्रम की माँग पूर्ति बराबर है और इस साम्य पर OW मजदूरी की दर पर OQ रोजगार प्राप्त होता है। मान लें कि बेरोजगारी के कारण श्रम की पूर्ति रेखा ss से बढ़कर s's' हो जाती है। इस स्थिति में पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करने के लिये नया साम्य E' पर होता है जहाँ श्रम की माँग (DD) एवं श्रम की नई पूर्ति (s's') बराबर है। इस नये साग्य पर OW मजदूरी, जो कि OW से कम है, पर OQ' रोजगार उपलब्ध होता है।

इस प्रकार **चित्र-**3 से यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ण रोजगार के लिये मजदूरी की दर को कम करना होता है। चित्र में ww मजदूरी की दर को कम करने से QQ' रोजगार की मात्रा में वृद्धि होती है। संक्षेप में, मजदूरी दरों में कमी करने पर ही पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है।

पीगू ने 'से' के नियम को श्रम बाजार पर लागू किया है। पूर्ण प्रतियोगिता में अर्थव्यवस्था की प्रवृत्ति श्रम बाजार में पूर्ण रोजगार लाने की होती है। अर्थव्यवस्था में मजदूरी दरें एक ऐसे स्तर पर आकर स्थिर हो जाती हैं जहाँ समस्त श्रमिकों को रोजगार मिल जाता है। माँग की दशाओं में परिवर्तन या श्रम बाजार की अपूर्णता के कारण कुछ

समय तक बेरोजगारी दिखायी देती है। यह सभी प्रकार की बेरोजगारी अस्थायी बेरोजगारी

होती है। श्रम बाजार में स्वतः ही समायोजन होता रहता है और इसके लिए केवल मजदूरी दरों में परिवर्तन लाना होता है।

पीगू द्वारा दी गयी व्याख्या में रोजगार बढ़ाने के चार उपाय बताए गए है: -

(1) संगठन में सुधार किया जाना चाहिए जिससे अस्थायी बेरोजगारी कम की जा सके।

(2) मजदूरी पदार्थों से सम्बन्धित उद्योगों में श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पादकता में वृद्धि की जाएँ।

(3) गैर-मजदूरी पदार्थों की कीमत में वृद्धि की जाएँ तथा उन पर व्यय किया जाने लगे।

(4) श्रम की सीमान्त अनुपयोगिता को कम किया जाएँ।

यह व्याख्या दो मूल तत्वों पर आधारित है जो कि निम्न प्रकार से है: -

(i) मजदूरी श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है, तथा

(ii) मजदूरों को प्राप्त होने वाली मजदूरी की उपयोगिता रोजगार की सीमान्त उपयोगिता के बराबर होते हैं।

इस प्रकार रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धान्त को तीन रूपों में रखा जा सकता है :-

(1) श्रम के रूप में,

(2) कुल उत्पादन व माल के रूप में,

(3) मुद्रा बाजार के रूप में।

(1) श्रम के रूप में - अर्थव्यवस्था में श्रम की माँग एवं श्रम की पूर्ति द्वारा रोजगार का स्तर निर्धारित किया जाता है। माँग व पूर्ति का वक्र जहाँ मिलते हों, वहाँ पर मजदूरी दर व पूर्ण रोजगार का स्तर निश्चित हो जाता है।

(2) कुल उत्पादन व माल के रूप - देश का कुल उत्पादन, दिए गए पूँजीगत स्टॉक एवं तकनीकी ज्ञान के आधार पर रोजगार के स्तर को निर्धारित करता है। ब्याज की दर के द्वारा ही बचत एवं विनियोग में साम्य स्थापित हो पाता है जिससे पूर्ण रोजगार स्तर पर माँगी गयी वस्तुएँ पूर्ति के बराबर हो सकें।

(3) मुद्रा बाजार के रूप में - मुद्रा बाजार में साम्य को सूत्र MV = PT के द्वारा दर्शाया गया है। इसमें मूल्य स्तर द्वारा उत्पादन का पूर्ण रोजगार स्तर को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

प्रश्न 2: क्लासिकल सिद्धांत में बेरोजगारी को कैसे समाप्त किया जाता है?

प्रश्न 3: क्लासिकल सिद्धांत और कीनियन सिद्धांत में क्या अंतर है?

8.6 प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचना

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की व्याख्या का आधार 'से' का रोजगार सिद्धान्त है जिसकी आलोचना निम्न दो दृष्टिकोणों से की जा सकती है: -

(1) वस्तुओं के दृष्टिकोण से, तथा
(2) रोजगार या श्रमिकों के दृष्टिकोण से।प्राण चन

(1) वस्तुओं के दृष्टिकोण से - नियम में यह माना गया है कि प्रत्येक पूर्ति अपनी माँग का स्वयं ही सृजन करती है। परन्तु यह धारणा अवास्तविक मान्यता पर आधारित है कि व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण आय को वस्तुओं की खरीद पर व्यय कर लेते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि आय के एक भाग को भविष्य के लिए बचाकर रख लिया जाता है जिससे वस्तुओं की वर्तमान प्रभावशाली माँग में उतनी ही कमी हो जाती है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विचार था कि यह बचत विनियोग कर दी जाती है। बचत बढ़ने पर ब्याज दर गिर जाती है। परन्तु आलोचकों का मत है कि विनियोग की मात्रा ब्याज दरों की अपेक्षा व्यापार की दशा तथा लाभ की आशंसा पर निर्भर करती है। दूसरी आलोचना यह है कि आंशिक सन्तुलन के विश्लेषण को सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर लागू कर दिया गया है।

(2) श्रमिकों के दृष्टिकोण - सिद्धान्त में यह माना गया है कि श्रम की पूर्ति स्वतः ही श्रम की माँग से समायोजित हो जाती है। अतः सामान्य बेरोजगारी नहीं हो सकती। यदि बेरोजगारी है तो वह अस्थायी रहती है और मजदूरी दर गिरने पर सभी को रोजगार मिल जाता है। परन्तु व्यवहार में यह मान्यता गलत है। अर्द्धविकसित देशों में जहाँ मजदूरी दरें बहुत नीची है, परन्तु फिर भी वहाँ पर बेरोजगारी बहुत अधिक है।

कीन्स द्वारा प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचना
(Keynes's Criticism of Classical Theory)

कीन्स ने प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचना इसकी अवास्तविक मान्यताओं के आधार पर की है। कीन्स द्वारा की गयी आलोचनाएँ निम्न प्रकार हैं: -

(1) 'से' का नियम स्वीकार नहीं - किया पूर्ति स्वतः ही अपनी माँग उत्पन्न कर लेती है यह धारणा गलत है। समाज में धन के वितरण की असमानताओं के कारण एक वर्ग ऐसा रहता है जिसकी आय उसकी आवश्यकता से अधिक रहती है जिससे कुल माँग, कुल पूर्ति के बराबर नहीं होती हैं और अति उत्पादन तथा बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कीन्स ने यह बात अस्वीकृत कर दी कि अर्थव्यवस्था में पूर्ति एवं माँग में स्वतः ही समायोजन हो जाता है।

(2) पूर्ण-रोजगार सन्तुलन की मान्यता अवास्तविक: - प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने पूर्ण रोजगार के स्तर पर अर्थव्यवस्था में सन्तुलन को विश्लेषण का आधार माना जिसे कीन्स ने स्वीकार नहीं किया और न्यून रोजगार सन्तुलन को वास्तविक स्थिति बतलाया ।

(3) पूर्ण प्रतियोगिता एक अवास्तविक स्थिति: - पीगू द्वारा पूर्ण प्रतियोगिता प्रणाली को रोजगार वृद्धि का एक मात्र साधन बताना पूँजीवादी प्रणाली की समस्याओं के प्रति एक अव्यावहारिक दृष्टिकोण माना गया।

पीगू ने श्रम संघ व राज्य हस्तक्षेप का विरोध किया था, जबकि कीन्स ने इसे अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग माना।

(4) बचत व विनियोग की व्याख्या भ्रामक है: - प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की यह विचारधारा कि ब्याज दरें बचत व विनियोग में सन्तुलन स्थापित करती हैं, सही नहीं है। चूँकि विनियोग की मात्रा केवल ब्याज दर पर ही नहीं, बल्कि लाभ की आशंसाओं या पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता पर निर्भर करती हैं। बचत के कारण आय-व्यय की धारा में बाधा उत्पन्न होती है। माँग में कमी होकर उत्पादन में कमी की जाती है जो बेरोजगारी की समस्या को जन्म देती है जबकि 'से' के नियम के अनुसार यह बेरोजगारी आ ही नहीं सकती है। अतः प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धान्त भ्रामक है।

(5) पीगू की व्याख्या गलत - पीगू का मत था कि मजदूरी में कटौती स्वीकार करने पर बेरोजगारी की समस्या समाप्त हो जाएगी जिसे कीन्स ने सही नहीं माना। कीन्स का मत है कि मन्दीकाल में मजदूरी की लोच रोजगार में वृद्धि करने का साधन नहीं बन सकती है। पीगू की विचारधारा सैद्धान्तिक व व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोणों से उचित नहीं है। कीन्स ने न तो मजदूरी कटौती का समर्थन किया और न ही मजदूरी वृद्धि का सुझाव दिया है। रोजगारों के स्तर के निर्धारण का आधार मजदूरी दर को नहीं माना गया बल्कि प्रभावपूर्ण माँग को आधार माना गया है।

(6) पूर्ण रोजगार की प्रतिष्ठित मान्यता भ्रमपूर्ण - कीन्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की पूर्ण रोजगार सम्बन्धी मान्यता को गलत बताया। उसने पूर्ण रोजगार को एक विशेष स्थिति में माना। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में अर्द्धबेरोजगारी पायी जाती है क्योंकि पूँजीवादी समाज 'से' के नियम के अनुसार कार्य नहीं कर पाता और पूर्ति सदैव माँग से अधिक रहती है। अनेक श्रमिक प्रचलित मजदूरी दर या इससे कम पर भी कार्य करने को तैयार रहते हैं, परन्तु फिर भी उन्हें कार्य नहीं मिलता। अतः इस अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार होना एक असामान्य स्थिति मानी जाती है। यह मान्यता व्यावहारिक नहीं है।

(7) स्वतंत्र व्यापार की नीति भ्रमात्मक - कीन्स के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की स्वतंत्र व्यापार की नीति जो पूर्ण रोजगार के लिए आवश्यक मानी गयी थी, सही नहीं माना। कीन्स का मत था कि पूँजीवादी व्यवस्था स्वचालित एवं स्वतः समायोजित होने वाली है।

धनी वर्ग के पास अधिक धन रहता है, जिसे वह सम्पूर्ण रूप से उपभोग पर व्यय नहीं कर पाते हैं। इसके विपरीत गरीबों के पास इतना धन नहीं होता कि वह समस्त उपभोग की वस्तुएँ क्रय कर सकें। अतः समाज में कुल पूर्ति की तुलना में कुल माँग में कमी रहती है, जिससे अति उत्पादन एवं बेरोजगारी बढ़ जाती है। इससे मन्दी आ जाती है जो कि स्वचालित अर्थव्यवस्था में सम्भव नहीं थी। अतः कीन्स ने प्रशुल्क व मौद्रिक नीति की सहायता से पूर्ति व माँग को समायोजित करने हेतु राज्य के हस्तक्षेप को उचित माना।

(8) मुद्रा की माँग की आलोचना - प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा का प्रयोग व्यवहार करने एवं सावधानी के लिए माना और उसने उसकी उपयोगिता सट्टे के कार्यों हेतु नहीं मानी, परन्तु कीन्स ने इसकी आलोचना की। कीन्स ने मुद्रा का सट्टे के कार्यों हेतु महत्व समझा। अतः ब्याज की दरें एक न्यूनतम स्तर से नीचे नहीं गिर सकेंगी और मुद्रा की सट्टे के कार्यों हेतु माँग पूर्ण ब्याज लोचपूर्ण रहेगी। कीन्स का मत था कि यदि ब्याज की दर शून्य भी हो जाए, तो भी विनियोग की तुलना में बचत अधिक रहेगी, परन्तु यह एक अव्यावहारिक स्थिति है।

(9) मुद्रा को अप्रभावी मानना गलत है - प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा को निष्क्रिय माना है और इसी कारण से उन्होंने उत्पादन, रोजगार व ब्याज की दर को मौद्रिक सिद्धान्त से भिन्न माना। उनके अनुसार उत्पादन का स्तर और रोजगार तथा ब्याज की साम्यदर का निर्धारण वास्तविक शक्तियों के आधार पर होता है। परन्तु कीन्स ने इसकी आलोचना करते हुए बताया कि मौद्रिक सिद्धान्त मूल्य सिद्धान्त से पृथक रहता है। मुद्रा की मात्रा एवं मूल्य स्तर व व्याज दर में एक सम्बन्ध स्थापित किया गया। जब मुद्रा की मात्रा बढ़ती है, तो ब्याज की दर गिर जाती है, विनियोग बढ़ते हैं तथा आय व उत्पादन बढ़ जाते हैं जिससे माँग, मजदूरी, मूल्य व सामान्य मूल्य स्तर बढ़ जाता है।

(10) मुद्रा मजदूरी व वास्तविक मजदूरी में सीधा सम्बन्ध नहीं - कीन्स ने प्रतिष्ठित अर्थशात्रियों के इस विचार को नहीं माना कि मुद्रा, मजदूरी व वास्तविक मजदूरी में सीधा आनुपातिक सम्बन्ध है। इसके विपरीत इनमें प्रतिकूल सम्बन्ध पाया जाता है। जब मुद्रा मजदूरी गिरती है तो वास्तविक मजदूरी बढ़ती है और इसके विपरीत प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मत था कि वास्तविक मजदूरी में कमी से रोजगार में वृद्धि होगी। कीन्स का मत था कि मौद्रिक व प्रशुल्क उपायों द्वारा रोजगार में वृद्धि सम्भव हो सकती है।

(11) मजदूरी में कमी से पूर्ण रोजगार प्राप्त होना गलत बताया - कीन्स ने पीगू की इस विचारधारा का खण्डन किया कि मुद्रा मजदूरी में कमी करने पर अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार प्राप्त किया जा सकता है। मजदूरी दरों में कमी करने से एक उद्योग में रोजगार बढ़ाया जा सकता है तथा लागत में कमी होकर माँग में वृद्धि सम्भव हो सकती है। परन्तु अर्थव्यवस्था में ऐसी नीति के पालन करने से रोजगार में कमी होगी। जब

मजदूरी दरें कम होंगी, तो श्रमिकों की आय गिरेगी और कुल माँग में कमी होकर रोजगार में कमी होगीं। कीन्स सदैव मजदूरी में कमी करने का विरोधी रहा।

(12) आंशिक समायोजन से उत्पादन शक्ति के उपभोग में असफलता - कीन्स इस बात से सहमत नहीं थे कि समाज में आंशिक गैर समायोजन से उत्पादन शक्ति के पूर्ण उपभोग में असफलता आ जाती है। अतः राज्य हस्तक्षेप को आवश्यक माना गया। राज्य द्वारा विनियोग करके आर्थिक क्रिया के स्तर में वृद्धि की जा सकती है। राज्य आवश्यक अधिनियम पारित करके श्रमिकों को आवश्यक सुविधाएँ प्रदान कर सकता है। अतः कीन्स ने देश में पूर्ण रोजगार प्राप्त करने हेतु राज्य के हस्तक्षेप को आवश्यक माना ।

(13) दीर्घकाल में पूर्ण रोजगार साम्य को गलत माना - कीन्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के दीर्घकाल में पूर्ण रोजगार साम्य के दृष्टिकोण को गलत माना। कीन्स ने बताया कि दीर्घकाल में सभी मृत्यु को प्राप्त करेंगे और अपने विश्लेषण को अल्पकालीन माना। कीन्स ने रुचि, आदत, उत्पादन, तकनीक, श्रम की पूर्ति आदि को अल्पकाल में स्थिर माना तथा दीर्घकाल में माँग के प्रभाव को छोड़ दिया। बेरोजगारी दर करने हेतु विनियोग में वृद्धि पर जोर दिया गया।

अतः रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धान्त को अवास्तविक माना गया जो कि वर्तमान आर्थिक समस्याओं का हल करने में असमर्थ पायी गयीं।

प्रश्न 4: क्लासिकल सिद्धांत के अनुसार पूर्ण रोजगार क्यों महत्वपूर्ण है?

8.7 सार संक्षेप

क्लासिकल रोजगार सिद्धांत को 18वीं और 19वीं शताब्दी के प्रमुख अर्थशास्त्रियों जैसे ऐडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो, और जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा विकसित किया गया। इस सिद्धांत का मुख्य विचार यह था कि एक अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार स्वचालित रूप से प्राप्त होता है, बशर्ते कि बाजार में किसी प्रकार का सरकारी हस्तक्षेप न हो।

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार, जब भी बेरोजगारी होती है, तो बाजार स्वाभाविक रूप से उसे खत्म करने के लिए कार्य करता है। इसमें वेतन दर और मूल्य स्तर में लचीलापन होता है, जिससे श्रम और पूंजी का सही रूप से वितरण होता है। अगर किसी कारण से बेरोजगारी उत्पन्न होती है, तो वेतन दर घटने से इसे दूर किया जा सकता है, जिससे लोग अधिक काम करने के लिए तैयार होते हैं।

इस सिद्धांत में यह भी कहा गया कि उत्पादन और आय का स्तर स्वाभाविक रूप से संतुलित रहता है, और किसी प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती। हालांकि, बाद में कीनियन सिद्धांत ने इस विचार का विरोध किया और कहा कि सरकार को अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप करना चाहिए।

क्लासिकल रोजगार सिद्धांत ने बाजार की स्वचालित प्रक्रिया पर जोर दिया, जो आर्थिक संतुलन और पूर्ण रोजगार सुनिश्चित करती है।

8.8 मुख्य शब्द

1. **पूर्ण रोजगार** (Full Employment): यह स्थिति तब होती है जब सभी लोग, जो काम करने के योग्य हैं और काम करना चाहते हैं, रोजगार प्राप्त कर लेते हैं। क्लासिकल सिद्धांत में इसे स्वाभाविक रूप से हासिल माना गया है।
2. **स्वचालित समायोजन** (Automatic Adjustment): यह विचार है कि बाजार की ताकतें स्वाभाविक रूप से बेरोजगारी और उत्पादन के बीच संतुलन स्थापित करती हैं, बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के।
3. **मूल्य लचीलापन** (Price Flexibility): क्लासिकल सिद्धांत के अनुसार, मूल्य और वेतन में लचीलापन होता है। यदि किसी क्षेत्र में बेरोजगारी बढ़ती है, तो वेतन दर घटने से बेरोजगारी समाप्त हो जाती है।
4. **श्रम की आपूर्ति और मांग** (Labour Supply and Demand): क्लासिकल सिद्धांत के अनुसार, श्रम की आपूर्ति और मांग स्वाभाविक रूप से संतुलित होती है। जब बेरोजगारी होती है, तो मजदूरी दर कम हो जाती है, और काम करने के इच्छुक श्रमिकों की संख्या बढ़ जाती है।
5. **नियंत्रित बाजार** (Self-regulating Market): यह विचार है कि बाजार स्वाभाविक रूप से अपने आप संतुलन स्थापित कर लेता है, बिना किसी सरकारी हस्तक्षेप के।
6. **संतुलन** (Equilibrium): क्लासिकल सिद्धांत में यह माना गया कि पूरी अर्थव्यवस्था में, सभी बाजारों में संतुलन स्थापित होता है, जिससे पूर्ण रोजगार और उत्पादन सुनिश्चित होता है।
7. **सरकारी हस्तक्षेप** (Government Intervention): क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का मानना था कि सरकार को अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, क्योंकि बाजार अपनी स्वचालित प्रक्रियाओं के द्वारा असंतुलन को दूर कर सकता है।

8.9 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: क्लासिकल रोजगार सिद्धांत यह मानता है कि एक अर्थव्यवस्था स्वाभाविक रूप से पूर्ण रोजगार की स्थिति तक पहुँचती है, बशर्ते कि बाजार में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो। इस सिद्धांत के अनुसार, जब भी बेरोजगारी होती है, तो वेतन दर में

लचीलापन होता है, जिससे श्रमिकों की आपूर्ति और मांग संतुलित होती है, और बेरोजगारी स्वाभाविक रूप से समाप्त हो जाती है।

उत्तर 2: क्लासिकल सिद्धांत के अनुसार, जब बेरोजगारी होती है, तो मजदूरी दर घटने से श्रमिकों की आपूर्ति बढ़ती है। इससे उत्पादन में वृद्धि होती है और बेरोजगारी धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है। इस प्रक्रिया को स्वचालित समायोजन कहा जाता है, जिसमें बाजार की ताकतें बेरोजगारी को समाप्त कर देती हैं।

उत्तर 3: क्लासिकल सिद्धांत का मानना था कि सरकार को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, क्योंकि बाजार स्वाभाविक रूप से संतुलन स्थापित कर लेता है। इसके विपरीत, कीनियन सिद्धांत के अनुसार, सरकार को अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप करना चाहिए, खासकर जब बेरोजगारी और आर्थिक संकट होते हैं, क्योंकि बाजार स्वचालित रूप से समस्या हल नहीं कर सकता।

उत्तर 4: क्लासिकल सिद्धांत में पूर्ण रोजगार को प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि यह अर्थव्यवस्था की समग्र उत्पादकता और आर्थिक विकास को बढ़ावा देता है। पूर्ण रोजगार से संसाधनों का प्रभावी उपयोग होता है, जिससे आर्थिक विकास और सामाजिक समृद्धि सुनिश्चित होती है।

8.10 संदर्भ सूची

- कुमार, ए. (2022). भारतीय अर्थव्यवस्था में रोजगार और विकास. दिल्ली: राम प्रकाशन।
- सिंह, पी. (2021). रोजगार और सामाजिक सुरक्षा: भारतीय संदर्भ. मुंबई: राष्ट्रीय पुस्तकन्यास।
- चौधरी, आर. (2020). भारत में श्रम बाजार की संरचना और रोजगार नीति. जयपुर: विवेक प्रकाशन।
- शर्मा, एस. (2019). आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था और रोजगार सृजन. कोलकाता: प्रगति प्रकाशन।
- मिश्रा, राज. (2018). रोजगार सृजन और आर्थिक वृद्धि. दिल्ली: पेंगुइन इंडिया।

8.11 अभ्यास प्रश्न

निवन्धात्मक प्रश्न

1.रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धान्त से क्या आशय है? इसकी मान्यताओं का वर्णन कीजिए।

What is meant by classical theory of employment? Mention its assumptions.

2. 'से' का रोजगार सिद्धान्त का वर्णन कीजिए तथा इस सम्बन्ध में पीगू का दृष्टिकोण समझाइए ।

Mention the Say principle of employment and explain Pigou's attitude towards it

3.रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचनाएँ दीजिए। इस सम्बन्ध में कीन्स द्वारा दी गयी आलोचनाओं का भी वर्णन कीजिए।

Give the criticisms of classical theory of employment. Mention the criticisms given by Keynes in this respect.

4.से' का रोजगार सिद्धान्त का वर्णन कीजिए तथा कीन्स द्वारा इसे न मानने का आधार दीजिए।

Mention the classical theory of 'Say' and give the basis of criticism given by Keynes.

5.प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। किन कारणों से कीन्स ने इसकी आलोचना की है?

Explain classical theory of employment. On what grounds has it been criticised by Keynes.

6.पीगू के रोजगार सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। वर्तमान आर्थिक प्रणाली में यह कहाँ तक सही है?

Explain Pigou's theory of employment. How far does it hold good in modern economic system?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1.रोजगार के प्रतिष्ठित सिद्धान्त से क्या आशय है?

What is meant by classical theory of employment?

2. 'से' का बाजार नियम क्या है?

What is Say's Law of market?

3. पीगू के रोजगार सिद्धान्त को समझाइये ।

Explain Pigou's theory of employment?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार रोजगार में वृद्धि कैसे की जा सकती है-
(अ) मजदूरी में वृद्धि करके (ब) मजदूरी में कटौती करके
(स) प्रभावपूर्ण माँग को बढ़ाकर (द) उपर्युक्त कोई नहीं।
2. "पूर्ति स्वयं अपनी माँग उत्पन्न कर लेती है।" यह कथन किस अर्थशास्त्री का है-
(अ) जे.बी.से (ब) डेविड रिकार्डो
(स) प्रो. पीगू (द) कीन्स ।

[उत्तर- 1. (ब), 2. (अ)]

ब्लॉक - III

इकाई -9
कींस का उत्पादन एवं रोजगार सिद्धान्त
(समग्र माँग-पूर्ति फलन तथा प्रभावपूर्ण माँग)
(KEYNESIAN THEORY OF OUTPUT AND EMPLOYMENT - AGGREGATE DEMAND - SUPPLY FUNCTIONS AND EFFECTIVE DEMAND)

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 कींस के अर्थशास्त्र की विशेषताएँ

9.4 रोजगार का निर्धारण

9.5 प्रभावपूर्ण माँग

9.6 प्रभावपूर्ण माँग का महत्व

9.7 रोजगार सन्तुलन

9.8 रोजगार सन्तुलन एवं पूर्ण रोजगार

9.9 कींस का रोजगार सिद्धान्त

9.10 कींस के रोजगार सिद्धान्त की आलोचना

9.11 कींस का सिद्धान्त एवं अर्द्ध-विकसित देश

9.12 कींस के सिद्धान्त की अर्ध-विकसित देशों में सार्थकता

9.13 प्रतिष्ठित एवं कींस के रोजगार सिद्धान्त के मध्य तुलना

9.14 सार संक्षेप

9.15 मुख्य शब्द

9.16 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

9.17 संदर्भ सूची

9.18 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रो. जे. एम. कीन्स 20वीं शताब्दी के सर्वाधिक प्रभावशील एवं महान अर्थशास्त्री माने जाते हैं। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **"रोजगार, ब्याज एवं मुद्रा का सामान्य सिद्धान्त"** (General Theory of Employment, Interest and Money 1936) काफी लोकप्रिय

है। उनकी इस पुस्तक को उतनी ही लोकप्रियता प्राप्त है जितनी की एडम स्मिथ की पुस्तक **वैल्थ ऑफ नेशन्स** (Wealth of Nations**), डार्विन की पुस्तक ओरीजिन ऑफ**
स्पेसीज और काल मार्क्स की पुस्तक **'दास केपीटल'** (Das Capital) को प्राप्त है। निश्चित ही कीस के विचारों के साथ अर्थशास्त्र में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ है।

प्रो. कींस की पुस्तक सामान्य सिद्धान्त में उन तत्वों का विस्तार से विश्लेषण किया गया है जो कि किसी भी अर्थव्यवस्था के रोजगार एवं उत्पादन या आय स्तर को प्रभावित करते हैं। वस्तुतः कीस के सिद्धान्त का जन्म सन् 1930-1935 की **विश्वव्यापी महामन्दी** के कारण हुआ जिसमें विश्व के सभी देशों के समक्ष भयावह बेरोजगारी की स्थिति पैदा हो गई थी। इस मन्दीकाल की स्थिति में प्रतिष्ठित या परम्परावादी सिद्धान्त का कोई स्पष्ट हल ढूँढ़ने में पूरी तरह असफल रहा था। ऐसी परिस्थिति में **कींस ने मन्दीकाल का विस्तृत विश्लेषण किया तथा उसके उत्पन्न होने के कारण एवं उसे दूर करने के उपाय सुझाए।** प्रो. **कींस** के सामान्य सिद्धान्त को **रोजगार सिद्धान्त एवं न्यून माँग का सिद्धान्त** भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार बेरोजगारी प्रभावपूर्ण माँग की कमी के कारण उत्पन्न होती है। प्रो. कींस ने अपने रोजगार सिद्धान्त में अनेक प्रावैगिक तत्वों को सम्मिलित करके इसे व्यापक बनाया है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. समग्र माँग-पूर्ति फलन और प्रभावपूर्ण माँग के सिद्धांतों को समझ सकें।
4. कींस का उत्पादन एवं रोजगार सिद्धांत को समझ सकें।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए प्रभावी नीतियाँ सुझा सकें।

9.3 कींस के अर्थशास्त्र की विशेषताएँ

प्रो. कीस के आर्थिक विचारों के अध्ययन से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि कीस का अर्थशास्त्र केवल प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र पर सुधार मात्र नहीं है। है। कींस ने श्रींस ने प्रायः सभी क्षेत्रों में अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये है एवं सम्पूर्ण अर्थशास्त्र पर एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। कींस के अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषताएँ अग्रलिखित हैं: -

(1) एक सामान्य सिद्धान्त (A General Theory) - **प्रो. कींस** द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त है, न कि विशिष्ट सिद्धान्त (Specific Theory) । कीस का सिद्धान्त **पूर्ण रोजगार स्थिति, पूर्ण से कम रोजगार की स्थिति एवं पूर्ण से अधिक रोजगार की स्थिति** पर लागू होता है। इसी कारण कीस के सिद्धान्त को सामान्य सिद्धान्त कहा जाता है। इसके विपरीत, प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त केवल एक विशिष्ट स्थिति या पूर्ण रोजगार की स्थिति पर ही लागू होता है।

(2) अल्पकालीन संतुलन (Short Period Equilibrium) - **प्रो. कीस** का सामान्य विश्लेषण अल्पकालीन सन्तुलन पर आधारित है। कीस का मत है कि दीर्घकाल में तो हम सब मर जायेंगे, अतः **दीर्घकालीन की तुलना में अल्पकालीन विश्लेषण अधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है।** कीस के इस महत्वपूर्ण योगदान के परिणामस्वरूप ही आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अल्पकाल के विश्लेषण में रुचि ली और इसे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

(3) समष्टि या वृहत अर्थशास्त्र (Macro Economics) **- प्रो. कींस** ने अपने सिद्धान्त में वृहत अर्थशास्त्र या समिष्टि अर्थशास्त्र का विश्लेषण किया है। वृहत अर्थशास्त्र से आशय

उस अध्ययन से है जिसमें किसी एक इकाई का नहीं वरन् सम्पूर्ण समूह के आर्थिक व्यवहार का या अर्थव्यवस्था की सामूहिक दशा का अध्ययन किया जाता है।

(4) गतिशील तत्वों का समावेश (Inclusion of Dynamic Elements) - प्रो. कींस ने अपने विश्लेषण में उन गतिशील तत्वों का समावेश किया है जिनसे प्राप्त निष्कर्ष अधिक यथार्थवादी हो गये हैं। **प्रो. हिक्स** का मत है कि कींस ने अपने **सिद्धान्त में प्रत्याशाओं** (Expectations) को जोड़ा है जिसके कारण उनका अध्ययन का विषय परिवर्तनशील एवं प्रावैगिक है। इसी प्रकार **प्रो. हैन्स** ने लिखा है "**सामान्य सिद्धान्त ने अर्थशास्त्र के प्रति हमारा दृष्टिकोण स्थैतिक की अपेक्षा प्रावैगिक बना दिया है।**"

(5) मौद्रिक अर्थशास्त्र (Monetary Economics) - **प्रो. कींस** ने सामान्य अर्थशास्त्र एवं मौद्रिक अर्थशास्त्र को इस प्रकार से एकीकृत किया है कि कींस के **सामान्य सिद्धान्त को मौद्रिक अर्थशास्त्र** भी कहा जाता है। इस प्रकार कीस ने सामान्य आर्थिक

घटनाओं को मुद्रा से जोड़कर अपने विश्लेषण को अधिक यथार्थवादी स्वरूप प्रदान किया है।

(6) राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियाँ (Fiscal and Monetary Policies**)- प्रो. कींस** ने अपने सामान्य सिद्धान्त में राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों को विशेष महत्व दिया है। कींस का विचार है कि बजट को अर्थशास्त्र की आवश्यकताओं के अनुसार समायोजित किया जाना चाहिए। इस प्रकार कीस ने अपने सिद्धान्त में **सरकार की भूमिका** को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

(7) प्रभावपूर्ण माँग की भूमिका (Role of Effective Demand) - प्रो. कींस ने अपने सामान्य सिद्धान्त में प्रभावपूर्ण माँग को सर्वोच्च स्थान दिया है। किसी विशेष अवधि में, किसी देश में आय और रोजगार का स्तर प्रभावपूर्ण माँग पर निर्भर करता है। **प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि से अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय एवं रोजगार** का स्तर बढ़ता है।

(8) निवेश क्रिया की भूमिका (Role of Investment Function) किसी भी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार के लिए निवेश एक आवश्यक शर्त एवं समृद्धि की कुंजी है। **प्रो. कींस** के अनुसार निवेश की मात्रा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं ब्याज दर पर निर्भर रहती है। प्रायः ब्याज दर में अधिक परिवर्तन नहीं होते हैं। अतः किसी अर्थव्यवस्था में **निवेश की मात्रा पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता** या लाभ की प्रत्याशित दर का प्रभाव पड़ता है।

(9) प्रत्याशाओं की भूमिका (Role of Expectations)- प्रत्याशाओं से आशय लाभ की भावी सम्भावनाओं से है। एक उद्योगपति विनियोग करने के पूर्व भविष्य में होने वाले लाभ की गणना करता है। चूँकि भविष्य के बारे में सही-सही अनुमान लगाना कठिन एवं जोखिमपूर्ण होता है, फलतः जब अर्थव्यवस्था में **आशावादी स्थिति** रहती है, तब विनियोगकर्ता जोखिम उठाकर भारी मात्रा में विनियोग करते हैं जिससे रोजगार के अवसरों वृद्धि होती है। इस प्रकार कींस ने विनियोग एवं रोजगार की मात्रा के निर्धारण में प्रत्याशाओं के प्रभाव को सिद्ध किया है।

(10) पूँजीवाद में सुधार (Reforms in Capitalism) - **प्रो. कींस** पूँजीवाद के समर्थक हैं, किन्तु आर्थिक स्थिरता के लिए उन्होंने सरकारी हस्तक्षेप को भी आवश्यक माना है। उनका मत है कि पूँजीवाद एक उचित आर्थिक प्रणाली है तथा इसमें वे सभी शक्तियाँ विद्यमान हैं जो कि आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए आवश्यक है। **उनका सुझाव है कि पूँजीवादी प्रणाली में उचित सुधार एवं संशोधन करके इसे अधिक सक्रिय एवं मान्य बनाया जाना चाहिए** जिससे कि यह आर्थिक समस्याओं के समाधान में अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके।

(11) आगमन प्रणाली (Inductive Method) प्रो. कींस का अर्थशास्त्र कल्पनाओं पर आधारित नहीं है। वह आर्थिक घटकों एवं समस्याओं की सही-सही व्याख्या करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कीस ने आगमन प्रणाली की सहायता ली है।

9.4 रोजगार का निर्धारण

प्रो. कींस ने अपने सामान्य सिद्धान्त में रोजगार को निर्धारित करने वाले विभिन्न तत्वों की विस्तार से व्याख्या की है। अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन की मात्रा रोजगार के स्तर पर निर्भर करती है, अर्थात् उत्पादन रोजगार का परिणाम है। दूसरे शब्दों में, जितना अधिक रोजगार होगा, उतना ही अधिक उत्पादन होगा और जितना कम रोजगार होगा उतना ही कम उत्पादन होगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उत्पादन की मात्रा रोजगार का फलन है।

किन्तु उत्पादन की मात्रा बाजार में वस्तुओं की माँग या **प्रभावपूर्ण माँग पर निर्भर करती है**, अर्थात् वस्तुओं की माँग अधिक होने पर उत्पादन अधिक और इसके विपरीत, माँग कम होने पर उत्पादन कम होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यदि अर्थव्यवस्था में प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि होती है तो उत्पादन में वृद्धि होगी और परिणामस्वरूप पहले से अधिक व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध होगा। इसके विपरीत, माँग में कमी होने से उत्पादन एवं रोजगार दोनों में कमी आयेगी। संक्षेप में, कींस के रोजगार सिद्धान्त को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है -

(a) किसी देश की अर्थव्यवस्था में रोजगार एवं आय का स्तर **'प्रभावपूर्ण माँग'** पर निर्भर करता है।

(b) प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि से उत्पादन एवं आय के स्तरों में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप **रोजगार के अवसर बढ़ते** हैं।

(c) प्रभावपूर्ण माँग में कमी से उत्पादन एवं आय के स्तरों में कमी होती है और परिणामस्वरूप रोजगार के स्तर में गिरावट आती है या **बेरोजगारी फैलती** है।

9.5 प्रभावपूर्ण माँग

प्रभावपूर्ण माँग से आशय किसी समाज में वस्तुओं एवं सेवाओं की कुल माँग के योग से है। कुल प्रभावपूर्ण माँग दो क्षेत्रों से प्राप्त होती है, या इसके दो प्रमुख अंग है, यथा **(अ) उपभोक्ता वस्तुओं की माँग** (Demand of Consumption Goods) **या उपभोग माँग** और (ब**) विनियोग वस्तुओं की माँग** (Demand of Investment Goods) या निवेश माँग। यदि अर्थव्यवस्था में विद्यमान बेरोजगारी दूर करने के लिए

उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि की जाती है तो उपभोग वस्तुओं के उद्योगों में अधिक लोगों को रोजगार प्राप्त होता है। इसी प्रकार, यदि विनियोग वस्तुओं, जिन्हें पूँजीगत वस्तुएँ भी कहा जाता है, की माँग में वृद्धि होती है तो इनसे सम्बन्धित उद्योगों में अधिक लोगों को रोजगार उपलब्ध होता है। संक्षेप में, यदि अर्थव्यवस्था में प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि होती है, चाहे उपभोग के क्षेत्र में या चाहे विनियोग के क्षेत्र में, तो परिणामस्वरूप अन्ततः रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है।

प्रो. कींस के अनुसार अर्थव्यवस्था में प्रभावपूर्ण माँग का निर्धारण दो तत्वों से होता है, यथा (i) कुल माँग क्रिया या माँग फलन, और (ii) कुल पूर्ति क्रिया या पूर्ति फलन ।

(i) कुल माँग क्रिया (Aggregate Demand Function or A.D.) - कुल माँग क्रिया से आशय मुद्रा की उन विभिन्न राशियों की अनुसूची से है जिनका रोजगार के भिन्न-भिन्न स्तरों पर उद्यमियों को अपने उत्पादन की बिक्री से प्राप्त करने की आशा रहती है। दूसरे शब्दों में, कुल माँग क्रिया वह आशातीत या सम्भावित बिक्री से प्राप्त आय है जिसे उत्पादक श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय से प्राप्त होने की आशा रखता है। स्पष्ट है कि जितने अधिक श्रमिकों को रोजगार मिलेगा, उत्पादन भी उतना ही अधिक होगा और आशातीत बिक्री से आय में वृद्धि की सम्भावना भी अधिक रहेगी। यह क्रम निम्न प्रकार रहता है -

रोजगार में वृद्धि----उत्पादन में वृद्धि----आशातीत बिक्री से आय में वृद्धि

कुल माँग क्रिया के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि उद्यमी श्रमिकों को रोजगार तभी देगा जबकि उसके द्वारा बनाई गई वस्तुओं के बिक जाने की पूरी सम्भावना हो और उससे एक निश्चित राशि मिल जाने की आशा हो। संक्षेप में, कुल माँग क्रिया (A.D.) उद्यमियों की कुल प्राप्तियों को दर्शाती है।

(ii) कुल पूर्ति क्रिया (Aggregate Supply Function or A.S.) कुल पूर्ति क्रिया से आशय मुद्रा की उन विभिन्न राशियों की अनुसूची से है जो **रोजगार के विभिन्न स्तरों पर उत्पादित वस्तुओं की बिक्री से उद्यमियों को अवश्य मिलनी चाहिए।** दूसरे शब्दों में "कुल पूर्ति क्रिया मुद्रा की वह मात्रा है जो श्रमिकों की दी हुई संख्या द्वारा रोजगार के एक दिये हुए स्तरों पर उत्पादन करने में व्यय की जाती है।" यह राशि कुल उत्पादन व्यय के बराबर होती है। चूँकि उद्यमी लाभ के लिए उत्पादन करता है, फलतः विना लाभ की आशा के वह उत्पादन करने के लिए तैयार नहीं होता है। **प्रो. डिलार्ड** के शब्दों में, "कुल पूर्ति क्रिया प्राप्तियों की उस न्यूनतम मात्रा की अनुसूची है जो कि दी हुई श्रम की मात्रा को रोजगार पर लगाने के लिए प्रेरित करती है।" स्पष्ट है कि कुल पूर्ति क्रिया (AS) किसी अर्थव्यवस्था में उद्यमियों की कुल लागत या पूर्ति कीमत को दर्शाती है।

9.6 प्रभावपूर्ण माँग का महत्व

प्रो. कींस के "**आय एवं रोजगार सिद्धान्त**" में प्रभावपूर्ण माँग का सर्वाधिक महत्व है। इसके महत्व को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है

1. रोजगार का निर्धारिक (Determinant of Employment): - किसी भी अर्थव्यवस्था में रोजगार का निर्धारण प्रभावपूर्ण माँग के द्वारा होता है। प्रभावपूर्ण माँग के बढ़ने से रोजगार बढ़ता है तथा घटने से रोजगार घटता ता है। संक्षेप में प्रभावपूर्ण माँग रोजगार का आधार होती है।

2. विनियोग का महत्व (Importance of Investment) - **प्रो. कीस** का मत है कि अल्पकाल में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है। ऐसी स्थिति में विनियोग व्यय को बढ़ाकर प्रभावपूर्ण माँग एवं रोजगार में वृद्धि की जा सकती है। विनियोग के द्वारा ही आय-उपभोग के मध्य पैदा होने वाले अन्तराल को दूर करके रोजगार में वृद्धि की जा सकती है।

3. पूर्ण रोजगार की मान्यता का खण्डन (Repudiation of Full Employment Thesis): - "प्रभावपूर्ण माँग" के सिद्धान्त ने प्रतिष्ठित पूर्ण रोजगार की मान्यता का खण्डन किया है। प्रो. कीस के अनुसार "से" का बाजार नियम जो यह बताता है कि "पूर्ति स्वयं अपनी माँग पैदा करती है", गलत है। प्रभावपूर्ण माँग के आधार पर ही कीस ने यह सिद्ध किया है कि पूर्ण रोजगार सन्तुलन के स्थान पर अपूर्ण रोजगार सन्तुलन क्यों पैदा होता है।

4. सम्भावित प्रचुरता के मध्य गरीबी का विरोधाभास (The Paradox of Poverty in the midst of Potential Plenty): - प्रो. कींस के अनुसार जब आय में वृद्धि होती है तो उपभोग में वृद्धि भी होती है, किन्तु उपभोग में उस अनुपात में वृद्धि नहीं होती जितनी कि आय में होती है। यह प्रवृत्ति समृद्ध समाज में अधिक होती है जिससे यह सिद्ध होता है कि प्रचुरता के मध्य गरीबी विद्यमान रहती है।

9.7 रोजगार सन्तुलन

प्रो. कींस के अनुसार अर्थव्यवस्था में रोजगार का सन्तुलन उस स्तर पर होता है जहाँ पर कुल माँग क्रिया (AD) कुल पूर्ति क्रिया (AS) के बराबर होती है, अर्थात जहाँ माँग एवं पूर्ति बराबर होते हैं। जब तक लागतें (AS), प्राप्तियों (AD) से कम रहती है, उद्यमी को उत्पादन बढ़ाने का प्रोत्साहन मिलता रहता है और वह उत्पादन बढ़ाकर रोजगार में वृद्धि करता चला जाता है। यह क्रम तब तक चलता है, जब तक कि लागतें एवं प्राप्तियाँ बराबर न हो जाएँ। जिस बिन्दु पर कुल माँग वक्र एवं कुल पूर्ति वक्र एक दूसरे के बराबर

होते हैं, उस बिन्दु को ही रोजगार सन्तुलन कहते हैं। इसे रेखाचित्र एक द्वारा सरलता से समझा जा सकता है।

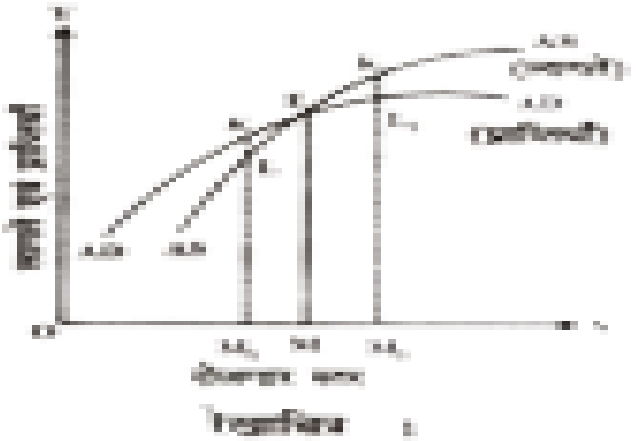

रेखाचित्र - एक में OX अक्ष पर रोजगार स्तर और OY अक्ष पर लागतों एवं प्राप्तियों को दर्शाया गया है। चित्र में बिन्दु से पूर्व तक कुल माँग वक्र (AD) कुल पूर्ति वक्र (AS) से ऊपर है, अर्थात् बिन्दु तक कुल प्राप्तियाँ, कुल लागत से अधिक हैं। फलतः रोजगार के अवसर में क्रमशः वृद्धि होगी। रोजगार में वृद्धि का यह क्रम तब तक चलेगा जब तक कि रोजगार का स्तर OM या E बिन्दु तक नहीं पहुँच जाता।

किन्तु यदि रोजगार में वृद्धि इसके बाद भी चालू रहती है तो यह स्थिति 'E' बिन्दु के बाद ही होगी जहाँ कुल प्राप्तियाँ कुल लागत से कम होंगी, अर्थात् उद्यमी को रोजगार में वृद्धि करना लाभप्रद नहीं होगा।

चित्र में 'E' के अलावा अन्य कोई ऐसा बिन्दु नहीं है, जहाँ कुल प्राप्तियाँ, कुल लागत के बराबर हों। यदि रोजगार M_1 बिन्दु तक रखा जाता है तो इस स्थिति में कुल माँग या प्राप्तियाँ KM_1 और कुल पूर्ति या लागत LM, होगी, अर्थात् उद्यमी को KL. लाभ होगा जिससे

वे और अधिक रोजगार देने को तत्पर होंगे। यदि रोजगार को M2 बिन्दु तक ले जाया जाता है तो इस बिन्दु पर कुल माँग या प्राप्तियाँ LIM_2 तथा कुल पूर्ति या लागत K_1M_2 होगी अर्थात् उद्यमी को K_1L_1 हानि होगी और वह इस स्थिति तक रोजगार बढ़ाने में रुचि नहीं लेगा। इस प्रकार 'E' बिन्दु पर ही कुल माँग (AD) और कुल पूर्ति (AS) एक-दूसरे के बराबर है और यही रोजगार सन्तुलन बिन्दु होगा।

9.8 रोजगार सन्तुलन एवं पूर्ण रोजगार

प्रो. कींस के अनुसार कुल माँग क्रिया एवं कुल पूर्ति क्रिया जहाँ एक-दूसरे के बराबर होती है, वहाँ रोजगार सन्तुलन होता है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह सन्तुलन पूर्ण रोजगार की स्थिति पर हो। कुल माँग क्रिया एवं पूर्ति क्रिया का सन्तुलन ऐसे बिन्दु पर भी हो सकता है जहाँ पूर्ण रोजगार से कम की दशा हो। पूर्ण रोजगार की दशा के लिए यह आवश्यक है कि निवेश माँग इतनी अधिक हो कि वह उपभोग एवं पूर्ण रोजगार से सम्बन्धित आय के बीच के अन्तराल को पाट सके।

इस सन्दर्भ में**, प्रो. कींस** का मत है कि सामान्यतः निवेश माँग इतनी अधिक नहीं होती कि वह उपभोग एवं पूर्ण रोजगार में सम्बन्धित आय के मध्य अन्तराल को पाट सके। फलतः रोजगार सन्तुलन पूर्ण रोजगार के पहले ही स्थापित हो जाता है अर्थात् ऐसी स्थिति में कुल माँग वक्र, कुलपूर्ति वक्र को पूर्ण रोजगार के पहले ही एक-दूसरे को काटती है। कींस का यही न्यून रोजगार सन्तुलन है।

प्रो. कीस ने अपने सामान्य सिद्धान्त में कुल पूर्ति क्रिया की अपेक्षा कुल माँग क्रिया को अधिक महत्व दिया है। इसका कारण यह है कि अल्पकाल में पूर्ति क्रिया स्थिर रहती है। फलतः प्रभावपूर्ण माँग या रोजगार के स्तर का निर्धारण कुल माँग क्रिया के द्वारा होता है। कीस के अनुसार कुल मांग क्रिया स्वयं दो तत्वों पर आधारित रहती है यथा (अ) उपभोग प्रवृत्ति या उपभोग क्रिया और (ब) निवेश प्रवृत्ति या निवेश क्रिया। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है: -

(A) उपभोग प्रवृत्ति या उपभोग क्रिया (Propensity to Consume or Consumption Function)

उपभोग प्रवृत्ति या उपभोग क्रिया कुल आय और कुल उपभोग के मध्य सम्बन्ध को प्रकट करती है। जैसा कि **प्रो. कींस** ने बताया है कि उपभोग एवं आय में **'फलनात्मक सम्बन्ध'** (Functional Relation) होता है, अर्थात् यदि आय में वृद्धि होती है तो उपभोग की प्रवृत्ति में भी वृद्धि होती है और यदि आय घटती है तो उपभोग प्रवृत्ति भी घटती है। यहाँ उल्लेखनीय है कि विभिन्न आय स्तरों पर उपभोग व्यय में समान वृद्धि नहीं होती, अर्थात् उपभोग समान नहीं रहता और इसमें वृद्धि आय की तुलना में धीमी गति से होती है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि ज्यों-ज्यों **आय में वृद्धि होती है, त्यों-त्यों उपभोग** की सीमान्त प्रवृत्ति घटती जाती है। आय एवं व्यय के मध्य अन्तर का बढ़ना स्वाभाविक है, क्योंकि जब कुल आय में वृद्धि होती है तब कुल व्यय तो बढ़ता है किन्तु व्यय में वृद्धि आय में वृद्धि की तुलना में कम रहती है। उपभोग की इस प्रवृत्ति पर ही **प्रो. कींस** ने **'उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम'** (Psychological Law of Consumption) प्रतिपादित किया है। पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने के लिए प्रो. कींस का यह मत है कि

आय एवं उपभोग के मध्य जो अन्तराल (Gap) पाया जाता है, उसे निवेश के द्वारा पूरा किया जाना चाहिए, अन्यथा बेरोजगारी की स्थिति का पैदा होना निश्चत है।

(B) निवेश प्रेरणा या निवेश क्रिया (Inducement to Invest or Investment Function)

प्रो. कींस के अनुसार रोजगार का दूसरा एवं तुलनात्मक अधिक महत्वपूर्ण तत्व निवेश प्रेरणा या निवेश क्रिया है। इसका कारण यह है कि समाज की उपभोग प्रवृत्ति अल्पकाल में स्थिर रहती है। फलतः रोजगार में वृद्धि के लिए निवेश प्रेरणा का सहारा लिया जाता है**। प्रो. कींस** के अनुसार निवेश को दो तत्व प्रभावित करते हैं, यथा -(i) पूँजी की सीमान्त उत्पादकता और (ii) ब्याज दर। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से आशय नवीन निवेशों में लागतों को निकालकर प्राप्त होने वाली भावी आय (लाभ) से है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पुनः दो तत्वों पर निर्भर रहती है यथा (अ) पूँजी सम्पत्ति की भावी आय, और (ब) पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत ।

पूँजी-सम्पत्ति की भावी आय से तात्पर्य पूँजी सम्पत्ति की कुल शुद्ध आय से है, जिसे सम्पत्ति (मशीन आदि) अपने सम्पूर्ण जीवन काल में दे सकती है। पूँजी-परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत से तात्पर्य सम्पत्ति की लागत से है। एक उद्यमी मशीन आदि खरीदते समय केवल उससे प्राप्त होने वाली आय को ही ध्यान में नहीं रखता वर्न वह सम्पत्ति की पूर्ति कीमत (लागत) को भी ध्यान में रखता है। एक उद्यमी या विनियोगकर्ता नवीन पूँजी परिसम्पत्ति में विनियोग करने से पूर्व उसके जीवनकाल में होने वाले भावी लाभों तथा उसकी पूर्ति कीमत या लागत की तुलना करता है। यदि भावी आय लागत से अधिक होती है तो वह विनियोग करता है, अन्यथा नहीं।

विनियोग को प्रभावित करने वाला दूसरा तत्व **ब्याज की दर** है। **प्रो. कींस के अनुसार** "व्याज एक निश्चित समय के लिए तरलता के परित्याग का पारितोषक है।" तरलता पसन्दगी से आशय मुद्रा का नकद रूप में रखने से से है। मुद्रा को नकद रूप में रखने या तरलता

पसन्दगी के मुख्य तीन उद्देश्य होते हैं, यथा (i) लेन-देन उद्देश्य, (ii) संकटकालीन या सावधानी उद्देश्य और (iii) सट्टा उद्देश्य ।

लेन-देन या सौदा उद्देश्य के अन्तर्गत रखी गई नकद राशि का उपयोग दिन-प्रतिदिन के कार्यों पर किया जाता है। **संकटकालीन या सावधानी उद्देश्य** के लिए नकद रखी गई राशि का उपयोग बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी जैसे संकटकालीन कार्यों पर किया जाता है। **सट्टा उद्देश्य** के लिए रखी गई नकद राशि का उपयोग व्यवसायी एवं सटोरिये भविष्य में ब्याज की दरों में होने वाले परिवर्तनों से लाभ उठाने के लिए करते हैं।

पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं ब्याज की दर निवेश के निर्धारण के दो महत्वपूर्ण तत्व हैं। कोई भी उद्यमी विनियोग करने से पूर्व पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं ब्याज दर की तुलना करता है। जब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर से अधिक होती है, तब उद्यमी विनियोग करता है। इसके विपरीत, जब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर से कम होती है, तब उद्यमी को लाभ की सम्भावना नहीं होती, फलतः वह विनियोग नहीं करता**। प्रो. कींस** ने एक रुचिपूर्ण उदाहरण देकर इस तथ्य को निम्न प्रकार स्पष्ट किया है -

"जिस प्रकार घोड़े को पानी पिलाने के लिए हम उसे नदी के किनारे ले जा सकते हैं, किन्तु उसे पानी पीने के लिए विवश नहीं कर सकते। ठीक इसी प्रकार, उद्यमियों को ब्याज की नीची दर विनियोग हेतु आकर्षित तो कर सकती है, किन्तु विनियोग करने के लिए विवश नहीं कर सकती है। संक्षेप में, ब्याज की दर की अपेक्षा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का निवेश या विनियोग पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

9.9 कींस का रोजगार सिद्धान्त

प्रो. डडले डिलार्ड ने कींस के रोजगार सिद्धान्त को संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है-

कींस का रोजगार सिद्धान्त

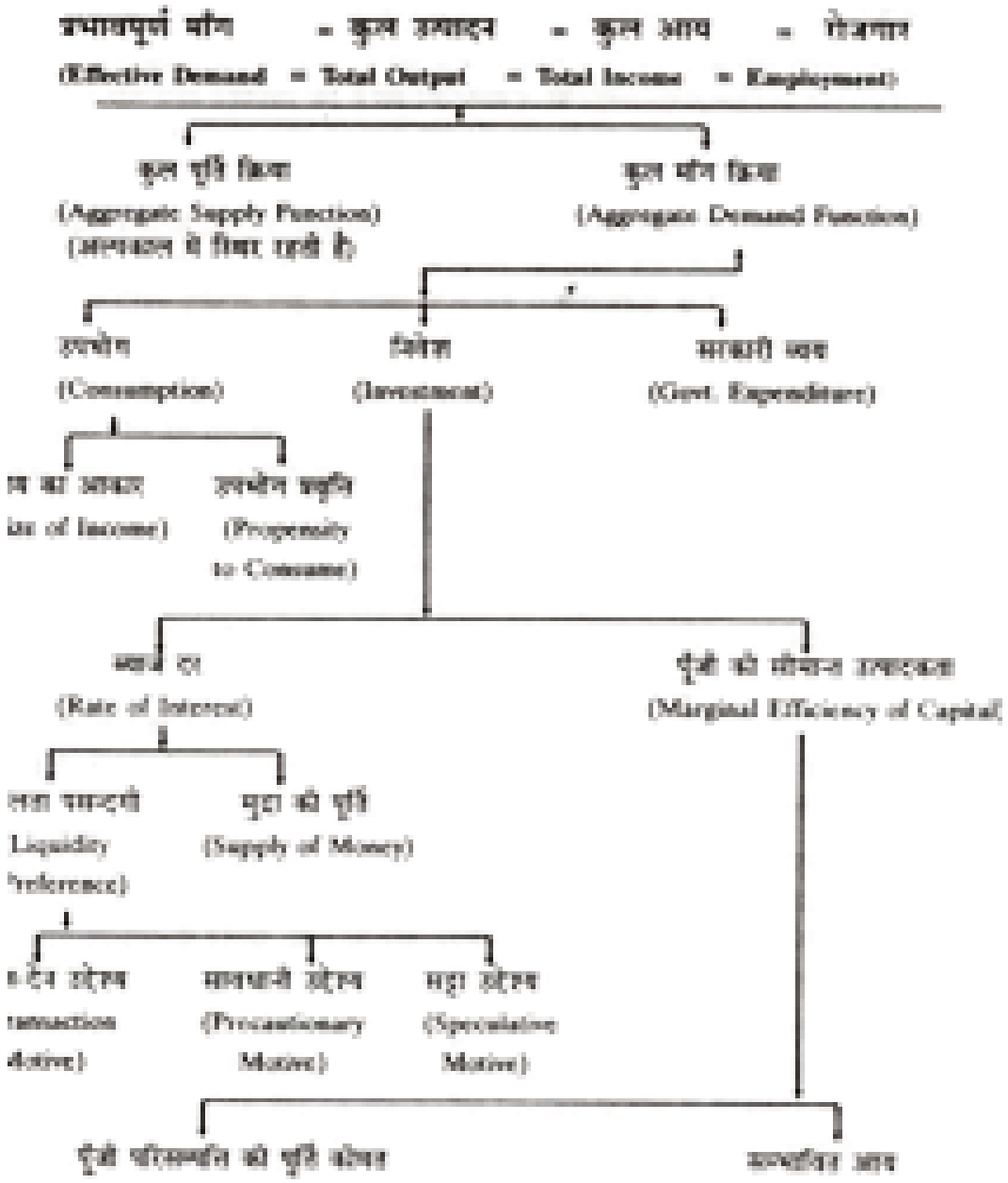

9.10 कींस के रोजगार सिद्धान्त की आलोचना

प्रो. कींस के रोजगार सिद्धान्त की अनेक अर्थशास्त्रियों द्वारा कटु आलोचना की गई है। इन अर्थशास्त्रियों में **प्रो. हेनरी हेजलिट, प्रो. स्टिगलर, प्रो. क्लीन, प्रो. हेयक और हैरड एवं डोमर** का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं: -

(1) यह सामान्य सिद्धान्त नहीं है (This is not a General Theory): - प्रो. कीस का रोजगार सिद्धान्त इस दृष्टि से सामान्य नहीं है कि यह प्रत्येक स्थान पर हर स्थितियों में क्रियाशील नहीं होता। यह सिद्धान्त अर्द्ध-विकसित देशों, समाजवादी देशों एवं नियोजित अर्थव्यवस्थाओं में लागू नहीं होता है।

(ii) अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित (Based on Un-realistic Assumptions)- प्रो. कींस का रोजगार सिद्धान्त पूर्ण-प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। इसके साथ ही यह सिद्धान्त बन्द अर्थव्यवस्था पर आधारित है, क्योंकि आयात-निर्यात के प्रभावों को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है।

(iii) प्रभावपूर्ण माँग और रोजगार में सीधा सम्बन्ध नहीं है (No Direct Relationship Between Effective Demand and Employment): प्रो. हैजलिट का मत है कि प्रभावपूर्ण माँग और रोजगार के मध्य सीधा सम्बन्ध नहीं है। रोजगार पर मजदूरी में लोच, द्रव्य की पूर्ति कीमत, तकनीकी आदि का प्रभाव पड़ता है।

(iv) निवेश को अधिक महत्व (More Importance to Investment): प्रो. कीस ने पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करने में उपभोग प्रवृत्ति की तुलना में निवेश को अधिक महत्व दिया है। किन्तु आलोचकों का मत है कि धन के पुनर्वितरण में एवं अन्य उपायों के द्वारा उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि की जानी चाहिए। इससे रोजगार वृद्धि में सहायता मिलती है।

(v) यह सिद्धान्त प्रवैगिक नहीं है (This is not a Dynamic Theory): प्रो. कींस का सिद्धान्त अपेक्षित रूप से प्रावैगिक नहीं है और इसमें समय बिलम्ब की विवेचना भी नहीं की गई। आलोचकों का मत है कि आय में वृद्धि के साथ तत्काल उपभोग में वृद्धि नहीं होती वरन् इसमें कुछ समय लगता है। इसी प्रकार रोजगार में वृद्धि होने में भी समय लगता है।

(vi) केवल वृहत दृष्टिकोण एकांगी होता है (Only Macro Approach is One Sided): प्रो. कींस ने रोजगार सिद्धान्त पर केवल वृहत या व्यापक दृष्टिकोण से ही विचार किया है जो एकांगी है। आर्थिक समस्याओं का समुचित रूप से अध्ययन करने के लिए वृहत विश्लेषण के साथ-साथ सूक्ष्म विश्लेषण भी आवश्यक होता है।

(vii) त्वरक (Accelerator) सिद्धान्त का ममावेश नहीं कींस ने अपने सिद्धान्त में केवल "गुणक" सिद्धान्त की व्याख्या की है तथा त्वरक सिद्धान्त को अपने विश्लेषण में सम्मिलित नहीं किया है। अतः कींस का सिद्धान्त अधूरा है।

(vii) बेरोजगारी का व्यापक हल नहीं (Not a Proper Solution for Unemployment): प्रो. कींस ने अपने सिद्धान्त में केवल चक्रीय बेरोजगारी का विश्लेषण किया है और अदृश्य बेरोजगारी, पूर्ण बेरोजगारी, तकनीकी बेरोजगारी आदि की व्याख्या नहीं की। प्रो. क्लीन के अनुसार कीस का सिद्धान्त उचित रोजगार पर भी ध्यान नहीं देता।

(ix) दीर्घकाल की अवहेलना (Neglects Long Term View): प्रो. कींस ने अपने विश्लेषण को अल्पकाल तक ही सीमित रखा है। इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए

प्रो. हेयक ने लिखा है कि केवल अल्पकालीन दृष्टिकोण से व्याख्या एक भारी बौद्धिक भूल है। इसी कारण प्रो. हैरड और डोमर ने रोजगार सिद्धान्त की दीर्घकालीन दृष्टिकोण से व्याख्या की है।

(x) उपभोग प्रवृत्ति की समुचित व्याख्या नहीं की (Propensity to Consume is not Precisely Explained): प्रो. पीगू के अनुसार कींस ने उपभोग को मुख्य रूप से आय पर निर्भर माना है, किन्तु उपभोग पर अन्य तत्वों, जैसे धन का स्टॉक, मूल्यों में कमी, मजदूरी में कमी एवं प्रदर्शन प्रभाव आदि का भी प्रभाव पड़ता है।

(xi) वितरण की समस्या पर ध्यान नहीं दिया (Problem of Distribution is Neglected): प्रो. कींस ने अपने सिद्धान्त में साधनों के वितरण की समस्या पर ध्यान नहीं दिया है। आलोचकों का मह है कि पूर्ण-रोजगार की स्थिति लाने और उसे बनाए रखने के लिए विभिन्न प्रयोगों में उत्पत्ति के साधनों का उचित वितरण आवश्यक है।

(xii) ब्याज दर का सिद्धान्त भी युक्तियुक्त नहीं है (The Theory of Interest Rate is also not Logical): प्रो. कींस के अनुसार ब्याज एक निश्चित अवधि के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है, किन्तु आलोचकों का मत है कि यह सिद्धान्त अधूरा है और इससे व्याज दर का निर्धारण नहीं होता।

उपर्युक्त आलोचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि कींस का सिद्धान्त त्रुटिरहित नहीं है। अन्य सिद्धान्तों समष्टि अर्थशास्त्र तथा मुद्रा एवं बैंकिंग के समान ही इस सिद्धान्त में भी अनेक कमियाँ है। किन्तु वास्तविकता यह है कि कीस का यह सिद्धान्त अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

प्रश्न 1: केन्सियन सिद्धांत क्या है और इसका उद्देश्य क्या है?

प्रश्न 2: कुल मांग (Aggregate Demand) और कुल आपूर्ति (Aggregate Supply) में क्या अंतर है?

9.11 कींस का सिद्धान्त एवं अर्द्ध-विकसित देश

अनेक विद्वानों का मत है कि कींस का रोजगार सिद्धान्त अर्ध-विकसित देशों में लागू नहीं होता। इसके प्रमुख कारण निम्न प्रकार है-

(i)बेरोजगारी का स्वरूप (Structure of Unemployment): - **कींस** ने अपने सामान्य सिद्धान्त में केवल **चक्रीय बेरोजगारी** की ही व्याख्या की है, जबकि अर्द्ध-विकसित देशों में बेरोजगारी एक दीर्घकालीन और निरन्तर बनी रहने वाली समस्या है। अर्ध-विकसित देशों में **पूर्ण बेरोजगारी** के साथ-साथ **अदृश्य बेरोजगारी** और **अर्द्ध-बेरोजगारी** की समस्या भी अत्यधिक जटिल एवं भयावह होती है।

जहाँ विकसित देशों में बेरोजगारी की समस्या का मूल कारण प्रभावपूर्ण माँग का कम होना है, वहीं अर्ध-विकसित देशों में बेरोजगारी का प्रमुख कारण पूँजी एवं उत्पादन के अन्य साधनों की कमी का होना है। अर्ध-विकसित देशों में उपभोग प्रवृत्ति तो बहुत अधिक होती है, किन्तु इसके बावजूद भी उत्पत्ति के विभिन्न साधनों की कमी के कारण निवेश में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पाती। इससे स्पष्ट है कि विकसित एवं अर्द्धविकसित देशों में बेरोजगारी का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। चूंकि, कीस का सिद्धान्त केवल विकसित देशों के सन्दर्भ में लिखा गया है, अतः अर्द्ध-विकसित देशों में लागू होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

(ii) प्रभावपूर्ण माँग की प्रकृति में भिन्नता (Difference in the Nature of Effective Demand) - अर्द्ध-विकसित देशों में प्रभावपूर्ण माँग की प्रकृति विकसित देशों से भिन्न होती है। **कींस** का मत है कि उपभोग व्यय एवं विनियोग में वृद्धि के द्वारा प्रभावपूर्ण माँग एवं रोजगार में वृद्धि की जा सकती है। किन्तु अर्ध-विकसित देशों की समस्या यह है कि इन देशों में आय का स्तर नीचा होता है, जबकि **उपभोग प्रवृत्ति बहुत ऊँची** होती है। ऐसी स्थिति में प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि तभी सम्भव है, जबकि आय में वृद्धि हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रभावपूर्ण माँग की स्थिति विकसित एवं अर्ध-विकसित देशों में अलग-अलग होती है।

(iii) सिद्धान्त का उद्देश्य (Objective of the Theory)- **प्रो. कींस** के विश्लेषण का मुख्य लक्ष्य या **केन्द्र-बिन्दु आर्थिक अस्थिरता** है, जो कि मुख्यतः विकसित देशों में व्यापार-चक्र की क्रियाशीलता के कारण पैदा होती है। इसके विपरीत अर्ध-विकसित देशों में मुख्य समस्या **आर्थिक विकास** को गति प्रदान करने की है। इस प्रकार कीस के सिद्धान्त का केन्द्र-बिन्दु अर्ध-विकसित देशों के मूल उद्देश्य से भिन्न है।

(iv) उपभोग प्रवृत्ति एवं अर्ध-विकसित देश (Propensity to Consume and Under- developed Countries) कींस का मत है कि जैसे-जैसे आय में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति घटती जाती है तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति में वृद्धि होती जाती है और यही कारण है कि आय एवं उपभोग के मध्य अन्तराल बढ़ता जाता है, किन्तु अर्द्ध-विकसित देशों में स्थिति कुछ भिन्न होती है। इन देशों में आय का स्तर निम्न होता है। जिसके कारण प्रत्येक आय में होने वाली वृद्धि का शत-प्रतिशत भाग का उपभोग कर लिया जाता है, अर्थात् **सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति बहुत अधिक होती** है। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि अर्ध-विकसित देशों में उपभोक्ताओं की माँग में खाद्यान्न एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं का हिस्सा अधिक होता है । **किन्तु इन वस्तुओं की पूर्ति में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पाती**। फलतः इन वस्तुओं की माँग में वृद्धि होने से **मूल्य स्तर** बढ़ने लगता है और **मुद्रास्फीति की जटिल समस्या** पैदा हो जाती है।

(v) अल्पकालीन विश्लेषण से सम्बन्धित मान्यताएँ यथार्थवादी नहीं हैं (Assumptions Relating to Short-term Analysis are Unrealistic) - **चूँकि प्रो. कींस** का रोजगार सिद्धान्त अल्पकाल को आधार मानकर चला है, अर्थात अल्पकालीन है। अतः उन्होंने अपने विश्लेषण में जिन तत्वों को स्थिर माना है उनके माध्यम से विकसित देशों की समस्याओं का विश्लेषण सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ - कीस ने पूँजी की मात्रा, उत्पादन तकनीक, प्रबन्ध व्यवस्था, श्रमिकों की संख्या, श्रमिकों की कार्यकुशलता आदि को स्थिर माना है। किन्तु अर्ध-विकसित देशों में वास्तविक समस्या इन्हीं तत्वों में परिवर्तन लाने की है। अतः अर्ध-विकसित देशों में दीर्घकालीन कार्यक्रमों, नीतियों एवं सिद्धान्तों की आवश्यकता है, जबकि कींस का दृष्टिकोण अल्पकाल तक ही सीमित है।

(vi) गुणक की क्रियाशीलता एवं अर्ध-विकसित देश (Application of Multiplier and Under-developed Countries) **- प्रो. कींस** ने गुणक की क्रियाशीलता से सम्बन्धित जो मान्यताएँ मानी हैं, वे अर्ध-विकसित देशों में लागू नहीं होतीं। ये मान्यताएँ हैं, अनैच्छिक बेरोजगारी का होना, वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति का लोचदार होना, उपभोक्ताओं, वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि के लिए उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता का विद्यमान होना, कच्चे माल आदि की पूर्ति का लोचदार होना आदि, किन्तु अर्ध-विकसित देशों के सन्दर्भ में इन मान्यताओं को नहीं माना जा सकता अतः यह कहा जा सकता है कि कींस की मुख्य धारणा या गुणक का सिद्धान्त अर्ध-विकसित देशों में क्रियाशील नहीं होता।

(vii) मुद्रा की पूर्ति सम्बन्धी विचार (Views Relating to Supply of Money) **- प्रो. कींस** का मत है कि यदि अन्य बातें समान रहती हैं, तो मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करने से ब्याज की दर घटती है और विनियोग एवं रोजगार बढ़ता है, किन्तु अर्ध-विकसित देशों में जब मुद्रा की मात्रा बढ़ाई जाती है तो उत्पादन में वृद्धि के स्थान पर मुद्रा स्फीति या मूल्य वृद्धि होने लगती है।

(viii) आर्थिक ढाँचे में अन्तर (Difference in Economic Structure) **प्रो. कींस** का रोजगार सिद्धान्त विकसित औद्योगिक अर्थव्यवस्था वाले देशों के लिए अधिक उपयुक्त है। इसका कारण यह है कि कींस ने अपना सिद्धान्त अमेरिका एवं इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखकर प्रतिपादित किया है। किन्तु अर्ध-विकसित देशों का आर्थिक ढाँचा कृषि प्रधान होता है और जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि से अपना जीवन-यापन करता है। इसके साथ ही विकसित देशों का आर्थिक ढाँचा तुलनात्मक लोचपूर्ण होता है, जबकि

कृषि का उत्पादन प्राकृतिक तत्वों पर निर्भर रहने के कारण **बेलोचदार** होता है। ऐसी स्थिति में कींस का सिद्धान्त अर्ध-विकसित देशों में क्रियाशील नहीं होता।

(ix) विनियोग एवं अर्ध-विकसित देश (Investment and Underdeveloped Countries) – **प्रो. कींस** के सामान्य सिद्धान्त में प्रभावपूर्ण माँग, आय, उत्पादन एवं रोजगार को प्रभावित करने वाला दूसरा प्रमुख तत्व विनियोग है, जो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं ब्याज की दर पर निर्भर करता है। अर्ध-विकसित देशों में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बहुत कम एवं ब्याज दर बहुत अधिक होती है जिसके कारण विनियोग को प्रोत्साहित करना बहुत कठिन होता है। इन देशों में निजी विनियोग के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र में भी विनियोग आवश्यक हो जाता है। इसके साथ ही अर्ध-विकसित देशों में औद्योगिक उत्पादन की माँग भी अत्यधिक सीमित होती है। इससे बड़े पैमाने पर उत्पादन से सम्बन्धित मितव्ययिताएँ प्राप्त नहीं हो पाती है।

(x) नियोजित अर्थव्यवस्था एवं कींस (Planned Economy & Keynes) **- प्रो. कींस** का रोजगार सिद्धान्त पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में लागू होता है, न कि नियोजित अर्थव्यवस्था में। इसका कारण यह है कि कींस ने अपने सिद्धान्त में निजी क्षेत्र को ही महत्व दिया है। यह सिद्धान्त विनियोग के स्वतन्त्र व्यवहार पर आधारित है किन्तु अनेक अर्ध-विकसित देशों ने पूँजीवाद के स्थान पर नियोजित अर्थव्यवस्था को अपनाया है। इन देशों में विनियोग का व्यवहार स्वतन्त्र न रहकर सरकारी नीतियों पर आधारित रहता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि कीस का रोजगार सिद्धान्त अर्ध-विकसित एवं पिछड़ी अर्थव्यवस्था या देशों में लागू नहीं होता, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि कीस का सिद्धान्त अर्ध-विकसित देशों के लिए महत्वहीन एवं बेकार हैं। कीस द्वारा सुझाये गये अनेक उपाय एवं धारणाएँ अर्ध-विकसित देशों के लिए उपयोगी एवं लाभकारी भी है।

प्रश्न 3: प्रभावी मांग (Effective Demand) का क्या महत्व है?

9.12 कींस के सिद्धान्त की अर्ध-विकसित देशों में सार्थकता

यद्यपि कींस का रोजगार सिद्धान्त विकसित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है, तथापि यह कुछ सीमा तक अर्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास में भी उपयोगी सिद्ध होता है। कींस ने अर्थव्यवस्था को मन्दीकाल से सुरक्षा के लिए मुख्यतः निम्न सुझाव दिये हैं

(i) अर्थव्यवस्था में सरकार के हस्तक्षेप का महत्व एवं आवश्यकता।

(ii) अर्थव्यवस्था की प्रवृत्ति एवं क्रियाओं पर सतर्क दृष्टि रखना जिससे कि आने वाली समस्याओं का अनुमान लगाया जा सके।

(iii) मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों की व्यवहारिकता ।

कींस द्वारा उपर्युक्त सुझावों की अर्ध-विकसित देशों में क्रियाशीलता के सन्दर्भ में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं-

(i) जहाँ तक अर्थव्यवस्था में सरकार के हस्तक्षेप का प्रश्न है, विकसित देशों की अपेक्षा अर्ध-विकसित देशों में सरकार की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि अर्ध-विकसित देशों में निजी साहसियों का अभाव रहता है, जबकि तीव्र गति से आर्थिक विकास के लिए बड़ी मात्रा में विनियोग आवश्यक होता है। अतः जहाँ तक सरकारी हस्तक्षेप एवं सार्वजनिक विनियोग का प्रश्न है, कींस का सिद्धान्त विश्व के सभी अर्ध-विकसित देशों में लागू होता है।

(ii) जहाँ तक अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं क्रियाओं पर सतर्कता रखने का प्रश्न है, विकसित देशों की तुलना में अर्ध-विकसित देशों में दीर्घकालीन उपायों की आवश्यकता होती है। इन देशों में आर्थिक जटिलताएँ एवं समस्याएँ समूचे आर्थिक ढाँचे से सम्बन्धित रहती हैं और इन्हें हल करने के लिए विस्तृत एवं व्यापक जाँच की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि इन देशों में स्थायी योजना आयोग की स्थापना की जाती है। दूसरे शब्दों में, विकसित देशों की तुलना में अर्ध-विकसित देशों में आर्थिक क्रियाओं के प्रति सतर्कता अधिक आवश्यक है।

(iii) जहाँ तक मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों का प्रश्न है, विकसित एवं अर्ध-विकसित देशों के आर्थिक ढाँचे में बुनियादी अन्तर होता है। कींस ने केवल मन्दीकाल की अर्थव्यवस्था एवं उसे सुधारने के उपायों का विश्लेषण किया है। यदि इन नीतियों को अर्ध-विकसित देशों में क्रियान्वित किया जाता है तो मुद्रा स्फीति की स्थिति पैदा हो जाती है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रो. कीस का रोजगार सिद्धान्त एवं अर्ध-विकसित देशों में इस सिद्धान्त की सार्थकता से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि मूलतः यह सिद्धान्त विकसित देशों से सम्बन्धित है। इस सन्दर्भ **में प्रो. वी. के. आर. वी. राव** का मत है कि अर्ध-विकसित देशों में कींस के सिद्धान्त का कार्यान्वयन घातक एवं स्फीति का प्रमुख कारण है। डॉ. राव का मत है कि अर्ध-विकसित देशों के लिए कठिन मेहनत एवं अधिक बचत आवश्यक है। प्रगति संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अर्ध-विकसित देशों में कींस के सामान्य सिद्धान्त की क्रियाशीलता अत्यन्त सीमित है।

प्रश्न 4: केन्सियन सिद्धांत में सरकार के हस्तक्षेप का क्या महत्व है?

9.13 प्रतिष्ठित एवं कींस के रोजगार सिद्धान्त के मध्य तुलना

प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धान्त प्रो. जे.बी. से के बाजार नियम पर आधारित है कि "पूर्ति स्वयं अपनी माँग उत्पन्न कर लेती है।" इसका कारण यह है कि अर्थव्यवस्था में जो उत्पादन किया जाता है वह अन्य उत्पादनों की माँग को उत्पन्न करता है। इस प्रकार अतिरिक्त पूर्ति,
माँग होती है। प्रतिष्ठित सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए **प्रो. पीगू** ने लिखा है, "पूर्ण स्वतंत्र प्रतियोगिता होने पर मजदूरी की दरों की प्रवृत्ति माँग से इस तरह से सम्बन्धित होती है कि प्रत्येक को रोजगार प्राप्त हो जाता है।" इस प्रकार श्रम बाजार में, श्रम की माँग एवं पूर्ति, अर्थव्यवस्था में रोजगार के स्तर को निर्धारित करती है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मानते हैं कि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता रहने पर लोग कभी भी बेरोजगार नहीं रह सकते। किन्तु यदि सरकार मूल्य, मजदूरी की दर या उत्पादन स्तर में हस्तक्षेप करती है तो बेरोजगारी की स्थिति पैदा हो सकती है। **प्रो. कींस** ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए इसे अवास्तविक बताया और अपना रोजगार सिद्धान्त प्रतिपादित किया जो कि प्रभावपूर्ण माँग पर आधारित है। इन दोनों सिद्धान्तों की परस्पर तुलना निम्न प्रकार है:-

1. आर्थिक प्रणाली स्वयंचालित नहीं: प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मानते थे कि आर्थिक प्रणाली स्वचलित एवं स्वतः समायोजित होने वाली होती है। फलतः अति-उत्पादन एवं बेरोजगारी उत्पन्न नहीं होती। किन्तु कींस ने इस मान्यता का खण्डन किया है और प्रभाव पूर्ण माँग के आधार पर रोजगार की व्याख्या की। इस सिद्धान्त के अनुसार अर्थव्यवस्था स्वयं चालित नहीं होती तथा आय-उपभोग में अन्तर पैदा होने से बेरोजगारी पैदा होती है।

2. दीर्घकालीन अल्पकालीन सन्तुलन: प्रतिष्ठित सिद्धान्त जहाँ दीर्घकालीन सन्तुलन की व्याख्या करता है, वहीं कीस का सिद्धान्त अल्पकाल पर आधारित है। कीस का मानना है कि दीर्घकाल में तो हम सब मर जाते हैं।

3. अर्ध-रोजगार सन्तुलन: जहाँ प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने पूर्ण-रोजगार सन्तुलन की व्याख्या की है, वहीं कींस ने अपने सिद्धान्त में कुल माँग क्रिया एवं कुल पूर्ति क्रिया के आधार पर अर्ध-रोजगार सन्तुलन का विश्लेषण किया।

4. मजदूरी में कटौती एवं रोजगार: प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री प्रो. पीगू का मत था कि मजदूरी में कटौती करके रोजगार में वृद्धि की जा सकती है। किन्तु कीस के अनुसार यह सम्भव नहीं है, क्योंकि मजदूरी में कटौती करने से प्रभावपूर्ण माँग में कमी होगी और परिणामस्वरूप बेरोजगारी में वृद्धि होगी।

5. सूक्ष्म तथा समग्र दृष्टिकोण पर आधारित: प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धान्त जहाँ सूक्ष्म आर्थिक विश्लेषण पर आधारित है, वहीं कीस का विश्लेषण समग्र दृष्टिकोण पर

आधारित है। इसके साथ ही कीस ने गतिशील तत्वों को अपने सिद्धान्त में स्थान दिया जिससे यह अधिक व्यवहारिक है।

6. बचत एवं रोजगार: प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री रोजगार के लिए बचत को महत्व देते थे। इसके विपरीत, कींस का मत है कि एक व्यक्ति के लिए बचत अच्छी हो सकती है, किन्तु सम्पूर्ण समाज के लिए यह अवांछनीय है, क्योंकि इससे माँग में कमी होती है तथा बेरोजगारी बढ़ती है।

7. बजट: प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने सन्तुलित बचट की धारणा प्रस्तुत की है। इसके विपरीत, कींस ने आर्थिक समस्याओं को हल करने के उद्देश्य से घाटे के बजट का समर्थन किया है। प्रो. कौंस के अनुसार मन्दीकाल में मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों का विशेष महत्व होता है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि प्रतिष्ठित, रोजगार सिद्धान्त की तुलना में कींस का सिद्धान्त अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी है।

प्रश्न 5: केन्सियन सिद्धांत में बेरोजगारी और मुद्रास्फीति के बीच संबंध क्या है?

9.14 सार संक्षेप

केन्सियन सिद्धांत "आउटपुट और रोजगार" पर आधारित है, जो यह बताता है कि कुल मांग (Aggregate Demand) और कुल आपूर्ति (Aggregate Supply) के बीच का संतुलन अर्थव्यवस्था में उत्पादन और रोजगार स्तर को प्रभावित करता है। केन्स के अनुसार, अर्थव्यवस्था स्वचालित रूप से पूर्ण रोजगार की स्थिति तक नहीं पहुंचती, और इसके लिए सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है।

कुल मांग और आपूर्ति (Aggregate Demand and Supply Functions): कुल मांग वह कुल खर्च है जो अर्थव्यवस्था में उपभोक्ताओं, निवेशकों, सरकार और विदेशों से आता है। यह उपभोक्ता खर्च, सरकारी खर्च, निवेश और निर्यात पर आधारित है। कुल आपूर्ति वह मात्रा है जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न उत्पादन स्तरों पर उपलब्ध होती है।

केन्सियन दृष्टिकोण में, जब कुल मांग कुल आपूर्ति से कम होती है, तो उत्पादन और रोजगार में कमी होती है, जिससे बेरोजगारी उत्पन्न होती है। इसके विपरीत, जब कुल मांग अधिक होती है, तो मुद्रास्फीति का खतरा पैदा होता है।

प्रभावी मांग (Effective Demand): केन्सियन सिद्धांत के अनुसार, "प्रभावी मांग" वह वास्तविक मांग होती है जो अर्थव्यवस्था में उत्पादन और रोजगार को प्रभावित करने में सक्षम है। यदि प्रभावी मांग कम होती है, तो इससे बेरोजगारी और उत्पादन में कमी हो

सकती है। इस सिद्धांत के तहत, सरकारी खर्च और निवेश में वृद्धि के माध्यम से कुल मांग को बढ़ाना आवश्यक होता है, ताकि बेरोजगारी और आर्थिक मंदी से बचा जा सके।

9.15 मुख्य शब्द

1. **केन्सियन सिद्धांत (Keynesian Theory)** - यह सिद्धांत अर्थव्यवस्था के उत्पादन और रोजगार स्तरों को प्रभावित करने वाली कुल मांग और आपूर्ति के संबंध को समझाता है। जॉन मेनार्ड केन्स द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धांत आर्थिक संकटों से उबारने के लिए सरकारी हस्तक्षेप को आवश्यक मानता है।
2. **कुल मांग (Aggregate Demand)** - यह अर्थव्यवस्था में सभी स्तरों पर वस्तुओं और सेवाओं के लिए कुल मांग को दर्शाता है। इसमें उपभोक्ता खर्च, सरकारी खर्च, निवेश और निर्यात-आयात शामिल हैं।
3. **कुल आपूर्ति (Aggregate Supply)** - यह अर्थव्यवस्था में उपलब्ध उत्पादन की कुल मात्रा है, जो विभिन्न स्तरों पर उत्पादन करने के लिए सक्षम होती है।
4. **प्रभावी मांग (Effective Demand)** - यह वह कुल मांग है जो वास्तव में अर्थव्यवस्था में उत्पादन और रोजगार को प्रभावित करती है। यदि यह मांग पर्याप्त नहीं होती है, तो बेरोजगारी और उत्पादन में कमी हो सकती है।
5. **बेरोजगारी (Unemployment)** - जब कुल मांग कुल आपूर्ति से कम होती है, तब उत्पादन और रोजगार में कमी होती है, जिससे बेरोजगारी उत्पन्न होती है।
6. **मुद्रास्फीति (Inflation)** - जब कुल मांग कुल आपूर्ति से अधिक होती है, तो इससे कीमतों में वृद्धि होती है, जिसे मुद्रास्फीति कहते हैं।
7. **सरकारी हस्तक्षेप (Government Intervention)** - केन्स के अनुसार, सरकार को अर्थव्यवस्था को स्थिर करने के लिए सार्वजनिक खर्च और निवेश बढ़ाना चाहिए।
8. **स्वचालित संतुलन (Automatic Equilibrium)** - केन्सियन सिद्धांत के अनुसार, बाजारों में स्वचालित रूप से संतुलन स्थापित नहीं होता है, और इसके लिए सक्रिय सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक होता है।

9.16 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1: केन्सियन सिद्धांत का उद्देश्य यह समझाना है कि कुल मांग और आपूर्ति के बीच का संबंध अर्थव्यवस्था के उत्पादन और रोजगार पर कैसे असर डालता है।जॉन मेनार्ड केन्स ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया, जिसमें उन्होंने कहा कि अर्थव्यवस्था

स्वचालित रूप से पूर्ण रोजगार की स्थिति तक नहीं पहुंचती। इसके लिए सरकार को सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करना पड़ता है, खासकर मंदी के समय।

उत्तर 2: कुल मांग (AD) वह कुल खर्च है जो अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों द्वारा किया जाता है, जैसे उपभोक्ता खर्च, सरकारी खर्च, निवेश और निर्यात। कुल आपूर्ति (AS) वह उत्पादन है जो अर्थव्यवस्था विभिन्न स्तरों पर उपलब्ध कर सकती है। जब कुल मांग कुल आपूर्ति से कम होती है, तो बेरोजगारी और मंदी की स्थिति उत्पन्न होती है।

उत्तर 3: प्रभावी मांग वह वास्तविक मांग है जो अर्थव्यवस्था में उत्पादन और रोजगार को प्रभावित करती है। जब प्रभावी मांग कम होती है, तो इससे उत्पादन में कमी और बेरोजगारी उत्पन्न होती है। केन्सियन सिद्धांत के अनुसार, सरकार को प्रभावी मांग बढ़ाने के लिए सार्वजनिक खर्च और निवेश में वृद्धि करनी चाहिए।

उत्तर 4: केन्सियन सिद्धांत में सरकार का हस्तक्षेप महत्वपूर्ण है क्योंकि यह आर्थिक मंदी, बेरोजगारी और अन्य संकटों से उबरने के लिए आवश्यक होता है। सरकार को सार्वजनिक खर्च और निवेश बढ़ाकर कुल मांग में वृद्धि करनी चाहिए, ताकि अर्थव्यवस्था में उत्पादन और रोजगार की स्थिति सुधरे।

उत्तर 5: केन्सियन सिद्धांत के अनुसार, जब कुल मांग कम होती है, तो बेरोजगारी उत्पन्न होती है। इसके विपरीत, जब कुल मांग कुल आपूर्ति से अधिक हो जाती है, तो मुद्रास्फीति (Inflation) का खतरा पैदा हो सकता है, क्योंकि अधिक मांग के कारण वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें बढ़ सकती हैं।

9.17 *संदर्भ सूची*

- शर्मा, आर. (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और विकास.* नई दिल्ली: हिंदी साहित्य प्रकाशन।
- चौधरी, एस. (2021). *कींस का उत्पादन और रोजगार सिद्धांत: एक समग्र दृष्टिकोण.* मुंबई: अज्ञेय पुस्तकालय।
- सिंह, राजीव. (2019). *समग्र माँग-पूर्ति फलन: आर्थिक विकास के सिद्धांत.* दिल्ली: प्रगति प्रकाशन।
- कुमार, अ. (2020). *आर्थिक नीति और रोजगार: कींस का सिद्धांत.* जयपुर: उपदेश प्रकाशन।

- वर्मा, प्रवीण. (2023). *भारतीय अर्थव्यवस्था और रोजगार के अवसर: समग्र दृष्टिकोण.* नई दिल्ली: दृष्टि पुस्तकालय।

9.18 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1.कींस के रोजगार सिद्धान्त की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

Explain in brief the Employment Theory of Keynes b

2. कीस के रोजगार सिद्धान्त का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

Critically discuss the Keynesian Theory of Employment

3. कींस द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की अल्पविकसित देशों में उपयुक्तता की विवेचना कीजिए।

Explain the relevence of the Keynesian Theory of Employment for underdeveloped economics?

4. क्या कींस का रोजगार सिद्धान्त अर्ध-विकसित देशों में लागू होता है? तर्क सहित व्याख्या कीजिए।

Is Keynesian Employment Theory applicable in underdeveloped countries? Explain with arguments.

5. निम्नलिखित धारणाओं की 100 शब्दों में व्याख्या कीजिए -

(i) प्रभावपूर्ण माँग (Effective Demand) 1200

(i) न्यून रोजगार सन्तुलन (Under Employment Equilibrium)

(iii) उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम (Psychological Law of Consumption)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रभावपूर्ण माँग से आप क्या समझते हैं?

What do you mean by Effective demand.

2. न्यून रोजगार सन्तुलन क्या है?

What is under employment equilibrium.

3. उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम क्या है?

What is psychological law of consumption.

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आय में वृद्धि के साथ-साथ उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति किस प्रकार की रहती है-

(अ) बढ़ती हुई (ब) घटती हुई
(स) स्थिर (द) उपर्युक्त सभी।
2. कीस का सामान्य सिद्धान्त कब प्रकाशित हुआ-
(अ) सन् 1776 में (ब) सन् 1803 में
(स) सन् 1930 में (द) सन् 1936 में।
3. कींस ने रोजगार के स्तर में वृद्धि हेतु किसे महत्वपूर्ण माना है-
(अ) समग्र माँग कीमत को (ब) समग्र पूर्ति कीमत को
(स) उपर्युक्त दोनों को (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
4. निम्न में से कौन सा उद्देश्य ब्याज दर को सर्वाधिक प्रभावित करता है-
(अ) लेनदेन उद्देश्य (ब) सावधानी उद्देश्य
(स) सट्टा उद्देश्य (द) उपर्युक्त सभी ।
5.कींस द्वारा सन् 1936 में लिखित पुस्तक निम्न में से कौन सी है-
(अ) वेल्थ ऑफ नेशन्स (ब) रोजगार, ब्याज और मुद्रा का सामान्य सिद्धान्त
(स) अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।
(उत्तर- 1. (ब), 2. (द), 3. (स), 4. (स), 5. (ब)]

इकाई -10
उपभोग फलन
(Consumption Function)

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम
10.4 उपभोग नियम के निष्कर्ष
10.5 उपभोग प्रवृत्ति या उपभोग क्रिया
10.6 गुणक की धारणा
10.7 उपभोग प्रवृत्ति को निर्धारित करने वाले तत्व
10.8 उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि के उपाय
10.9 भारत में उपभोग प्रवृत्ति
10.10 सार संक्षेप
10.11 मुख्य शब्द
10.12 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
10.13 संदर्भ सूची
10.14 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रो. कींस ने अपने सामान्य सिद्धान्त या रोजगार सिद्धान्त में उपभोग प्रवृत्ति (उपभोग क्रिया) को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। प्रो. कींस का मत है कि रोजगार के स्तर में वृद्धि के लिए उपभोग प्रवृत्ति का अधिक होना आवश्यक है। मन्दीकाल एवं बेरोजगारी की स्थिति में यदि उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि की जाती है तो अर्थव्यवस्था में प्रभावपूर्ण माँग बढ़ेगी और परिणामस्वरूप रोजगार के स्तर में वृद्धि के साथ-साथ मन्दीकाल की स्थिति स्वतः समाप्त हो जायेगी। इसके विपरीत, प्रभावपूर्ण माँग में कमी होने से रोजगार के अवसरों में कमी आती है तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मन्दीकाल की ओर बढ़ती है। उपभोग प्रवृत्ति की विस्तार से व्याख्या करते हुए प्रो. कोंस ने उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम प्रतिपादित किया है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. समग्र माँग-पूर्ति फलन और प्रभावपूर्ण माँग के सिद्धांतों को समझ सकें।
4. कींस का उत्पादन एवं रोजगार सिद्धांत को समझ सकें।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए प्रभावी नीतियाँ सुझा सकें।

10.3 उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम

उपभोग प्रवृत्ति कुल आय और कुल उपभोग के मध्य सम्बन्ध को प्रकट करती है। प्रो. कींस ने उपभोग प्रवृत्ति के लिए उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम प्रतिपादित किया है। प्रो. कींस के शब्दों में, "मानव नियमानुसार मनुष्य औसतन अपनी आय वृद्धि के साथ ही साथ अपने उपभोग में भी वृद्धि करने का आदी है, किन्तु उपभोग में यह वृद्धि आय में वृद्धि के अनुपात से कम ही होती है।" वस्तुतः उपभोग के इस नियम को एक मानवीय प्रवृत्ति कहा जा सकता है। इस नियम के क्षेत्र को मुख्यतः निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(i) आय में वृद्धि के साथ-साथ यद्यपि उपभोग पर होने वाले व्यय में भी वृद्धि होती है, तथापि उपभोग में यह वृद्धि आय की तुलना में कम होती है। इसका कारण यह है कि आय में वृद्धि के साथ-साथ उपभोक्ता की आवश्यकताओं की अधिकाधिक मात्रा में सन्तुष्टि होती चली जाती है और परिणामस्वरूप उपभोक्ता अपनी बढ़ी हुई समूची आय को उपभोग पर व्यय करना आवश्यक नहीं समझता।

(ii) आय के एक निश्चित न्यूनतम स्तर के बाद प्रत्येक व्यक्ति अपनी भावी आवश्यकताओं के लिए अपनी आय का एक भाग बचत के रूप में रखता है। बचत करने का एक उद्देश्य यह भी किन कि होमर होता है कि व्यक्ति उन्हें प्रतिभूतियों आदि में लगाकर भविष्य में अपनी आय में वृद्धि कर सके। प्रो. कींस के अनुसार बचत एवं विनियोग दोनों साथ-साथ चलते हैं और दोनों बराबर रहते हैं।

(iii) आय में वृद्धि के साथ-साथ व्यक्ति के व्यय एवं बचत दोनों में वृद्धि होती है। व्यक्ति अपनी बढ़ी हुई आय से अपनी आवश्यकताओं की अधिकाधिक मात्रा में सन्तुष्टि करता है, जिससे एक ओर तो उसके व्यय में वृद्धि होती है तथा दूसरी ओर उसकी बचत में भी वृद्धि होती है।

उपभोग प्रवृत्ति की उपर्युक्त तीनों स्थितियों में से प्रथम स्थिति ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है तथा कींस का सामान्य सिद्धान्त भी इसी व्याख्या पर आधारित है। संक्षेप में,

यह कहा जा सकता है **कि व्यक्ति की आय में वृद्धि होने पर वह अपनी सम्पूर्ण सम्पूर्ण बढ़ी हुई आय को उपभोग पर व्यय नहीं करता, वरन् एक भाग को बचत के रूप में रख लेता है।**

10.4 उपभोग नियम के निष्कर्ष

प्रो. कींस के उपभोग सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक नियम से अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, जो कि निम्न प्रकार हैं-

(i) आय एवं उपभोग के मध्य के अन्तराल को निवेश के द्वारा पूरा किया जाना चाहिए (The Gap Between Income and Consumption should be fullfilled by Investment) - कींस के अनुसार उपभोग क्रिया स्थिर रहती है और आय में वृद्धि के साथ-साथ आय तथा उपभोग के मध्य अन्तराल बढ़ता जाता है। अतः रोजगार के स्तर को ऊँचा उठाने एवं मन्दी की स्थिति से बचने के लिये यह आवश्यक है कि इस अन्तराल को निवेश की मात्रा में वृद्धि करके पूरा किया जाना चाहिए।

(ii) राजकीय हस्तक्षेप की आवश्यकता (Need for Government's Interference) - प्रो. कींस का मत है कि आय एवं उपभोग के मध्य पैदा होने वाले अन्तराल को सार्वजनिक व्यय के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। सरकार विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्यों को प्रारम्भ करके अपने व्यय में वृद्धि कर सकती है। इस प्रकार पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाये रखने में राजकीय हस्तक्षेप को प्रो. कींस ने आवश्यक माना है।

(iii) आय एवं उपभोग के मध्य अन्तराल में वृद्धि होने से अर्थव्यवस्था मन्दीकाल की ओर अग्रसर होती है (Economy Moves Towards Depression)- उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियम के अनुसार आय में वृद्धि के कारण आय एवं उपभोग के मध्य अन्तराल में वृद्धि होती है और इसका सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर मन्दी के रूप में बुरा प्रभाव पड़ता है। आय एवं उपभोग के मध्य के अन्तराल में वृद्धि होने से बाजार में प्रभावपूर्ण माँग कम हो जाती है और परिणामस्वरूप पूँजी की सीमान्त उत्पादकता भी घट जाती है। इससे निवेश की मात्रा कम हो जाती है तथा अर्थव्यवस्था में मन्दी एवं बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न होती है।

(iv) व्यापार चक्र (Trade Cycle) के मोड़ बिन्दुओं (Turning Points) की व्याख्या करना सम्भव है- कींस के उपभोग नियम के द्वारा व्यापार चक्र के मोड़ बिन्दुओं की व्याख्या की जा सकती है और जब आय एवं उपभोग के मध्य अन्तराल बहुत अधिक बढ़ जाता है, परिणामस्वरूप पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में कमी आ जाती है तब अर्थव्यवस्था तेजी काल से मन्दी काल की ओर मुड़ जाती है।

इसी प्रकार मन्दीकाल में यद्यपि लोगों की आय तो कम हो जाती है, किन्तु उपभोग उसी अनुपात में कम नहीं हो पाता, अर्थात् आय और उपभोग का अन्तराल समाप्त हो जाता है और उपभोग, आय से अधिक होने लगता है। जिससे पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि होने लगती है। फलतः अर्थव्यवस्था मन्दी की स्थिति से तेजीकाल की और बढ़ने लगती है।

(v) समृद्ध देशों पर गरीब देशों की तुलना में अधिक प्रभाव (Impact is more on Rich Countries in Comparision to Poor Countries)- उपभोग नियम के बुरे प्रभाव गरीब देशों की तुलना में धनी देशों पर अधिक पड़ते हैं। इसका कारण यह है कि समृद्ध देशों में आय वृद्धि तो तेजी से होती है, जबकि उपभोग उसी अनुपात में नहीं बढ़ता है। फलतः आय एवं उपभोग के मध्य अन्तर तेजी से बढ़ता है और इसके कारण बेरोजगारी एवं मन्दी की स्थिति पैदा हो जाती है। इसके विपरीत गरीब देशों में आय की वृद्धि के साथ-साथ उपभोग भी तेजी से बढ़ता है तथा आय एवं उपभोग के मध्य अन्तराल अधिक नहीं होता। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था एवं रोजगार की स्थिति पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता या बहुत कम पड़ता है।

10.5 उपभोग प्रवृत्ति या उपभोग क्रिया

उपभोग प्रवृत्ति या उपभोग क्रिया यह बताती है कि आय में परिवर्तन होने से उपभोग किस प्रकार से परिवर्तित होता है। दूसरे शब्दों में, **उपभोग प्रवृत्ति कुल आय और कुल उपभोग के मध्य सम्बन्ध को प्रकट करती है। यह एक ऐसी अनुसूची या सारणी है** जो कुल आय के भिन्न-भिन्न स्तरों पर उपभोग की भिन्न-भिन्न मात्राओं को व्यक्त करती है। उपभोग प्रवृत्ति एवं आय में "फलनात्मक सम्बन्ध" (Functional Relation) होता है, अर्थात् जब आय में वृद्धि होती है, तब उपभोग भी बढ़ता है। इसके विपरीत, यदि आय घटती है तो उपभोग भी घटता है। जिस आय स्तर पर उपभोग और आय बराबर होते हैं, उसे **शून्य अन्तराल बिन्दु** (Break-even Point) कहते हैं। उपभोग फलन को निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जाता है:

$$C=f(y)$$

इस सूत्र में c=उपभोग,f= फलन, y =आय है।

आय एवं उपभोग के मध्य सम्बन्ध और सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति की दर को सारणी-एक में कल्पित आँकड़ों के द्वारा समझाया गया है।

तालिका-एक से स्पष्ट है कि जब आय का स्तर 800 रुपये रहता है, तब उपभोग स्तर आय से अधिक है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गरीबी की स्थिति में प्रायः व्यय का स्तर आय से अधिक रहता है, किन्तु जब आय का स्तर 1000 रुपये है, तब आय और उपभोग

स्तर बराबर है। यह स्थिति शून्य अन्तराल बिन्दु को दर्शाती है। इसके बाद आय एवं उपभोग स्तर, दोनों में वृद्धि होती है, किन्तु उपभोग की तुलना में आय स्तर अधिक तेजी से बढ़ता है। तालिका के अनुसार जब आय 1100 रुपए होती है तब उपभोग स्तर 1090 रुपये और जब आय 1200 रुपए होती है तब उपभोग स्तर 1170 रुपए होता है। यही क्रम आगे भी चलता रहता है तथा **आय एवं उपभोग के मध्य अन्तराल में क्रमशः वृद्धि होती जाती है।**

तालिका-एक

उपभोग प्रवृत्ति (रुपये में)

आय स्तर	उपभोग स्तर	सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति
800	850	--
900	920	70/100 = 0.7
1000 (शून्य अन्तराल)	1000	80/100 = 0.8
1100	1090	90/100 = 0.9
1200	1170	80/100 = 0.8
1300	1240	70/100 = 0.7
1400	1300	60/100 = 0.6
1500	1350	50/100 = 0.5

उपभोग प्रवृत्ति या उपभोग क्रिया को रेखाचित्र एक के द्वारा सरलता से समझा जा सकता है। रेखाचित्र एक में OX अक्ष पर आय स्तर एवं OY अक्ष पर उपभोग एवं बचत स्तर को दर्शाया गया है। रेखा CC वास्तविक आय-उपभोग रेखा है जो यह बताती है कि आय में वृद्धि होने से व्यक्ति वास्तव में कितना उपभोग करता है। ०० रेखा बिन्दु से 45° डिग्री का कोण बनाने वाली सन्तुलन रेखा है जो प्रत्येक बिन्दु पर आय एवं उपभोग के बराबर रहने की प्रवृत्ति को दर्शाती है। CC रेखा एवं OQ रेखा E बिन्दु एक-दूसरे को काटती है, जो कि शून्य अन्तराल बिन्दु को दर्शाता है, अर्थात E बिन्दु पर आय एवं उपभोग बराबर है। E बिन्दु वास्तविक उपभोग रेखा को दो भागों में बाँटता है. यथा CE एवं EC । रेखा का CE भाग यह बताता है कि उपभोक्ता का उपभोग स्तर आय से अधिक है और EC भाग यह दर्शाता है कि आय उपभोग स्तर से अधिक है। यदि उपभोक्ता की आय OM' है तब उपभोग स्तर KM होगा और इस स्थिति में आय-उपभोग अन्तराल या बचत NK होगी।

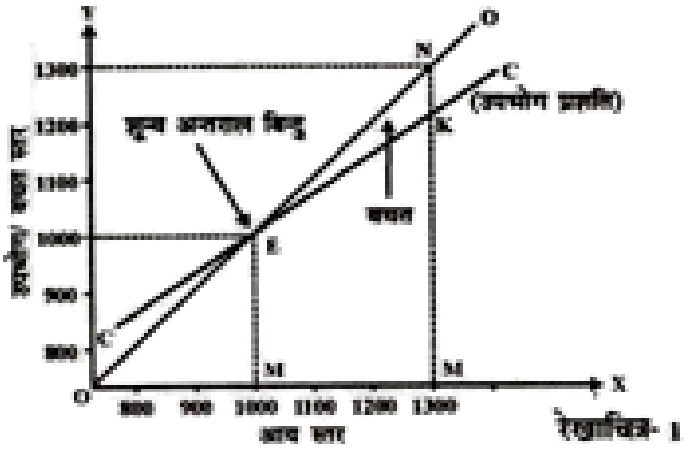

रेखाचित्र- 1

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शून्य अन्तराल बिन्दु (E) के बाद वास्तविक उपभोग रेखा (CC) आय में वृद्धि के साथ-साथ सन्तुलन उपभोग रेखा (OQ) से नीचे रहती है, जो यह तथ्य दर्शाती है कि आय में वृद्धि के साथ-साथ उपभोग में वृद्धि होती है, किन्तु उस

अनुपात में नहीं जितनी की आय में। आय एवं उपभोग में इस अन्तर की पूर्ति विनियोग द्वारा होनी चाहिए, अन्यथा आय के उच्च स्तर को बनाये रखना सम्भव नहीं होगा।

प्रश्न 1: उपभोग कार्य (Consumption Function) क्या है?

उपभोग प्रवृत्ति (Average Propensity to Consume)

औसत उपभोग प्रवृत्ति से तात्पर्य कुल आय एवं कुल उपभोग के अनुपात से है। औसत उपभोग प्रवृत्ति यह बताती है कि विभिन्न आय स्तरों पर कितना भाग उपभोग किया जाता है। उदाहरणार्थ यदि किसी समय विशेष में कुल आय 10,000 करोड़ रुपये एवं कुल व्यय 8,200 करोड़ रुपये है। इस दशा में औसत उपभोग प्रवृत्ति की गणना निम्न प्रकार की जा सकती है-

औसत उपभोग प्रवृत्ति= उपभोग की कुल मात्रा (C) /आय की कुल मात्रा (Y)

8,200 /10,000 = 0.82 या 82%

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume): -

आय में होने वाली अतिरिक्त वृद्धि के परिणामस्वरूप उपभोग में होने वाली अतिरिक्त वृद्धि को सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कहते हैं। अतः यह आय में होने वाले परिवर्तनों के कारण औसत उपभोग प्रवृत्ति में होने वाले परिवर्तन की दर होती है। दूसरे शब्दों में, सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति को आय में होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उपभोग व्यय में होने वाले परिवर्तनों का अनुपात या दर कहा जाता है। उदाहरणार्थ -

यदि कुल आय 20,000 करोड़ रुपये से बढ़कर 22,000 करोड़ रुपये और कुल उपभोग व्यय 16,000 करोड़ से बढ़कर 17,400 करोड़ हो जाता है। ऐसी स्थिति में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति की गणना निम्न प्रकार की जा सकती है।

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति = उपभोग की मात्रा में हुई वृद्धि ΔC /आय की मात्रा में हुई वृद्धि ΔY

=17,400-16,000 / 22000-20,000 =1,400/2000

= 0.007 या 0.7 प्रतिशत

कीस के रोजगार सिद्धान्त में औसत उपभोग प्रवृत्ति की तुलना में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का महत्व अधिक है। इस सन्दर्भ में **प्रो. कींस** का मत है कि **सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति जितनी अधिक होती है प्रभावपूर्ण माँग भी उतनी ही अधिक होती है** और परिणामस्वरूप **उत्पादन, आय एवं रोजगार का स्तर भी उतना ही ऊँचा होता है।**

प्रश्न 2: **सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume - MPC) क्या है?**

10.6 *गुणक की धारणा*

प्रो. कींस ने अपने सिद्धान्त में रोजगार के विभिन्न स्तरों पर आय एवं उपभोग में साधारण रूप से एक निश्चित सम्बन्ध स्थापित किया है। कींस के अनुसार यदि उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति ज्ञात है तो यह ज्ञात किया जा सकता है कि विनियोग में एक निश्चित वृद्धि करने पर आय एवं रोजगार में कितनी वृद्धि होगी अर्थात् एक दी हुई उपभोग प्रवृत्ति पर आय में होने वाली वृद्धि (Δy) और विनियोग में की जाने वाली वृद्धि (ΔI) में एक निश्चित अनुपात होता है। इस अनुपात को ही विनियोग गुणक कहते हैं। विनियोग गुणक का सूत्र निम्न प्रकार है:-

k =1 /1-MPC अथवा k = MPS

इस सूत्र में: - k = गुणक,

MPC =सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति,

MPS =सीमान्त बचत प्रवृत्ति ।

10.7 उपभोग *प्रवृत्ति को निर्धारित करने वाले तत्व*

प्रो. कींस की यह मान्यता है कि अल्पकाल में उपभोग प्रवृत्ति अपरिवर्तित रहती है। फलतः आय एवं उपभोग के मध्य अन्तराल को केवल विनियोग के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है, किन्तु इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि अल्पकाल में एक उपभोक्ता

की उपभोग प्रवृत्ति नहीं बदलती, किन्तु उपभोग व्यय की मात्रा एवं स्वरूप को बदला जा सकता है। अतः यह आवश्यक है कि उन तत्वों का अध्ययन किया जाये जिनसे उपभोग प्रवृत्ति एवं उपभोग की मात्रा प्रभावित होती है। ये तत्व निम्न प्रकार है-

(i) धन का वितरण (Distribution of Income) - प्रायः यह देखा जाता है कि समाज में धन एवं आय का जितना अधिक असमान वितरण होता है, उपभोग प्रवृत्ति भी उतनी ही निम्न होती है इसके विपरीत, धन एवं आय का जितना अधिक समान वितरण होता है उपभोग प्रवृत्ति भी उतनी ही अधिक होती हैं। इसका कारण यह है कि जब धनी व्यक्तियों की आय में वृद्धि होती है तब उपभोग व्यय बहुत कम बढ़ता है। इसके विपरीत, जब गरीब व्यक्तियों की आय बढ़ती है तब उपभोग भी तेजी से बढ़ता है।

(ii) मौद्रिक आय में वृद्धि (Increase in Monetary Income) - उपभोग प्रवृत्ति पर मौद्रिक आय का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। जब समुदाय या समाज की आय में वृद्धि होती है, तब आय की वृद्धि के साथ उपभोग भी बढ़ता है। इसके विपरीत जब आय में कमी होती है, तब व्यय भी कम होता है।

(iii) बचत के प्रति दृष्टिकोण - यदि किसी समाज में बचत की प्रवृत्ति को बहुत अच्छा माना जाता है, तब उपभोग प्रवृत्ति बहुत कम होती है। कारण यह है कि आय में वृद्धि के साथ-साथ व्यक्ति बचत अधिक करता है, जिससे उपभोग में वृद्धि कम होती है। प्रो. कींस के अनुसार यदि उपभोग में वृद्धि करना है तो इस प्रकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना आवश्यक है।

(iv) मूल्य स्तर में परिवर्तन (Changes in Price Level) - मूल्य स्तर और उपभोग प्रवृत्ति में घनिष्ठ सम्बन्ध है। **जब अर्थव्यवस्था में मूल्य स्तर बढ़ता है, तब समाज की वास्तविक आय कम हो जाती है और परिणामस्वरूप उपभोग प्रवृत्ति घट जाती है।** इसके विपरीत, जब मूल्य स्तर घटता है तो वास्तविक आय बढ़ जाती है और परिणामस्वरूप उपभोग भी बढ़ जाता है।

(v) ऋण ग्रस्तता (Indebtedness) - समाज में व्याप्त ऋण-ग्रस्तता के स्तर से भी उपभोग प्रवृत्ति प्रभावित होती है। यदि किसी समाज में अधिकांश व्यक्ति ऋणग्रस्त है, तब आय में वृद्धि होने के बावजूद भी उपभोग प्रवृत्ति नहीं बढ़ती। इसका कारण यह है कि बढ़ी हुई आय का अधिकांश भाग ऋण चुकाने में चला जाता है। फलतः उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि नहीं होती है।

(vi) समाज में परिसम्पत्तियों का संग्रह (Hoarding of Assets in the Society) - यदि समाज के सभी व्यक्तियों के पास नकद एवं स्थाई परिसम्पत्तियों का संग्रह बहुत अधिक होता है, तब उपभोग प्रवृत्ति भी अधिक होती है। इसका कारण यह है कि ऐसी स्थिति में व्यक्ति आय बढ़ने पर परिसम्पत्तियों को खरीदने के प्रति आकर्षित नहीं होता

और बढ़ी हुई आय को उपभोग पर व्यय करना उचित समझता है। इसके विपरीत, यदि समाज में परिसम्पत्तियों का संग्रह कम है, तो उपभोग प्रवृत्ति कम रहती है।

(vii) रुचि एवं फैशन में परिवर्तन (Changes in Habits & Fashion) - उपभोक्ताओं की रुचि एवं फैशन में परिवर्तन होने से उपभोग प्रवृत्ति बढ़ती है, क्योंकि उपभोक्ता बदली हुई रुचि एवं फैशन के कारण अधिक व्यय करता है। इस सन्दर्भ में प्रो. कींस का मत है कि अल्पकाल में उपभोक्ताओं की रुचि एवं फैशन में परिवर्तन नहीं होता और फलतः उपभोग प्रवृत्ति पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता ।

(viii) करारोपण (Taxation) - अधिक मात्रा में कर लगाने से उपभोक्ताओं की वास्तविक आय कम हो जाती है। जहाँ प्रत्यक्ष करों का सीधा प्रभाव उपभोक्ता की आय पर पड़ता है वहीं अप्रत्यक्ष करों से वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है। दोनों ही स्थितियों **में करारोपण से उपभोग प्रवृत्ति घटती है और करों से मुक्ति मिलने पर उपभोग प्रवृत्ति बढ़ती है।**

(ix) सामाजिक बीमा (Social Insurance) सामाजिक बीमा का उपभोग प्रवृत्ति पर मिश्रित प्रभाव पड़ता है। जब सामाजिक बीमा की किस्त जमा करनी पड़ती है, तब उपभोग के लिए उपलब्ध राशि कम हो जाती है जिससे उपभोग प्रवृत्ति कम हो जाती है। इसके विपरीत सामाजिक बीमा से व्यक्ति भविष्य की अनिश्चितताओं से मुक्त हो जाता है, फलतः वह भविष्य के लिए बचत नहीं करता और परिणामस्वरूप उसकी उपभोग प्रवृत्ति बढ़ जाती है।

(x) ब्याज दर (Rate of Interest) **प्रो. कींस** का मत है कि ब्याज दर के कारण उपभोग प्रवृत्ति पर जो प्रभाव पड़ता है, वह बहुत जटिल एवं अनिश्चित होता है। सामान्यतः यदि व्याज दर ऊँची है तो व्यक्ति लाभ कमाने के उद्देश्य से अधिक बचत करते हैं और परिणामस्वरूप उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि नहीं होती। इसका कारण यह है कि **अधिक ब्याज दर पर उपभोग करने की तुलना में बचत करना लाभप्रद होता है।**

(xi) अप्रत्याशित लाभ एवं हानियाँ (Un-expected Profit and Losses) - सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि अप्रत्याशित लाभ होने पर उपभोग प्रवृत्ति ऊँची होती है और अप्रत्याशित हानि पर उपभोग प्रवृत्ति गिरती है।

(xii) प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration Effect) - सामान्यतः प्रदर्शन प्रभाव से उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि होती है। जब उच्च वर्ग या धनी व्यक्तियों द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं का प्रभाव गरीब या निम्न वर्ग के लोगों पर पड़ता है तब निम्न वर्ग के लोग

भी उन वस्तुओं को खरीदने का प्रयास करते हैं। फलतः इससे उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि होती है। इसके साथ ही विज्ञापन एवं प्रचार-प्रसार से भी उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि होती है।

(xiii) मनोवैज्ञानिक तत्व (Psychological Elements) अनेक मनोवैज्ञानिक तत्वों का भी उपभोग प्रवृत्ति पर प्रभाव पड़ता है। इन तत्वों में से कुछ उपभोग प्रवृत्ति को सीमित रखते हैं और कुछ वृद्धि करते हैं। उदाहरणार्थ अच्छे जीवन स्तर, अपनी समृद्धि को प्रदर्शित करने की अभिलाषा, समाज में प्रतिष्ठा या उच्च स्थान प्राप्त करने की इच्छा आदि से उपभोग प्रवृत्ति बढ़ती है। इसके विपरीत भविष्य की कठिनाइयों से सुरक्षा, उत्तराधिकारियों की समृद्धि की आकांक्षा, कंजूस प्रवृत्ति आदि से उपभोग प्रवृत्ति कम होती है।

प्रश्न 3: उपभोग और बचत के बीच क्या संबंध है?

प्रश्न 4: उपभोग कार्य का आर्थिक नीति पर क्या प्रभाव होता है?

10.8 *उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि के उपाय*

उपभोग प्रवृत्ति को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये तत्व अल्पकाल में अधिक परिवर्तित नहीं होते। अतः **प्रो. कींस** की यह मान्यता है कि अल्पकाल में उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है, गलत नहीं है। फिर भी **प्रो. कींस** ने दीर्घकाल में उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि करने के निम्नलिखित उपाय सुझाए है:

(i)आय का गरीबों के पक्ष में हस्तान्तरण करना या पुनर्वितरण करना। चूंकि गरीब वर्ग की सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। अतः यदि विभिन्न **राजकोषीय नीतियों** के द्वारा आय का गरीबों के पक्ष में पुनर्वितरण किया जाता है, तो त उपभोग प्रवृत्ति में निश्चित वृद्धि होती है।

(ii) मजदूरी नीति के द्वारा भी श्रमिक एवं गरीब वर्ग की आय में वृद्धि की जा सकती है। इससे उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि का होना स्वाभाविक है।

(iii) यदि देश में **सामाजिक सुरक्षा** (Social Security) के व्यापक उपाय किये जाते हैं तो जन-साधारण का बचत के प्रति मोह कम होता है और वे अधिक व्यय करते हैं। फलतः उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि होती है।

(iv) जन-साधारण को अधिकाधिक मात्रा में **ऋण सुविधाएँ उपलब्ध** कराने से भी उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि होती है।

(v)शहरीकरण और निर्मित वस्तुओं के विज्ञापन एवं प्रचार-प्रसार से भी उपभोक्ताओं की इच्छाओं में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप उपभोग प्रवृत्ति बढ़ती है।

10.9 भारत *में उपभोग प्रवृत्ति*

भारत एक विकासशील देश है। सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद देश में तीव्र आर्थिक विकास के उद्देश्य से 1 अप्रैल, 1951 से नियोजित विकास प्रक्रिया प्रारम्भ की गई। अभी तक ग्यारह पंचवर्षीय योजनाएँ क्रियान्वित की जा चुकी हैं तथा बारहवी योजना का कार्य प्रगति पर है।

अन्य विकासशील देशों के समान ही भारत में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। निम्न आय स्तर पर लोग उपभोग पर अधिक व्यय करते हैं तथा बचत बहुत कम होती है। दूसरे शब्दों में, भारत में गरीबी के कारण उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (Propensity to Consume) बहुत अधिक है। प्रो. कीस का भी यही मत है कि कम आय पर उपभोग प्रवृत्ति अधिक रहती है तथा आय में वृद्धि के साथ-साथ इस प्रवृत्ति में कमी होती जाती है। भारत में 1950-51 से 2010-11 की अवधि में प्रतिव्यक्ति आय एवं घरेलू क्षेत्र में बचत दर को तालिका-दो में दर्शाया गया है: -

तालिका - दो
भारत में आय एवं बचत दर

वर्ष	वर्तमान मूल्यों पर प्रति व्यक्ति आय (रु.में)	घरेलू क्षेत्र में बचत दर (राष्ट्रीय आय से प्रतिशत)
1950-51	264	9.5
1970-71	763	14.3
1990-91	5,621	22.9
2010-11 (अनुमान)	53,331	32.3

स्रोत : Economic Survey 2011-12

तालिका-दो से स्पष्ट है कि सन् 1950-51 से 2010-11 की अवधि में प्रति व्यक्ति आय एवं घरेलू बचत दर, दोनों में वृद्धि हुई है। दूसरे शब्दों में, इस अवधि में आय में वृद्धि के साथ-साथ सीमान्त बचत प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है, अर्थात् सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कम हुई है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि देश में 1990 के पूर्व पश्चिमी उपभोक्तावाद का प्रभाव नहीं पड़ा तथा जन-साधारण ने उपभोग की तुलना में बचतों को अधिक महत्व दिया।

किन्तु 1990-91 से 2010-11 के मध्य तुलना करने से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ प्रति व्यक्ति आय में तेजी से वृद्धि हुई है, वहीं बचत दर में कमी आई है, अर्थात् सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सन् 1991 में अपनाई गई **नई आर्थिक नीति** (भूमण्डलीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण)

के परिणामस्वरूप देश में पश्चिमी उपभोक्तावाद का प्रभाव पड़ा है और उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है।

प्रश्न 5: उपभोग कार्य में आय के परिवर्तन के प्रभाव को कैसे मापा जाता है?

10.10 उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि के उपाय

उपभोग प्रवृत्ति को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये तत्व अल्पकाल में अधिक परिवर्तित नहीं होते। अतः **प्रो. कींस** की यह मान्यता है कि अल्पकाल में उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है, गलत नहीं है। फिर भी **प्रो. कींस** ने दीर्घकाल में उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि करने के निम्नलिखित उपाय सुझाए है:

(i)आय का गरीबों के पक्ष में हस्तान्तरण करना या पुनर्वितरण करना। चूंकि गरीब वर्ग की सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। अतः यदि विभिन्न **राजकोषीय नीतियों** के द्वारा आय का गरीबों के पक्ष में पुनर्वितरण किया जाता है, तो त उपभोग प्रवृत्ति में निश्चित वृद्धि होती है।

(ii) मजदूरी नीति के द्वारा भी श्रमिक एवं गरीब वर्ग की आय में वृद्धि की जा सकती है। इससे उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि का होना स्वाभाविक है।

(iii) यदि देश में **सामाजिक सुरक्षा** (Social Security) के व्यापक उपाय किये जाते हैं तो जन-साधारण का बचत के प्रति मोह कम होता है और वे अधिक व्यय करते हैं। फलतः उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि होती है।

(iv)जन-साधारण को अधिकाधिक मात्रा में **ऋण सुविधाएँ उपलब्ध** कराने से भी उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि होती है।

(v)शहरीकरण और निर्मित वस्तुओं के विज्ञापन एवं प्रचार-प्रसार से भी उपभोक्ताओं की इच्छाओं में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप उपभोग प्रवृत्ति बढ़ती है।

10.11 सार *संक्षेप*

उपभोग प्रवृत्ति (Consumption Function) एक आर्थिक सिद्धांत है, जो यह बताता है कि किसी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ताओं का उपभोग स्तर उनके कुल आय के साथ किस प्रकार जुड़ा होता है। इसे सबसे पहले जॉन मेनार्ड केन्स ने प्रस्तुत किया था। केन्स के अनुसार, उपभोग कार्य आय और उपभोग के बीच एक स्थिर और पूर्वानुमानित संबंध स्थापित करता है।

उपभोग प्रवृत्ति के अनुसार, जब किसी व्यक्ति की आय बढ़ती है, तो वह अपनी आय का एक हिस्सा उपभोग में खर्च करता है, जबकि बाकी बचत के रूप में संचित होता है। लेकिन यह ध्यान में रखने योग्य है कि उपभोग में वृद्धि का अनुपात आय में वृद्धि के अनुपात से हमेशा बराबर नहीं होता। इसका मतलब यह है कि आय में वृद्धि के साथ उपभोग भी बढ़ता है, लेकिन उतनी ही तेज़ी से नहीं। केन्स के सिद्धांत में, यह देखा गया है कि अधिकतर लोग अपनी आय के एक हिस्से को बचत के रूप में रखते हैं और केवल कुछ हिस्सा उपभोग में खर्च करते हैं।

उपभोग प्रवृत्ति का उपयोग न केवल व्यक्तिगत उपभोग पैटर्न को समझने के लिए किया जाता है, बल्कि यह नीति निर्धारण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार उपभोग को बढ़ाने के लिए नीतियां बनाती है, तो उसे यह समझने में मदद मिलती है कि आय में वृद्धि से उपभोग में कितना बदलाव होगा।

इस प्रकार, उपभोग कार्य का उद्देश्य उपभोक्ताओं के उपभोग व्यवहार और आय के बीच के रिश्ते को स्पष्ट करना और इसे आर्थिक नीति निर्धारण में लागू करना है।

10.12 *मुख्य शब्द*

1.उपभोग (Consumption): उपभोग का मतलब है उपभोक्ताओं द्वारा अपनी आय का वह हिस्सा जो वे वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च करते हैं। यह आर्थिक गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण भाग है और आर्थिक विकास को प्रभावित करता है।

2.आय (Income): आय वह धन है जो किसी व्यक्ति या परिवार को किसी निश्चित समय अवधि में प्राप्त होता है। यह उपभोग और बचत के निर्णय को प्रभावित करता है।

3.बचत (Savings): बचत वह हिस्सा है जो उपभोक्ता अपनी आय का उपभोग करने के बाद संचित करता है। यह आर्थिक स्थिरता और भविष्य के निवेश का आधार बनता है।

4.मूल्य स्थिरता (Marginal Propensity to Consume - MPC): यह एक आर्थिक माप है जो यह दर्शाता है कि किसी व्यक्ति की अतिरिक्त आय का कितने प्रतिशत हिस्से का उपयोग उपभोग में किया जाएगा। इसे "सीमांत उपभोग प्रवृत्ति" भी कहते हैं।

5.मूल्य स्थिरता (Marginal Propensity to Save - MPS): यह भी एक माप है जो यह दर्शाता है कि किसी व्यक्ति की अतिरिक्त आय का कितने प्रतिशत हिस्से को बचत के रूप में संचित किया जाएगा।

6.सीमांत उपभोग (Marginal Consumption): सीमांत उपभोग वह अतिरिक्त उपभोग होता है जो एक अतिरिक्त इकाई आय पर किया जाता है। यह उपभोग कार्य के अध्ययन में महत्वपूर्ण है।

7.उपभोग कार्य (Consumption Function): यह एक आर्थिक सिद्धांत है जो उपभोग और आय के बीच के संबंध को दर्शाता है। यह बताता है कि आय में बदलाव के कारण उपभोग में कितनी परिवर्तन होती है।

8.स्थिरता (Stability): उपभोग कार्य के संदर्भ में स्थिरता का मतलब यह है कि उपभोक्ताओं के खर्च और आय के बीच का संबंध सामान्यत: स्थिर रहता है, जो समय के साथ लगातार होता है।

9.आर्थिक नीति (Economic Policy): उपभोग कार्य का अध्ययन सरकारों को उपभोक्ताओं के खर्च व्यवहार को समझने में मदद करता है, जिससे आर्थिक नीतियां और रणनीतियाँ तैयार की जाती हैं।

10.13 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर):

उत्तर 1: उपभोग कार्य एक आर्थिक सिद्धांत है जो यह दर्शाता है कि किसी व्यक्ति या समाज का उपभोग स्तर उसकी आय के स्तर के साथ किस प्रकार जुड़ा होता है। इसे जॉन मेनार्ड केन्स ने प्रस्तुत किया था। केन्स के अनुसार, जब आय बढ़ती है, तो उपभोक्ता अपने उपभोग को बढ़ाते हैं, लेकिन आय में वृद्धि का एक निश्चित हिस्सा बचत के रूप में संचित होता है।

उत्तर 2: सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) वह अनुपात है जो यह दर्शाता है कि एक अतिरिक्त आय इकाई पर उपभोक्ता अपने खर्च में कितना बदलाव करेगा। उदाहरण के लिए, अगर किसी व्यक्ति को 100 रुपये अतिरिक्त मिलते हैं और वह 80 रुपये खर्च करता है, तो MPC 0.8 होगा। इसका मतलब है कि अतिरिक्त आय का 80% हिस्सा उपभोग में जाएगा।

उत्तर 3: उपभोग और बचत के बीच एक उलट संबंध होता है। जब उपभोक्ता अपनी आय का अधिक हिस्सा उपभोग में खर्च करते हैं, तो बचत की मात्रा कम होती है। इसके विपरीत, जब उपभोग कम होता है, तो अधिक आय बचत के रूप में संचित होती है।

उत्तर 4: उपभोग कार्य सरकार को यह समझने में मदद करता है कि आय में वृद्धि के बाद उपभोक्ताओं का उपभोग कैसे प्रभावित होगा। इससे सरकार को नीतियां बनाने में

मदद मिलती है, जैसे कि टैक्स नीतियां, सार्वजनिक खर्च और ब्याज दरों को समायोजित करना, ताकि आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया जा सके।

उत्तर 5: उपभोग कार्य में आय के परिवर्तन के प्रभाव को "सीमांत उपभोग प्रवृत्ति" (MPC) और "औसत उपभोग प्रवृत्ति" (APC) द्वारा मापा जाता है। MPC यह बताता है कि आय में वृद्धि पर उपभोक्ता कितना खर्च करेंगे, जबकि APC कुल आय पर उपभोग का अनुपात दर्शाता है

10.14 *संदर्भ सूची*

- शर्मा, आर. (2022). भारतीय अर्थव्यवस्था: संरचना और विकास. नई दिल्ली: हिंदी साहित्य प्रकाशन।
- चौधरी, एस. (2021). कींस का उत्पादन और रोजगार सिद्धांत: एक समग्र दृष्टिकोण. मुंबई: अज्ञेय पुस्तकालय।
- सिंह, राजीव. (2019). समग्र माँग-पूर्ति फलन: आर्थिक विकास के सिद्धांत. दिल्ली: प्रगति प्रकाशन।
- कुमार, अ. (2020). आर्थिक नीति और रोजगार: कींस का सिद्धांत. जयपुर: उपदेश प्रकाशन।
- वर्मा, प्रवीण. (2023). भारतीय अर्थव्यवस्था और रोजगार के अवसर: समग्र दृष्टिकोण. नई दिल्ली: दृष्टि पुस्तकालय।

10.15 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपभोग क्रिया से आप क्या समझते हैं? इसे निर्धारित करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिए। What do you understand by the consumption function? Explain the factors which determine it.

2. उपभोग प्रवृत्ति की व्याख्या कीजिए। उपभोग प्रवृत्ति को निर्धारित करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिए।

Define the term 'Propensity to Consume'. Discuss the factors which govern Propensity to consume.

3. उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम क्या है ? उन तत्वों की व्याख्या कीजिए जिनसे उपभोग प्रवृत्ति प्रभावित होती है।

What is the Psychological Law of Consumption? Explain the factors which effect propensity to consume.

लघुउत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित की 75 से 100 शब्दों में व्याख्या कीजिए-

(1) उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम । (Psychological Law of Consumption),

(2) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume),

(3) धन के वितरण का उपभोग प्रवृत्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(4) भारत में उपभोग प्रवृत्ति पर टीप दीजिए।

(5) औसत उपभोग प्रवृत्ति एवं सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति में क्या अन्तर है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रोजगार के स्तर में वृद्धि करने के लिए उपभोग प्रवृत्ति कैसी होनी चाहिए-

(अ) अधिक (ब) कम

(स) स्थिर (द) उपर्युक्त सभी ।

2. कीस ने अल्पकाल में उपभोग प्रवृत्ति को कैसा माना है?

(अ) परिवर्तनीय (ब) स्थिर

(स) अनिश्चित (द) उपर्युक्त सभी ।

3. यदि आय एवं उपभोग के मध्य अन्तराल में वृद्धि होती है, तब अर्थव्यवस्था की दिशा क्या रहती है?

(अ) स्थिर (ब) तेजी की ओर

(स) मन्दीकाल की ओर (द) अनिश्चित ।

उत्तर- 1. (अ), 2. (ब), 3. (स))

इकाई -11

सामान्य विनियोग एवं सरकारी व्यय

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 विनियोग के प्रकार या रूप

11.4 विनियोग को प्रोत्साहित करने के उपाय

11.5 सार्वजनिक व्यय पर विभिन्न दृष्टिकोण

11.6 सरकारी या सार्वजनिक व्यय का महत्व

11.7 सार्वजनिक व्यय के दोष

11.8 सार संक्षेप

11.9 मुख्य शब्द

11.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

11.11 संदर्भ ग्रंथ

11.12 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

विनियोग (Appropriation) और **सरकारी व्यय** (Government Expenditure) वित्तीय प्रबंधन और प्रशासन के महत्वपूर्ण तत्व हैं, जो सरकार द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों और योजनाओं के लिए निर्धारित बजट के उपयोग की प्रक्रिया को नियंत्रित करते हैं।

1. **विनियोग (Appropriation)**:

- यह वह प्रक्रिया है, जिसके तहत संसद या विधानमंडल सरकार को एक निर्धारित राशि खर्च करने की अनुमति देती है। यह राशि एक वर्ष के दौरान विभिन्न विभागों और मंत्रालयों द्वारा खर्च की जाती है।
- सरकार को बजट प्रस्ताव (Budget Proposal) प्रस्तुत करने के बाद, संसद या राज्य विधानसभा से विनियोग विधेयक (Appropriation Bill) पास करवाना होता है।
- यदि सरकार को किसी विशेष उद्देश्य के लिए राशि खर्च करनी होती है, तो उसे विशेष रूप से विनियोग विधेयक के माध्यम से अनुमोदन प्राप्त करना होता है।

2. **सरकारी व्यय (Government Expenditure)**:
   - सरकारी व्यय वह राशि है जो सरकार विभिन्न कार्यों, योजनाओं, और कार्यक्रमों के लिए खर्च करती है। यह व्यय सरकार की योजनाओं के निष्पादन में खर्च होता है।
   - सरकारी व्यय में मुख्यतः दो प्रकार होते हैं:
     - **राजस्व व्यय (Revenue Expenditure)**: यह वह व्यय है जो सरकार द्वारा नियमित रूप से किए जाते हैं जैसे वेतन, पेंशन, ब्याज भुगतान आदि।
     - **राजधानी व्यय (Capital Expenditure)**: यह वह व्यय है जो सरकार निवेश, बुनियादी ढांचे, और दीर्घकालिक परियोजनाओं के लिए करती है।

3. **विनियोग और व्यय की प्रक्रिया**:
   - हर साल, सरकार बजट तैयार करती है, जिसमें विभिन्न विभागों और मंत्रालयों के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों का प्रस्ताव किया जाता है।

- संसद में बजट को मंजूरी मिलने के बाद, प्रत्येक मंत्रालय या विभाग के लिए निर्धारित राशि को खर्च करने का अधिकार मिलता है।
- इसके बाद, सरकारी व्यय पर निगरानी रखने के लिए वित्तीय प्रबंधन और लेखा परीक्षण की प्रक्रिया होती है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सरकारी धन का सही तरीके से उपयोग हो रहा है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
- विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
- सामान्य विनियोग प्रक्रिया का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सरकारी व्यय की प्राथमिकताओं और इसके प्रभावों को समझ सकेंगे।
- आर्थिक स्थिरता और संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग के उपायों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

11.3 विनियोग के प्रकार या रूप

(1) प्रेरित एवं स्वायत्त विनियोग (Induced and Autonomous Investment)- प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन या आय के परिवर्तन द्वारा निर्धारित होने वाला विनियोग प्रेरित विनियोग कहलाता है। व्यक्तियों की आय में वृद्धि होने पर प्रभावपूर्ण माँग बढ़ जाती है जिसकी पूर्ति के लिए उद्यमी विनियोग को बढ़ाने हेतु प्रेरित होते हैं। हैं। प्रेरित विनियोग आय स्तर के परिवर्तनों से से प्रभावित होता है। प्रेरित विनियोग सामान्यतया निजी उद्यमियों द्वारा किया जाता है। और यह लाभ से प्रेरित होता है।

स्वायत्त विनियोग आय के परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होता और यह पूंजी व्यय से भी प्रभावित नहीं होता है। स्वायत्त विनियोग को नवीन प्रक्रियाएँ, जनसंख्या की वृद्धि, अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक परिस्थितियाँ, श्रम आंदोलन, दीर्घकालीन संभावनाएँ आदि कारक

प्रभावित करते हैं। आय की मात्रा स्थिर होने पर स्वायत्त विनियोग में परिवर्तन हो सकता है। सड़कों, बांध, नहरों, स्कूलों, अस्पतालों, जनकल्याण कार्यक्रम, अनुसंधान व विकास पर किया जाने वाला दीर्घकालीन विनियोग स्वायत्त विनियोग के उदाहरण हैं।

(2) कुल एवं शुद्ध विनियोग (Gross and Net Investment)- कुल विनियोग से आशय दिये हुए समय में कुल वास्तविक विनियोग की मात्रा से है। सम्पूर्ण वास्तविक विनियोग का उपभोग उत्पादन क्षमता में वृद्धि में नहीं किया जाता है और इसका कुछ भाग टूट-फूट व घिसावट आदि में नष्ट हो जाता है।

शुद्ध विनियोग कुल विनियोग का वह भाग है जो कि अर्थव्यवस्था की कुल उत्पादन क्षमता में हुई वृद्धि को बताता है। कुल विनियोग में से घिसावट व टूट-फूट कम करने पर शुद्ध वृद्धि को बताता है। कुल विनियोग में से घिसावट व टूट-फूट कम करने पर शुद्ध विनियोग ज्ञात हो जाता है। व्यवहार में भी शुद्ध विनियोग सदैव कुल विनियोग से कम रहता है।

(3) निजी एवं सार्वजनिक विनियोग (Private and Public Investment)- निजी विनियोग लाभ की प्रत्याशाओं से प्रभावित होता है। निजी विनियोग दो तत्वों पर निर्भर करता है- (i) पूँजी की सीमान्त उत्पादकता, और (ii) ब्याज की दर। इस विनियोग को तभी बढ़ावा मिलता है जब ब्याज की दर नीची हो तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ऊंची हो। निजी विनियोग वास्तव में प्रेरित विनियोग होता है।

सार्वजनिक विनियोग सरकारी क्षेत्र में किये गये विनियोग को कहते हैं। यह केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों तथा स्थानीय निकायों जैसे- नगर निगम, नगर पालिकाओं आदि के द्वारा किया जाता है। रेलवे, संचार साधनों, स्कूलों, अस्पतालों, सड़कों, पेयजल, स्वच्छता आदि पर किया जाना वाला सरकारी व्यय सार्वजनिक विनियोजन है।

(4) नियोजित एवं अनियोजित विनियोग (Planned and Unplanned Investment)- जब उत्पादन में वृद्धि, भविष्य में लाभ अर्जित करने की आशा से

अर्थव्यवस्था में पूँजीगत माल का विनियोग किया जाये तो उसे नियोजित विनियोग कहा जाता है। इसे ऐच्छिक विनियोग भी कहते हैं। इसके विपरीत जब बाजार में बिक्री के अभाव में कुछ माल बिना बिके रह जाये या अधिक मात्रा में स्टॉक का संचय हो जाये तो उसे अनियोजित विनियोग का अनैच्छिक विनियोग कहते हैं।

विनियोग का निर्धारण (Determination of Investment)

आय स्तर, आय में परिवर्तन, उपभोग प्रवृत्ति, अचल सम्पत्ति का स्टॉक आदि आन्तरिक तत्वों द्वारा प्रेरित विनियोग प्रभावित होता है। जबकि स्वायत्त विनियोग बाह्य तत्वों से प्रभावित होता है। नियोजित एवं युद्धकालीन अर्थव्यवस्था में स्वायत्त विनियोग की मात्रा लाभ प्राप्ति की आशा से प्रभावित नहीं होती, बल्कि कुल विनियोग व स्वायत्त विनियोग के योग पर इसकी मात्रा आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के तत्वों से प्रभावित एवं निर्धारित होती है।

अर्थव्यवस्था में विनियोग की दर को दो शक्तियाँ निर्धारित करती है- ब्याज दर एवं पूँजी की सीमान्त क्षमता। कीन्स का मत है कि विनियोग ब्याज सापेक्ष नहीं है और ब्याज की दर में कमी करके विनियोग को नहीं बढ़ाया जा सकता है। पूँजी की सीमान्त क्षमता ही महत्वपूर्ण है और इसमें व्यावसायिक आशंसाओं का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। अल्पकालीन आशंसाएँ लाभ, माँग, मूल्य, वेतन, ब्याज दर आदि आन्तरिक तत्वों से प्रभावित होती हैं। दीर्घकालीन आशंसाओं पर जनसंख्या में वृद्धि, नवीन प्रक्रिया, विदेशी व्यापार, राजनैतिक परिस्थितियाँ आदि अनेक बाह्य कारणों का प्रभाव पड़ता है।

11.4 विनियोग को प्रोत्साहित करने के उपाय

किसी भी अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं रोजगार का स्तर अपभोग तथा विनियोग पर निर्भर करता है। चूँकि अल्पकाल में उपभोग प्रवृत्ति प्रायः स्थिर रहती है अतः रोजगार में वृद्धि के लिए मुख्य रूप से विनियोग पर ही निर्भर रहना पड़ता है। सरकारी या सार्वजनिक विनियोग में तो राज्स संसाधनों के अनुरूप वृद्धि कर सकता है किन्तु मुख्य

समस्या निजी विनियोग को बढ़ाने की रहती है जो कि मन्दी के समय अत्यन्त कम रहता है। एक अर्थव्यवस्था में विनियोग को प्रोत्साहित करने वाले उपायों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है-

(1) सस्ती मुद्रा नीति- सस्ती मुद्रा नीति का अभिप्राय ब्याज की दर में कमी करने से है। अर्थव्यवस्था में निजी विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिए मुद्रा अधिकारियों को जानबूझकर ब्याज की दर में कमी करनी चाहिए। इसके फलस्वरूप उद्यमी ऋण लेकर निवेश करने के लिए प्रोत्साहित होंगे। कीन्स ने मन्दी से छुटकारा पाने के लिए सस्ती मुद्रा नीति के साथ-साथ राजकोषीय उपायों जैसे सार्वजनिक

व्यय में वृद्धि करने पर विशेष बल दिया है।

(2) कीमतों में स्थिरता- मूल्य स्तर में होने वाले उतार-चढ़ावों का निजी विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः निजी विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिए कीमतों में स्थिरता लाना आवश्यक होता है। क्लेन ने इसके लिए सरकार को मूल्य निर्धारण की नीति अपनाने का सुझाव दिया है।

(3) निगम करों में कमी- प्रायः निगम कर भी विनियोग पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। अतः यह आवश्यक है कि लाभों पर कर न लगाया जाये और यदि यह आवश्यक ही हो तो इस प्रकार लगाया जाये कि नये विनियोगों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। किन्तु जो व्यक्ति लाभों का पुनर्विनियोग नहीं करते उनकी लाभ से प्राप्त आय पर कर लगाया जा सकता है।

(4) एकाधिकार पर रोक- सामान्यतया बड़ी फर्मे उत्पादन के क्षेत्र में अपना वर्चस्व और एकाधिकार स्थापित करना चाहती हैं। जिसके कारण छोटी फर्मों द्वारा किये जाने वाले विनियोगों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में क्लेन (Klein) ने यह सुझाव दिया है कि सरकार को बड़ी फर्मों की एकाधिकारी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण लगाना चाहिए।

इसके फलस्वरूप एक ओर अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी वहीं दूसरी ओर विनियोग भी प्रोत्साहित होंगे।

(5) मजदूरी में कटौती- प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विचार था कि मौद्रिक मजदूरी में कमी करके विनियोग को प्रोत्साहित किया जा सकता है। मौद्रिक मजदूरी की दरों में कटौती करने पर लागतें घट जाती हैं तथा माँग बढ़ती है, जिससे विनियोग में वृद्धि होती है। किन्तु प्रतिष्ठित धारणा मुद्रा मजदूरी कटौती के आय पक्ष की उपेक्षा करती है अतः मजदूरी कटौती की नीति व्यावहारिक नहीं है। इसीलिए कीन्स ने मुद्रा कटौती नीति के बजाय लचीली मुद्रा नीति का समर्थन किया है।

(6) अनुसंधान व नवप्रवर्तन को प्रोत्साहन- विनियोग में वृद्धि करने के लिए सरकार को अनुसंधान और नवप्रवर्तन के कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देना चाहिए। इस हेतु अनुसंधानशालाओं की स्थापना करना आवश्यक है तथा अनुसंधान संबंधी उपलब्धियों को विविध उद्योग तक पहुँचाना चाहिए।

(7) सरकारी व्यय (Govt. Expenditure)- निजी विनियोग को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर सरकारी व्यय बढ़ाना चाहिए। इसे समुद्दीपन (Pump Priming Policy) कहा जाता है। मन्दीकाल में निजी विनियोग को प्रोत्साहित करने हेतु जब सरकार बैंकिग-व्यवस्था से उधार लेती है तो निष्क्रिय बाकी रोकड़ सक्रिय हो जाते हैं, बैंक जमा बढ़ती है तथा नई साख का सृजन होता है। इस प्रकार की समुद्दीपन वित्त प्रबन्ध की रीति ही पुनरुत्थान में सहायक होती है। यह नीति संस्थागत बचतकर्ताओं के विनियोग को सुगम बनाती है और उधार जमा व सामान्य व्यापार पुनरुत्थान को प्रोत्साहित करके मौद्रिक नीति (Monetary Policy) की अनुपूर्ति भी करती है। यह व्यय विधि के रूप में महागुणक या गुणक व त्वरक की परस्पर क्रियाशीलता के द्वारा निजी विनियोग को प्रेरित करती है। किन्तु सरकारी व्यय की यह नीति तभी सफल हो सकती है जब सार्वजनिक व्यय द्वारा प्रेरित नियोजन में वृद्धि हो।

इस प्रकार कुल विनियोग में वृद्धि के लिए निजी विनियोग के साथ-साथ सार्वजनिक विनियोग को बढ़ाना भी आवश्यक है।

सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure) में वृद्धि करने हेतु कुछ अन्य उपाय, जैसे- लीफ रीकिंग, सामाजिक सेवा क्षेत्र में विनियोग आदि भी अपनाये जा सकते हैं।

लीफ रीकिंग (Leaf Reaking)- मंदी को दूर करने के लिए कीन्स ने 'लीफ रीकिंग' का सुझाव दिया था। यह सार्वजनिक व्यय के द्वारा अनुत्पादक कार्यों को चलाने की एक पद्धति है। उदाहरणार्थ- यदि सरकार के पास कोई उत्पादक कार्य न हो तो वह अनुत्पादक कार्यों, जैसे गड्ढे खुदवाना तथा उसे पुनः मिट्टी से भरना के माध्यम से लोगों को रोजगार प्रदान करे। इससे लोगों की क्रयशक्ति बढ़ेगी तथा प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि होगी। इस प्रकार के सार्वजनिक कार्य अर्थव्यवस्था में गम्भीर बेरोजगारी की समस्या के निदान में महत्वपूर्ण होते हैं।

उपर्युक्त कारणों के साथ-साथ सरकार सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों का विकास, प्रशासकीय विभागों का विस्तार, रोजगार मूलक कार्यक्रमों का संचालन तथा निर्यात में वृद्धि करके सार्वजनिक विनियोग में वृद्धि कर सकती है।

सरकार या सार्वजनिक व्यय का अर्थ

जब सरकार अथवा उसके द्वारा अधिकृत संस्थाओं या अधिकारियों द्वारा नगरीय अथवा विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये व्यय किया जाता है तो उसे सार्वजनिक व्यय कहते हैं। अन्य शब्दों में लोक सत्ताएँ, जैसे केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें एवं स्थानीय संस्थाएँ नागरिकों की सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि एवं आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण की वृद्धि के लिये जो व्यय करती हैं, उसे सार्वजनिक व्यय या सरकारी कहते हैं।

11.5 सार्वजनिक व्यय पर विभिन्न दृष्टिकोण

सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में प्राचीन अर्थशास्त्रियों और आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मतों में भिन्नता है। जहाँ प्राचीन अर्थशास्त्री सार्वजनिक व्यय को अनावश्यक मानते थे, वहीं आधुनिक अर्थशास्त्री इसे आवश्यक मानते हैं। इन दोनों मतों की विस्तृत व्याख्या निम्न प्रकार है:

(1) प्राचीन अर्थशास्त्रियों के विचार (Classical View)- प्राचीन अर्थशास्त्री सार्वजनिक व्यय को उचित नहीं मानते थे। परम्परावादी अर्थशास्त्री "अहस्तक्षेप नीति" (Laissez Faire Policy) के समर्थक थे। उनका मत था कि राज्य को केवल आन्तरिक शान्ति, न्याय और बाहरी आक्रमण से रक्षा के ही कार्य करने चाहिये। प्रो.जे.एस. मिल के अनुसार "वित्त की सम्पूर्ण योजनाओं में सर्वोत्तम वह है जिसमें न्यूनतम व्यय किया जाय।" एच. पारनेल ने लिखा "सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने और विदेशी आक्रमण से सुरक्षा के लिये जो बिल्कुल आवश्यक व्यय है, यदि उससे अधिक व्यय किया जाता है तो वह बर्बादी और अन्यायपूर्ण है और लोगों पर कष्टदायक भार है।" ग्लेडस्टोन ने भी इसे" वृहत, तीव्र एवं खतरनाक व्यय" कहा है। संक्षेप में परम्परावादियों के अनुसार सार्वजनिक व्यय अपव्ययी होता है।

(2) आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचार (Modern View)- आधुनिक विचारकों का मत है कि निजी क्षेत्र द्वारा धन का अच्छा उपयोग होता है, यह कोई सार्वभौमिक सत्य नहीं है। इतना ही नहीं राज्य के द्वारा किये जाने वाले व्यय से अधिक आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण संभव है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि राज्य मनुष्य मनुष्य का संरक्षक ही नहीं पालक, पोषक, मित्र एवं उचित मार्गदर्शक भी है, क्योंकि "राज्य मानव को तब से संरक्षण प्रदान करता है जब से वह गर्भ में आता है और तब तक संरक्षण देता है जब तक वह कब्र में नहीं चला जाता।" समाजवादी विचारक राज्य को ऐसी कल्याणकारी संस्था मानते हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व का चहुमुखी विकास करती है। यही कारण है कि आधुनिक समय में राज्य के कार्यों का चहुंमुखी विस्तार हुआ है और परिणामस्वरूप सार्वजनिक व्यय में तेजी से वृद्धि हुई है।

निजी और सार्वजनिक व्यय में अन्तर

जिस प्रकार परिवार का मुखिया अपने परिवार के पालन-पोषण एवं अन्य कार्यों पर व्यय करता है, उसी प्रकार सरकार भी अपने नागरिकों के विकास एवं उनके कल्याण पर व्यय करती है। इस प्रकार निजी व्यय एवं सार्वजनिक व्यय में जहाँ कुछ समानताएँ है, वहीं दोनों में अनेक असमानताएँ या अन्तर भी हैं। निजी एवं सार्वजनिक व्यय में प्रमुख अन्तर निम्न प्रकार हैं:-

सार्वजनिक व्यय	निजी व्यय
(1) सरकार अपने व्यय निश्चित करके आय के स्रोत खोजती है।	(1) व्यक्ति आय के अनुसार ही व्यय करता है।
(2) सरकार व्यय को बढ़ा तो सकती है किन्तुकम नहीं कर सकती ।	(2) व्यक्ति आय के अनुसार व्यय में कमी या वृद्धि कर सकता है।
(3) सरकार सामान्य लोगों के लाभ के उद्देश्य से व्यय करती है।	(3) व्यक्ति स्वयं एवं परिवार के लाभ के उद्देश्य से व्यय करता है।
(4) सरकार के अविवेकपूर्ण व्यय का प्रभाव सम्पूर्ण (समाज पर पड़ता है।	(4) व्यक्ति के अविवेकपूर्ण व्यय का प्रभाव व्यक्ति पर ही पड़ता है।
(5) सरकार मितव्ययिता पर कम ध्यान देती है।	(5) व्यक्ति मितव्ययिता पर अधिक ध्यान देता है।
(6) सरकारी व्यय पर संसद, महालेखाकार आदि का नियंत्रण होता है।	(6) व्यक्ति के व्यय पर व्यक्ति का ही नियंत्रण होता है।

(7) सरकार के व्यय का लाभ-अप्रत्यक्ष ढंग से मिलता है।	(7) व्यक्ति के व्यय का लाभ प्रत्यक्ष रूप में मिलता है।

सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त

प्रत्येक सरकार के सार्वजनिक व्यय का लक्ष्य अधिकतम सामाजिक लाभ को प्रोत्साहित करना होता है। प्रो. डाल्टन के अनुसार "सार्वजनिक व्यय इस ढंग से किये जाने चाहिये कि सीमान्त सामाजिक लाभ प्रत्येक दिशा में समान हो।" इसी दृष्टि से विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक व्यय को न्यायसंगत बनाने के लिये कुछ मार्गदर्शक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है इन सिद्धान्तों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- यथा (अ) फिण्डले शिराज के सिद्धान्त और (ब) अन्य अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त । इन सिद्धान्तों का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है :-

(A) फिण्डले शिराज के सिद्धान्त -

1. लाभ का सिद्धान्त (Canon of Benefit)- इस सिद्धान्त के अनुसार सार्वजनिक व्यय का लाभ व्यक्ति विशेष के स्थान पर सम्पूर्ण समाज को मिलना चाहिए। प्रो. शिराज के शब्दों में अन्य बातें समान रहने पर लोक व्यय इस प्रकार हो कि उससे समाज को महत्वपूर्ण लाभ मिले, जैसे-उत्पादन बढ़े, विदेशी आक्रमण से रक्षा व आन्तरिक शान्ति रहे एवं आय की असमानता कम हो। संक्षेप में सार्वजनिक कोषों का प्रयोग इस प्रकार से हो कि समाज का अधिकतम कल्याण सम्भव हो सके ।

सार्वजनिक व्यय के अनेक नियमों में से यह नियम सर्वश्रेष्ठ है। चूँकि इस नियम का आधार अधिकतम सामाजिक लाभ है। अतः सरकार विभिन्न मदों में इस प्रकार से व्यय करे कि उसे सब मदों से मिलने वाली उपयोगिता लगभग समान हो। संक्षेप में, सार्वजनिक व्ययों से अधिकतम लाभ तभी प्राप्त हो सकता है जब निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाये:

(i) राज्य जिस व्यय को देश की सुरक्षा एवं शान्ति हेतु करता है, उससे देश के सामाजिक कल्याण में वृद्धि होनी चाहिए।

(i) देश में उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय के आकार में वृद्धि होनी चाहिए।

(iii) देश में आय का न्यायपूर्ण तथा समान वितरण होना चाहिए।

(iv) देश में आर्थिक स्थायित्व रहे। उच्चावचन को रोककर देश में पूर्ण रोजगार का स्तर लाया जाय।

(v) राजकीय व्यय वर्तमान पीढ़ी की बजाय बल्कि भावी पीढ़ियों के हित को ध्यान में रखकर किया जाय ।

2. मितव्ययिता का सिद्धांत (Canon of Economy)- इस सिद्धांत के अनुसार सरकार को केवल आवश्यक कार्यों पर ही खर्च करना चाहिये तथा अपव्यय से बचना चाहिये। मितव्ययिता के सिद्धांत के अनुसार सरकार एक ट्रस्टी के समान है जो जनता से प्राप्त आय को व्यय करती है अतः ट्रस्ट के आधारभूत सिद्धांतों के अनुसार आवश्यक है कि उस धन का पूर्ण मितव्ययिता से उपयोग किया जाए। मितव्ययिता का अर्थ कृपणता नहीं है। इसका अभिप्राय यह है कि राज्य धन का व्यय करते समय वही सावधानी बरते जो व्यक्ति अपने धन को निजी कार्यों में व्यय करते समय रखता है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि व्यय करते समय सरकार निम्नलिखित बातों का ध्यान रखे (i) सरकार किसी भी मद-पर आवश्यकता से अधिक व्यय न करे। (ii) व्यय से राष्ट्रीय उत्पादन शक्ति एवं लोगों की कार्य क्षमता बढ़े। (iii) सरकार अपव्यय एवं लापरवाही वाले व्यय से बचे। (iv) राजकीय अधिकारियों द्वारा किए गए व्यय और उनके द्वारा तैयार किए गए लेखों पर पूर्ण नियंत्रण की व्यवस्था हो। (v) व्यय नागरिकों की क्रय-क्षमता बढ़ाने वाला हो। (vi) सरकार व्यय के अन्तरिम परिणामों और प्रभावों पर ध्यान दे। मितव्ययिता का प्रनियम अधिकतम सामाजिक लाभ के प्रनियम का ही दूसरा रूप है

जिसका अभिप्राय है कि सरकार लोक वित्त का संगठन एक ठोस वित्तीय प्रणाली द्वारा करे और नैतिक दृष्टि से अपना यह कर्त्तव्य समझे कि जनता के धन का अपव्यय करने का उसे अधिकार नहीं है।

3. स्वीकृति का सिद्धांत (Canon of Sanction)- इस सिद्धांत के अनुसार सार्वजनिक कोषों को दुरुपयोग से बचाने एवं मितव्ययिता के लिये सार्वजनिक धन को व्यय करते समय उचित अधिकारी या संस्था से स्वीकृति ले लेना चाहिये। जनतंत्र में संसद, उच्च अधिकार प्राप्त संस्था है और उसकी स्वीकृति के बिना कोई धन व्यय नहीं होता है। इस सिद्धांत को मूर्तरूप देने के लिये निम्न बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए - (i) कोष की जितनी मात्रा व्यय करने की स्वीकृति मिली हो, उससे अधिक व्यय नहीं करना चाहिए। (ii) जिस कार्य के लिए राशि निर्धारित हो तथा व्यय की अनुमति मिली हो उसी कार्य पर व्यय किया जाना चाहिए। (iii) व्यय की गई राशि का उचित अंकेक्षण होना चाहिए ताकि अनुचित ढंग से व्यय न किया जावे। (iv) किसी भी सरकारी कर्मचारी को उस राशि से अधिक व्यय करने की स्वीकृति नहीं दी जानी चाहिए जितना कि उसे स्वयं अधिकार है। यदि किसी अवसर पर उसे ऐसा करना आवश्यक हो जाए तो अपने से बड़े अधिकारी की, जिसे अधिक रकम व्यय करने की स्वीकृति देने का अधिकार है, पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए। (v) ऋणों द्वारा लिया हुआ धन केवल उन्हीं पर खर्च करना चाहिए जिनके लिए वह प्राप्त किया गया हो। (vi) ऋण को उचित समय पर लौटाने के लिए अनिवार्य रूप से कोष बनाकर समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। संक्षेप में, सार्वजनिक व्यय में पूर्ण सावधानी रखी जानी चाहिए जिससे सामाजिक लाभ को अधिकतम करना संभव हो सके।

4. बचत का सिद्धांत (Canon of Surplus)- प्रो. शिराज के शब्दों में "सार्वजनिक अधिकारियों को आय की प्राप्ति तथा उसका व्यय सामान्य नागरिकों की तरह करना चाहिये। इसका कारण यह है कि घाटे के बजट का प्रभाव अर्थव्यवस्था में गंभीर मुद्रा स्फीति बढ़ाता है।" संक्षेप में सरकार आय व्यय का समायोजन इस प्रकार करे कि कुछ

न कुछ धन अवश्य शेष रहे। सन् 1920 में बुसेल्स में हुए अन्तर्राष्ट्रीय वित्त सम्मेलन में सन्तुलित बजटों के महत्व को स्वीकार करते हुए यह कहा गया था कि "जो देश घाटे के बजटों की नीति को स्वीकार करता है वह फिसलने वाले मार्ग पर चल रहा है जो सामान्यतः विनाश की ओर ले जाता है। उस मार्ग से बचने के लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं है।"

किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि घाटे के बजट की अपेक्षा संतुलित अथवा बचत का बजट ही उपयुक्त है। आर्थिक संकट, बरोजगारी व लोक-कल्याणकारी कार्यों के लिए बचत के बजट की अपेक्षा घाटे का बजट उपर्युक्त होता है, परन्तु लगातार घाटे के बजटों के लाने से देश भी घाटे में चलने लगता है, अतः एक सीमा के भीतर ही ऐसा करना चाहिए।

(B) अन्य सिद्धान्त (Other Principles) -

सार्वजनिक व्यय के लिये प्रो. शिराज के अतिरिक्त अन्य अर्थशास्त्रियों एवं विचारकों ने भी सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। ये सिद्धान्त निम्नलिखित है-

(1) लोच का सिद्धान्त (Canon of Elasticity)- इस सिद्धान्त के अनुसार सार्वजनिक व्यय में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने का गुण होना चाहिये। बाहरी आक्रमण से रक्षा, आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा पर सरकार आवश्यकतानुसार कम या अधिक व्यय कर सके, ऐसी लोच सार्वजनिक व्यय में होनी चाहिये। प्रो. व्यूहलर के अनुसार राजकीय व्यय में परिवर्तन करने का प्रावधान होना चाहिये ताकि संकट काल या शान्ति काल में उसे कम या अधिक किया जा सके। इसके साथ ही सार्वजनिक व्यय के परिणामों का अनुमान लगाते समय उन परिणामों की ओर ध्यान देना होगा जो इस व्यय की पूर्ति करने में करारोपण अथवा आय के अन्य उपयोगों में परिणामस्वरूप सामने आ सकते हैं। संक्षेप में, सार्वजनिक व्यय में ऐसा होना चाहिए कि उसमें समयानुसार परिवर्तन किए जा सकें तथा सामाजिक हितों को क्षति न पहुँचे।

(2) समान वितरण का सिद्धान्त (Canon of Equitable Distribution)- इस सिद्धान्त के अनुसार सार्वजनिक व्यय इस प्रकार से होना चाहिये कि देश में आय और धन का समान वितरण हो सके। इस हेतु सार्वजनिक व्यय का बड़ा भाग अविकसित क्षेत्रों के विकास तथा समाज के पिछड़े और कमजोर वर्गों के उत्थान के लिये किया जाना चाहिए। प्रयास ऐसा होना चाहिए कि प्रगतिशील करारोपण के द्वारा अमीर वर्ग से आय प्राप्त करके इसे गरीब वर्ग की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार जैसे कार्यों पर व्यय किया जाना चाहिए।

(3) उत्पादकता का सिद्धान्त (Canon of Productivity)- इस सिद्धान्त के अनुसार सार्वजनिक व्यय इस प्रकार हो जिससे देश में नये उद्योगों की स्थापना हो, रोजगार के अवसर बढ़े तथा लोगों का जीवन स्तर सुधरे। इस प्रकार उत्पादक व्यय से देश का आर्थिक विकास होने के साथ-साथ जनता की उत्पादक प्रवृत्तियों को भी प्रोत्साहन मिलता है। सरकार को बुनियादी सुविधाओं, जैसे विद्युत, सड़क, रेल, संचार व्यवस्था, जल प्रदाय आदि पर व्यय करना चाहिए। इसके साथ ही तकनीकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण मर व्यय करके जनसाधारण की उत्पादन क्षमता में वृद्धि का प्रयास भी करना चाहिए।

वर्तमान में यह माना जाने लगा है कि इस प्रकार का व्यय अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि बिना उत्पादन कार्य असम्भव है। चाहे इनसे प्रत्यक्ष उत्पादन वृद्धि नहीं होती हो, लेकिन परोक्ष रूप से इनके द्वारा उत्पादन में निश्चित वृद्धि होती है। जिस व्यय से पूँजी निर्माण की गति बढ़ती है, बेकारी की समस्या हल होती है, उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ता है और सामाजिक हित पूरे होते हैं, वे व्यय निश्चित रूप से उत्पादक हैं। सामाजिक सेवाओं से मनुष्य की कार्यक्षमता बढ़ती है अतः उन पर किया गया व्यय अनुत्पादक नहीं कहा जा सकता है।

(4) समन्वय का सिद्धांत (Canon of Coordination)- जिन देशों में संघात्मक व प्रजातांत्रिक

सरकारें होती हैं, उन्हें व्यय करते समय अपने आपस में समन्वय कर लेना चाहिए। एक-दूसरे के बिना परामर्श के किया जाने वाला व्यय सामाजिक लाभ में रोड़ा बन सकता है। प्रायः केन्द्रीय, प्रान्तीय व स्थानीय सरकारें अलग-अलग आय प्राप्त करती है और इसके आय-स्रोत भी अलग-अलग हैं। इनके व्यय करने की मदें भी अलग-अलग होती हैं। इन संस्थाओं के द्वारा किया जाने वाला व्यय तभी उपयुक्त समझा जा सकता है जबकि इनमें परस्पर सहयोग हो और व्यय में पुनरावृत्ति भी न हो।

निष्कर्ष - सार्वजनिक व्यय के उपर्युक्त सिद्धान्तों के अध्ययन के बाद यह कहा जा सकता है कि समाज के अधिकतम कल्याण के लिये इन सिद्धान्तों का पालन अत्यावश्यक है।

11.6 सरकारी या सार्वजनिक व्यय का महत्व

आधुनिक युग में सार्वजनिक व्यय का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। यही कारण है कि प्राचीन समय की तुलना में आधुनिक युग में सार्वजनिक व्यय कई गुना बढ़ गया है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था एवं कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने राज्य के कार्यों में बहुत अधिक विस्तार किया है। इसके साथ ही समाजवादी समाज की अवधारणा एवं आर्थिक नियोजन एवं विकास की धारणा ने राज्य के दायित्वों में बहुत अधिक विस्तार किया है। सार्वजनिक व्यय के महत्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता है:-

(A) आर्थिक महत्व (Economic Importance)

आर्थिक दृष्टि से सार्वजनिक व्यय का महत्व निम्नलिखित है -

(1) उत्पादन में वृद्धि (Increase in Production)- वर्तमान समय में सरकार-प्रशासन, रक्षा, बाढ़, अकाल आदि अनुत्पादक कार्यों के साथ-साथ कृषि, उद्योग, खनिज कार्य, परिवहन आदि पर भी भारी मात्रा में व्यय करती है जिससे कुल उत्पादन में वृद्धि

होती है। बुनियादी सुविधाओं में विस्तार करके भी सरकार उत्पादन बढ़ाने में योगदान देती है।

(2) आर्थिक नियोजन हेतु विनियोग (Investment for Economic Development)- आधुनिक युग आर्थिक नियोजन का युग है। आर्थिक नियोजन, आर्थिक विकास की राम बाण दवा है। आर्थिक योजनाएँ राष्ट्रीय आवश्कताओं के अनुकूल बनाई जाती हैं। नियोजन तभी सफल होता है जब विभिन्न विकास कार्यक्रमों पर भारी मात्रा में विनियोग किया जाय। व्यक्ति के लिये यह संभव नहीं होता है कि वह राष्ट्रीय आधार पर बनाई गई योजनाओं में विनियोग करे। अतः योजनाओं में विनियोग होने वाले धन को सार्वजनिक व्यय से ही पूरा किया जाता है।

(3) आर्थिक सहायता (Economic Assistance)- सरकार सार्वजनिक व्यय की मदों में कृषि एवं उद्योगों को आर्थिक सहायता देने का प्रावधान रखती है। सार्वजनिक व्यय द्वारा कृषकों को सस्ते बीज, औजार, उर्वरक एवं सस्ती साख उपलब्ध कराई जाती है। इसी प्रकार उद्योगों विशेषकर लघु, कुटीर एवं रोजगार मूलक उद्योगों के लिये सस्ती भूमि, तकनीकी ज्ञान, मशीनें, कच्चामाल आदि भी सरकार सार्वजनिक व्यय से उपलब्ध कराती है। कमजोर वर्ग के लोगों के उत्थान, वृद्धावस्था पेंशन, बेरोजगारी भत्ता आदि के द्वारा भी सरकार आर्थिक सहायता एवं सबसिडी प्रदान करती है।

(4) सन्तुलित आर्थिक विकास (Balanced Economic Development)- सार्वजनिक व्यय से किसी क्षेत्र विशेष का विकास न करके सम्पूर्ण देश का विकास किया जाता है। सामान्यतः सरकार पिछड़े क्षेत्रों पर अधिक व्यय करती है, जिससे सन्तुलित क्षेत्रीय विकास होता है।

(5) राष्ट्रीय आय में वृद्धि (Increase in National Income)- सार्वजनिक व्यय से सम्पूर्ण राष्ट्र का उत्पादन बढ़ता है। सार्वजनिक व्यय से उत्पादन और सामाजिक उपरि

सम्पत्ति का भी विकास होता है। परिणामस्वरूप कुल राष्ट्रीय उत्पादन और आय दोनों ही बढ़ते हैं।

(6) प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि (Increase in Per-capita Income) -कार्यों पर व्यय करने से जब राष्ट्रीय आय बढ़ती है तो प्रतिव्यक्ति आय परिणामस्वरूप लोगों का उपभोग स्तर एवं जीवन स्तर दोनों ही बढ़ते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पादक में भी वृद्धि होती है। इसके

(7) व्यापार चक्रों पर नियंत्रण (Control on Trade Cycles)- व्यापार चक्र वह दशा है जिसमें एक निश्चित समय के बाद तेजी तथा मंदी आती है। सार्वजनिक व्यय से इन व्यापार चक्रों की तेजी तथा मंदी को रोकने में सहायता मिलती है। तेजी काल में सरकार अनुत्पाद कार्यों को बन्द करती है तथा उत्पादक कार्यों पर व्यय करके उत्पादन बढ़ाती है जिससे बढ़ती हुई कीमतें रुक जाती हैं। मंदी काल में सरकार शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, सिंचाई साधन, परिवहन आदि के विकास पर व्यय करके प्रभावपूर्ण माँग को बढ़ाती है। इस प्रकार आर्थिक स्थिरता अथवा तेजी-मंदी को रोकने में सार्वजनिक व्यय का विशेष महत्व है।

(8) एकाधिकार पर नियंत्रण (Control on Monopoly)- सार्वजनिक व्यय के अभाव में निजी उद्योगपतियों की एकाधिकारी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। वे ऊँची कीमत लेकर उपभोक्ताओं का शोषण करते हैं। इसके विपरीत, सार्वजनिक व्यय से स्थापित उद्योगों का उद्देश्य एकाधिकारी लाभ कमाकर जनता का शोषण करना न होकर सर्वसाधारण का आर्थिक कल्याण करना होता है। इससे निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में प्रतियोगिता बढ़ती है, जिससे एकाधिकारी प्रवृत्ति नहीं पनपती है।

(9) राष्ट्रीयकरण (Nationalisation)- वर्तमान समय में अनेक विकसित पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं सहित विकासशील देश भी जनकल्याणकारी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण

कर लेते हैं और इसके बदले में सरकार अपने बजट से मुआवजा दे देती है। संक्षेप में सार्वजनिक व्यय ने राष्ट्रीयकरण को अधिक प्रोत्साहन दिया है।

(10) अन्य देशों को आर्थिक सहायता (Economic Aid to Other Countries) - विश्व के विकसित देश अपनी राष्ट्रीय आय का एक छोटा भाग विकासशील देशों को आर्थिक विकास में सहायता देने के लिये खर्च करते हैं। इस सहायता से विकासशील देशों का आर्थिक विकास होता है। इस प्रकार सार्वजनिक व्यय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों में आर्थिक सहयोग बढ़ाता है।

(11) कीमतों में स्थिरता (Price Stability)- कोई भी मंदी वाली अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक व्यय को बढ़ाकर गिरती हुई कीमतों पर नियंत्रण किया जा सकता है। इसी प्रकार तेजी की दशा में सार्वजनिक व्यय कम करके कीमतों को बढ़ने से रोका जा सकता है। संक्षेप में, सरकार सार्वजनिक व्यय से उपभोग एवं उत्पादन को प्रभावित कर कीमतों के उच्चावचनों को रोकती है।

(B) राजनैतिक महत्व (Political Importance)

प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में सार्वजनिक व्यय का विशेष महत्व होता है। कल्याणकारी राज्य की स्थापना इसी व्यवस्था में सम्भव है। इस उद्देश्य की प्राप्ति में सार्वजनिक व्यय का महत्व निम्न प्रकार है:

(1) प्रजातंत्र की सफलता (Success of Democracy) आधुनिक प्रजातंत्रीय राजनैतिक प्रणाली की सफलता देश के सार्वजनिक व्यय पर निर्भर करती है, क्योंकि जनता के चुने हुए प्रतिनिधि अपने क्षेत्र के आर्थिक विकास के लिये अधिक धन की माँग करते हैं। सरकार क्षेत्रीय असमानता एवं गरीबी मिटाने के लिये उत्पादक और अनुत्पादक व्यय करती है।

(2) प्रशासन में नागरिकों का सहयोग (Co-operation of People in Administration) – जब सरकार लोगों के आर्थिक कल्याण वाले कार्यों पर सार्वजनिक व्यय करती है तो लोगों को नागरिक कर्तव्य और उत्तरदायित्व का ज्ञान होता है। सरकार सार्वजनिक व्यय से जिन सुविधाओं का निर्माण करती है उनका श्रेष्ठतम उपयोग लेना लोग सीख जाते हैं। इससे लोग प्रशासन के कार्यों में सहयोग देने लगते हैं।

(3) युद्ध के लिये महत्व (Importance for War)- आधुनिक समय में युद्ध वही देश जीतता है जिसके पास भारी मात्रा में व्यय करने के लिये पर्याप्त धन हो। कारण यह है कि युद्धों पर अरबों- खरबों रुपये व्यय करने पड़ते हैं। यह सार्वजनिक के द्वारा ही सम्भव होता है।

(C) सामाजिक महत्व (Social Importance)

सामाजिक दृष्टि से सार्वजनिक व्यय का निम्नलिखित महत्व है :-

(1) सामाजिक परिसम्पत्ति (Social Overhead Capital)- सामाजिक परिसम्पत्ति, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़कें, रेलें, विद्युत, सिचाई सुविधाएँ आदि का निर्माण एवं विकास व्यक्ति की अपेक्षा राज्य अधिक अच्छी तरह से कर सकता है। ये सुविधाएँ तुलनात्मक कम लाभ प्रदान करती हैं, जिससे निजी लोग इनके विकास पर व्यय नहीं करते। सरकार सार्वजनिक व्यय द्वारा इन सुविधाओं को पर्याप्त मात्रा में जुटा सकती है।

(2) सामाजिक सुरक्षा (Social Security)- सार्वजनिक व्यय सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। आधुनिक युग में विश्व की अधिकांश सरकारें कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिये सामाजिक सुरक्षा, जैसे-बीमा, वृद्धावस्था पेंशन, मातृत्व लाभ, बेरोजगारी, बीमा आदि पर भारी मात्रा में व्यय करती है। इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा को सार्वजनिक व्यय से प्रोत्साहन मिला है।

(3) बढ़ती जनसंख्या के लिये महत्व (Importance for Increasing Population)- प्रत्येक व्यक्ति जिस प्रकार अपने बढ़ते हुए परिवार के भावी सुख एवं सम्पन्नता के लिये अनेक उपाय अपनाता है, उसी प्रकार प्रत्येक सरकार भी अपने देश की भावी सन्तानों के स्वास्थ्य, शिक्षा एवं अन्य उत्पादक एवं अनुत्पादक कार्यों पर भारी मात्रा में व्यय करती है।

(D) अन्य कारणों से महत्व (Other Reasons of Importance)

सार्वजनिक व्यय आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक कारणों से ही नहीं निम्नलिखित अन्य कारणों से भी महत्वपूर्ण है :-

(1) सामयिक समस्याओं के लिये (For Timely Problems) कई बार कुछ विशेष प्रकार की आर्थिक तथा सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है, जैसे 1947 की भारत विभाजन समस्या, भोपाल गैस त्रासदी, उड़ीसा का भीषण तूफान या अयोध्या की समस्या आदि। ऐसी सामयिक एवं आकस्मिक समस्याओं को हल करने के लिए सरकार त्वरित रूप से व्यय करती है।

(2) अन्तर्राष्ट्रीय संघों से सहायता (Aid from International Organisations) - वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन सदस्य देशों के आर्थिक विकास में पर्याप्त सहायता प्रदान कर रहे हैं। इन संगठनों का सदस्य बनने के लिये राज्य को अपने सार्वजनिक व्यय से अंशपत्र (Shares) खरीदना पड़ते हैं। इस मद पर भी सरकार समय-समय पर भारी व्यय करती है।

(3) स्थानीय समस्याओं को हल करना (To Solve the Local Problems) कई बार सरकार को विशेष स्थान या क्षेत्र की समस्याओं को हल करने के लिये भी व्यय करना पड़ता है। अकाल, बाढ़, सूखा, आतंकवाद, साम्प्रदायिक दंगे आदि स्थानीय समस्याएँ सरकार को भारी मात्रा में धन व्यय करने के लिये बाध्य करती हैं।

संक्षेप में, सार्वजनिक व्यय के अनेक लाभ हैं। सरकार का दायित्व जनता के प्रति दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अतः उसके द्वारा किया जाने वाला व्यय भी बढ़ता है। यह व्यय व्यक्ति, समाज एवं देश के लिये आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि कारणों से महत्वपूर्ण है।

11.7 सार्वजनिक व्यय के दोष

यद्यपि आधुनिक युग में सार्वजनिक व्यय अनेक कारणों से लाभदायक एवं महत्वपूर्ण है, किन्तु इसके निम्नलिखित दोष भी हैं-

(1) सरकारी एकाधिकार (Government Monopoly) अनेक क्षेत्रों में सार्वजनिक व्यय सरकारी एकाधिकार की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। इसके परिणामस्वरूप देशवासियों को हानि उठानी पड़ती है। जैसे-, भारत में एकाधिकार प्राप्त सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को होने वाली हानि की पूर्ति के लिये देशवासियों पर कर लगाया जाता है।

(2) संसाधनों की फिजूलखर्ची (Wastage of Resources) सरकार कई बार अनावश्यक कार्यों पर व्यय करके फिजूलखर्ची को प्रोत्साहित करती है। इसका भार जनता पर कर के रूप में पड़ता है। भ्रष्टाचार को भी प्रोत्साहन मिलता है जिससे समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(3) करदान क्षमता (Taxable Capacity) जब सरकार अधिक व्यय करने के लिये आय स्रोत खोजती है तो कई बार वह जनता की करदान क्षमता से भी अधिक करारोपण कर देती है। इससे विनियोग के साथ-साथ उपभोग भी प्रभावित होता है।

(4) क्षेत्रीय विषमताएँ (Regional In-equalities) सामान्यतः जनतंत्रीय प्रणाली में प्रभावशील सांसद सार्वजनिक व्यय का बढ़ा भाग अपने निर्वाचन क्षेत्र में खर्च करवा लेता है। इसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीयता की भावना को बढ़ावा मिलता है। इसके साथ ही

जहाँ कुछ क्षेत्रों का तेजी से विकास हो जाता है वहीं अन्य क्षेत्र पिछड़े रह जाते हैं। इससे क्षेत्रीय विषमताएँ पैदा होती हैं।

(5) निजी-विनियोग हतोत्साहित होता है (Discouraging Private Investment)- जब सरकार किसी क्षेत्र में व्यय करती है तो निजी विनियोगता उस क्षेत्र में विनियोग करना पसन्द नहीं करता है।

(6) लाल फीताशाही (Red-tapism)- सार्वजनिक व्यय सरकार कर्मचारियों द्वारा निश्चित प्रक्रिया से किया जाता है। निर्णयों में अत्यधिक विलम्ब होता है तथा अत्यावश्यक कार्य भी समय पर नहीं हो पाते। इससे लाल फीताशाही को बढ़ावा मिलता है।

(7) अतिपूँजीकरण के दोष (Defects of Over Capitalisation)- कई बार जिन क्षेत्रों में कम पूंजी लगाने की आवश्यकता होती है, उनमें सरकार आवश्यकता से अधिक पूँजी लगा देती है। इसके परिणाम स्वरूप अति पूँजीकरण के दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

(8) निजीक्षेत्र से प्रतियोगिता (Competition with Private Sector)- सार्वजनिक व्यय से निजी क्षेत्र और सरकारी विनियोग में तीव्र प्रतियोगिता उत्पन्न हो जाती है। इससे आर्थिक संसाधनों का दुरुपयोग होता है।

(9) राजनैतिक दवाब (Political Pressure)- जनतंत्रीय शासन व्यवस्था में प्रत्येक राजनैतिक दल का जीता हुआ प्रतिनिधि अपने क्षेत्र में अधिकाधिक सार्वजनिक व्यय कराना चाहता है। इससे राजनैतिक दबाव को प्रोत्साहन मिलता है।

(10) सरकारी अधिकारियों की मनमानी (Autocratic Behaviour of Government Officials)- सार्वजनिक व्यय की मात्रा का विभिन्न मदों के लिये निर्धारण सरकारी अधिकारी मनमाने ढंग से करते हैं। इससे अनावश्यक व्यय अधिक होता है।

11.8 सार संक्षेप

सामान्य विनियोग और सरकारी व्यय के बारे में सार संक्षेप निम्नलिखित है:

1. **सामान्य विनियोग (General Expenditure)**:
    - यह वह खर्च है जो सरकार अपने सामान्य कार्यों के संचालन और विभिन्न योजनाओं के लिए करती है।
    - इसमें वे खर्च शामिल होते हैं जो सरकार के सामान्य प्रशासन, सामाजिक सेवाओं, रक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा, इन्फ्रास्ट्रक्चर, और विकास कार्यों में उपयोग होते हैं।
    - इसका उद्देश्य जनता की भलाई, देश की सुरक्षा और आर्थिक विकास को बढ़ावा देना है।
2. **सरकारी व्यय (Government Expenditure)**:
    - सरकारी व्यय सरकार द्वारा किसी भी उद्देश्य के लिए खर्च किए गए धन को कहा जाता है। इसमें दो प्रमुख श्रेणियाँ होती हैं:
        - **संचालन व्यय (Revenue Expenditure)**: यह वह खर्च है जो सरकार के रोज़मर्रा के कामकाज के लिए किया जाता है, जैसे प्रशासनिक खर्च, पेंशन, वेतन, आदि।
        - **पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure)**: यह वह खर्च है जो लंबे समय में लाभकारी परियोजनाओं या संपत्तियों (जैसे सड़क निर्माण, शिक्षा भवन, आदि) पर किया जाता है।
3. **सरकारी व्यय का महत्व**:
    - सरकारी व्यय का देश की अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव होता है। यदि व्यय अधिक होता है, तो सरकार को कर्ज लेने की आवश्यकता पड़ सकती है, जिससे वित्तीय संकट पैदा हो सकता है।

- उचित और सामयिक व्यय से देश में विकास की गति बढ़ती है, जबकि अति व्यय से मुद्रास्फीति और आर्थिक असंतुलन हो सकता है।

11.9 मुख्य शब्द

सामान्य विनियोग और सरकारी व्यय से संबंधित प्रमुख मुख्य शब्द (Glossary) निम्नलिखित है:

1. **विनियोग (Appropriation)**:
   - सरकार द्वारा किसी विशेष कार्य या परियोजना के लिए निर्धारित वित्तीय राशि। यह आमतौर पर संसद या विधायिका द्वारा अनुमोदित होती है।
2. **सरकारी व्यय (Government Expenditure)**:
   - वह धनराशि जो सरकार अपने विभिन्न कार्यों और योजनाओं के लिए खर्च करती है। इसे संचालन व्यय और पूंजीगत व्यय में विभाजित किया जाता है।
3. **संचालन व्यय (Revenue Expenditure)**:
   - वह व्यय जो सरकार के सामान्य प्रशासन और कार्यों को चलाने के लिए किया जाता है, जैसे वेतन, पेंशन, सरकारी सेवाओं के खर्च आदि। इसे पुनरावृत्त (recurring) व्यय भी कहा जाता है।
4. **पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure)**:
   - वह व्यय जो सरकार के विकासात्मक कार्यों और दीर्घकालिक योजनाओं पर किया जाता है, जैसे सड़क निर्माण, पुल, इन्फ्रास्ट्रक्चर परियोजनाएँ, और अन्य भौतिक संपत्तियों पर खर्च।
5. **वित्तीय वर्ष (Fiscal Year)**:

- यह वह अवधि होती है, जिसमें सरकारी बजट, आय और व्यय की गणना की जाती है। सामान्यत: यह 1 अप्रैल से 31 मार्च तक होती है।

6. **बजट (Budget)**:
   - सरकार द्वारा आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए आय और व्यय का अनुमान। इसमें सभी योजनाओं, विकास कार्यों और अन्य सरकारी गतिविधियों के लिए धनराशि की योजना बनती है।

7. **सार्वजनिक ऋण (Public Debt)**:
   - वह ऋण जो सरकार विभिन्न स्रोतों से प्राप्त करती है, जैसे बाहरी ऋण, आंतरिक ऋण, और बॉन्ड्स, ताकि सरकार अपने व्यय को पूरा कर सके।

8. **संचालन घाटा (Revenue Deficit)**:
   - जब सरकार की आमदनी उसके संचालन व्यय से कम होती है, तो उसे संचालन घाटा कहा जाता है। यह सरकार के लिए एक आर्थिक चुनौती हो सकता है।

9. **मूलधन (Principal)**:
   - सरकार द्वारा किसी पूंजीगत खर्च के लिए किया गया प्राथमिक निवेश। यह आमतौर पर पूंजीगत व्यय से संबंधित होता है।

10. **मुद्रास्फीति (Inflation)**:

- वह स्थिति जिसमें वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में वृद्धि होती है, जिसके कारण सरकार को अधिक व्यय करने की आवश्यकता हो सकती है।

11. **कर्ज (Debt)**:

- सरकार द्वारा उधार ली गई राशि, जो किसी विशेष समय सीमा के भीतर चुकानी होती है। यह भी सरकारी व्यय का हिस्सा बन सकता है, जब इसे सरकारी कार्यों के लिए उपयोग किया जाता है।

12. **वित्तीय घाटा (Fiscal Deficit)**:

- यह उस अंतर को दर्शाता है जो सरकार की कुल आय और व्यय के बीच होता है। यदि व्यय आय से अधिक है, तो इसे वित्तीय घाटा कहा जाता है।

13. **अस्थायी विनियोग (Supplementary Appropriation)**:

- यह वह अतिरिक्त धनराशि होती है, जो पहले से अनुमोदित बजट में किसी अनपेक्षित व्यय को पूरा करने के लिए स्वीकृत की जाती है।

14. **पुनर्निवेश (Reinvestment)**:

- पूंजीगत व्यय के माध्यम से अर्जित लाभ को फिर से विकास परियोजनाओं में निवेश करना।

15. **सामाजिक कल्याण (Social Welfare)**:

- सरकारी योजनाओं का उद्देश्य, जो समाज के कमजोर वर्गों के कल्याण के लिए होती हैं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा, पेंशन योजनाएँ आदि।

11.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

सामान्य विनियोग और सरकारी व्यय पर स्व-प्रगति परीक्षण (Self-Assessment Test) प्रश्नों के उत्तर निम्नलिखित हैं:

1. **सामान्य विनियोग का क्या अर्थ है?**

- **उत्तर**: सामान्य विनियोग का अर्थ है वह धनराशि जो सरकार अपने विभिन्न कार्यों, योजनाओं, और सेवाओं के संचालन के लिए बजट में निर्धारित करती है। इसे सरकार के द्वारा स्वीकृत किया जाता है और इसका उद्देश्य किसी विशिष्ट कार्य या योजना के लिए धन की व्यवस्था करना है।

2. **सरकारी व्यय के प्रमुख प्रकार कौन से हैं?**

   - **उत्तर**: सरकारी व्यय दो प्रमुख प्रकारों में बाँटा जाता है:

     - **संचालन व्यय (Revenue Expenditure)**: यह वह खर्च है जो सरकार के सामान्य प्रशासन और सेवाओं के संचालन के लिए किया जाता है, जैसे वेतन, पेंशन, प्रशासनिक खर्च आदि।

     - **पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure)**: यह वह खर्च है जो दीर्घकालिक विकास परियोजनाओं या स्थायी संपत्तियों पर किया जाता है, जैसे सड़क निर्माण, भवन निर्माण, इन्फ्रास्ट्रक्चर परियोजनाएँ आदि।

3. **संचालन घाटा क्या होता है?**

   - **उत्तर**: संचालन घाटा उस स्थिति को कहते हैं जब सरकार की आय उसके संचालन व्यय से कम होती है। इसका मतलब है कि सरकार के पास अपनी रोज़मर्रा की गतिविधियाँ चलाने के लिए पर्याप्त आय नहीं है और उसे अतिरिक्त धनराशि उधार लेनी पड़ती है।

4. **वित्तीय वर्ष (Fiscal Year) क्या है और यह कब से कब तक होता है?**

   - **उत्तर**: वित्तीय वर्ष वह अवधि है जिसके दौरान सरकार अपनी आय और व्यय का हिसाब करती है। भारत में वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से 31 मार्च तक होता है।

5. **सरकारी बजट का क्या उद्देश्य है?**
    - **उत्तर**: सरकारी बजट का उद्देश्य सरकार के आय और व्यय का अनुमान लगाना और विभिन्न विकास कार्यों और योजनाओं के लिए धन आवंटित करना है। बजट के माध्यम से सरकार आर्थिक नीतियों का निर्धारण करती है और देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है।
6. **सामान्य विनियोग और पूंजीगत व्यय में क्या अंतर है?**
    - **उत्तर**:
        - **सामान्य विनियोग**: यह वह धनराशि है जो सरकार के सामान्य कार्यों और प्रशासनिक सेवाओं के लिए खर्च होती है।
        - **पूंजीगत व्यय**: यह वह खर्च है जो सरकार द्वारा विकासात्मक कार्यों, इंफ्रास्ट्रक्चर निर्माण, और दीर्घकालिक संपत्तियों पर किया जाता है, जैसे भवन निर्माण, सड़क निर्माण आदि।
7. **सरकारी व्यय के वित्तीय घाटे पर क्या प्रभाव होते हैं?**
    - **उत्तर**: यदि सरकारी व्यय आय से अधिक होता है, तो इसे वित्तीय घाटा कहा जाता है। इससे सरकार को कर्ज लेने की आवश्यकता हो सकती है, जो दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता को प्रभावित कर सकता है। अत्यधिक वित्तीय घाटा मुद्रास्फीति और आर्थिक असंतुलन का कारण बन सकता है।
8. **अस्थायी विनियोग (Supplementary Appropriation) क्या है?**
    - **उत्तर**: अस्थायी विनियोग वह अतिरिक्त धनराशि है जो पहले से अनुमोदित बजट में किसी अनपेक्षित व्यय या योजना के लिए स्वीकृत की जाती है। यह धन आमतौर पर अप्रत्याशित परिस्थितियों में जरूरत पड़ने पर आवंटित किया जाता है।

9. **सरकारी ऋण क्या होता है?**
    - **उत्तर**: सरकारी ऋण वह धनराशि होती है जो सरकार विभिन्न स्रोतों से उधार लेती है, जैसे घरेलू और विदेशी कर्ज, बॉन्ड्स आदि। यह ऋण सरकारी व्यय को पूरा करने के लिए लिया जाता है और इसे निर्धारित समय सीमा के भीतर चुकता करना होता है।
10. **पुनर्निवेश (Reinvestment) का क्या अर्थ है?**
    - **उत्तर**: पुनर्निवेश का अर्थ है उस धनराशि का पुनः निवेश करना, जो पहले किसी पूंजीगत व्यय से प्राप्त हुआ हो। इसका उद्देश्य किसी आर्थिक गतिविधि या परियोजना के द्वारा उत्पन्न लाभ को फिर से विकास कार्यों या अन्य परियोजनाओं में लगाना है।

11.11 संदर्भ ग्रंथ

- बालाकृष्णन, पी. (2022). *भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनःप्राप्ति: राजनीतिक अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण.* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- नागराज, आर. (2019). *भारत में आर्थिक विकास और विकास: नए दृष्टिकोण.* रूटलेज।
- बसु, के. (2018). *विश्वास का गणतंत्र: कानून और अर्थशास्त्र पर नया दृष्टिकोण.* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पानागारिया, ए. (2020). *भारत असीमित: खोई हुई महिमा को पुनः प्राप्त करना.* हार्पर कॉलिन्स।
- घोष, अ. (2021). *21वीं सदी में भारत की उभरती अर्थव्यवस्था: प्रदर्शन और संभावनाएं.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- शर्मा, आर. (2023). *आधुनिक भारतीय वित्तीय प्रबंधन.* नई दिल्ली: भारतीय शैक्षणिक प्रकाशन।

- जैन, वी. (2020). *सरकारी व्यय और आर्थिक नीतियां.* नई दिल्ली: रजत पब्लिकेशन।

11.12 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामान्य विनियोग से आप क्या समझते हैं? विनियोग के रूपों का वर्णन कीजिए।

What do you understand by General investment? Discuss forms of investment.

2. विनियोग का क्या आशय है? विनियोग को प्रोत्साहित करने के उपाय समझाइये ।

What is meant by investment? Explain measures to stimulate investment.

3. सरकारी व्यय का क्या आशय है? सरकारी या सार्वजनिक व्यय का महत्व स्पष्ट कीजिए। What is meant by Govt. expenditure? Explain importance of Govt. or public expenditure.

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सामान्य विनियोग का क्या आशय है?

What is the meaning of simple investment.

2. सरकारी व्यय से आप क्या सम्झते हैं?

What do you understand by Govt. expenditure.

3.निजी एवं सार्वजनिक विनियोग में क्या अंतर है?

What is the difference between private and Govt. investment.

4. विनियोग के प्रकार या रूप लिखिए।

Write kinds or forms of investment.

5. सार्वजनिक या सरकारी व्यय का महत्व बताइये ।

Explain importance of public or govt. expenditure.

6. सार्वजनिक व्यय के दोष लिखिए।

Write the defects of public expenditure

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से कौन सा विनियोग का रूप है-

(अ) प्रेरित विनियोग

(ब) स्वायत्त विनियोग

(स) सार्वजनिक विनियोग

(द) उपरोक्त सभी।

2. निम्न में से कौनसा विनियोग लाभ से प्रेरित होता है-

(अ) प्रेरित विनियोग

(ब) स्वायत्त विनियोग

(स) सार्वजनिक विनियोग

(द) सरकारी विनियोग।

3. मन्दी को दूर करने के लिए कीन्स ने कौनसा विनियोग अधिक महत्वपूर्ण माना है-

(अ) निजी विनियोग

(ब) सरकारी विनियोग

(स) प्रेरित विनियोग

(द) उपर्युक्त सभी ।

उत्तर- 1. (द), 2. (अ), 3. (ब) 1

इकाई -12

गुणक का सिद्धान्त

12.1 प्रस्तावना

12.3 उद्देश्य

12.3 गुणक

12.4 गुणक की सीमाएँ

12.5 गुणक एवं अर्थव्यवस्था में रिसन

12.6 गुणक सिद्धान्त की आलोचना

12.7 त्वरक की धारणा

12.8 सार संक्षेप

12.9 मुख्य शब्द

12.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

12.11 संदर्भ ग्रंथ

12.12 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रो. जे. एम. कीन्स ने विनियोग गुणक एवं प्रो. क्लार्क ने त्वरक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रो. कीस ने अपने सामान्य सिद्धान्त में गुणक की व्याख्या करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि प्रारम्भिक निवेश की तुलना में आय कई गुना अधिक बढ़ती है। इसी प्रकार प्रो. क्लार्क ने त्वरक के माध्यम से उपभोग एवं निवेश के मध्य सम्बन्ध को प्रदर्शित किया है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों, जिनमें प्रो. हैन्सन, प्रो. हैरोड, प्रो. हिक्स, प्रो. सैम्युल्सन आदि प्रमुख हैं, ने गुणक एवं त्वरक की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया का विश्लेषण करके उपरि-

गुणक (Super-multiplier) की धारणा का प्रतिपादन किया है। प्रस्तुत अध्याय में इन सभी सिद्धान्तों का विस्तार से अध्ययन किया गया है।

12.3 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. गुणक के सिद्धांत को समझ कर इसका व्यावहारिक उपयोग कर सकें।
4. विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में गुणक के प्रभावों का विश्लेषण कर सकें।
5. अर्थव्यवस्था में संतुलन बनाए रखने में गुणक के सिद्धांत का महत्व समझ सकें।

12.3 गुणक

गुणक सिद्धान्त को सुपरिभाषित करने एवं लोकप्रिय बनाने का श्रेय प्रो. कींस को है, किन्तु इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 19वीं शताब्दी के आरम्भ में ही हो चुका था। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री विकसेल (Wicksell) ने गुर्णक शब्द का प्रयोग किये बिना अपनी पुस्तक 'Interest and Prices' में इसकी व्याख्या की है। तदुपरांत सन् 1903 में जर्मन अर्थशास्त्री प्रो. जोहानसेन (Prof. Johansen) ने इसकी व्याख्या की। किन्तु इस धारणा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान कराने का श्रेय प्रो. कींस को ही है। इसके बाद प्रो. आर. एफ. काहन (Prof. R.F. Kahn) ने रोजगार गुणक की व्याख्या की।

गुणक का अर्थ प्रो. कीस के गुणक को विनियोग गुणक कहा जाता है, क्योंकि इस धारणा के द्वारा कीस ने विनियोग एवं आय के पारस्परिक सम्बन्ध को दर्शाया है। प्रो. कींस का विचार है कि प्रारम्भिक विनियोग के कारण आय में कई गुनी अधिक वृद्धि होती है। प्रारम्भिक विनियोग के कारण हुई आय में अन्तिम वृद्धि को ही विनियोग गुणक की संज्ञा दी जाती है। संक्षेप में, कीस का गुणक सिद्धान्त इस तथ्य को प्रकट करता है

कि निवेश की मात्रा में प्रारम्भिक वृद्धि का प्रभाव पहले तो उपभोग को तथा अन्त में राष्ट्रीय आय को परिवर्तित करके कई गुना बढ़ा देता है।

अर्थव्यवस्था में गुणक के क्रियाशील होने का कारण यह है कि जब प्रारम्भिक विनियोग या निवेश कहा कि गण किया जाता है तो सर्वप्रथम उस उद्योग की आय में वृद्धि होती है जिसमें कि निवेश किया गया है। तदुपरांत उद्योग के लिए आवश्यक कच्चा माल, श्रमिक, पूँजी, मशीने आदि की माँग में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप इन सभी की आय बढ़ती है। इसके बाद उत्पादन के साधन अपनी आय को अन्य वस्तुओं एवं सेवाओं में व्यय करते हैं जिससे इन वस्तुओं एवं सेवाओं के स्वामियों की आय बढ़ती है। इस प्रकार, किसी उद्योग विशेष में प्रारम्भिक विनियोग करने से अनेक अन्य उद्योगों की आय में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप कुल आय में वृद्धि विनियोग की तुलना में कई गुना अधिक हो जाती है।

गुणक की गणना

प्रो. कींस के अनुसार गुणक का आकार सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume) पर निर्भर करता है। यदि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति अधिक है, तो गुणक का आकार भी अधिक होता है, अर्थात् आय में वृद्धि भी अधिक होती है। इसके विपरीत, यदि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कम है, समाप्त अर्थशास्त्र तथा मुद्रा एवं बैंकिंग तो गुणक का आकार भी कम होता है, अर्थात् आय में तुलनात्मक वृद्धि कम होती है। गुणक के आकार की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है-

K या गुणक $\frac{1}{1-\mathrm{MPC}}$ OR $\mathrm{K} = \frac{1}{1-\left(\frac{\Delta \mathrm{C}}{\Delta \mathrm{Y}}\right)}$

सूत्र में MPC= सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति, ΔC उपभोग में परिवर्तन एवं ΔY= आय में परिवर्तन

उदाहरण :- यदि यह मान लिया जाए कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति 3/4 या 0.75 है, तो गुणक के आकार की गणना निम्न प्रकार होगी -

$$K = \frac{1}{1 - \frac{3}{4}} \qquad \text{OR} \quad \frac{1}{\frac{1}{4}} \qquad \text{OR} \quad \frac{1}{1} \times \frac{4}{1} = 4$$

अर्थात् निवेश की तुलना में आय चार गुना अधिक बढ़ती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति और सीमान्त बचत प्रवृत्ति का योग 1 होता है (MPC + MPS = 1)। अतः यदि MPC (सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति) को एक में से घटा दिया जाता है तो MPS या सीमान्त बचत प्रवृत्ति शेष रहती है। इस आधार पर गुणक की गणना का सूत्र निम्न प्रकार होगा –

$$K = \frac{1}{MPS} \qquad \text{यहाँ} \quad (MPS = \text{सीमान्त बचत प्रवृत्ति})$$

यहाँ (MPS सीमान्त बचत प्रवृत्ति)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति और सीमान्त बचत प्रवृत्ति में से किसी भी एक का मूल्य यदि ज्ञात है, तो गुणक की गणना की जा सकती है। तालिका-एक में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति, सीमान्त बचत प्रवृत्ति एवं गुणक का आकार दर्शाया गया है-

तालिका-1

गुणक का आकार

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC)	**सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS)**	**गुणक का आकार (K)**

1/3	2/3	1.5
1/2	1/2	2.0
3/4	1/4	4.0
4/5	1/5	5.0
9/10	1/10	10.0
99/100	1/100	100.0

तालिका एक से यह स्पष्ट है कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति जितनी अधिक होती है, उतना ही गुणक का आकार अधिक होता है। गुणक के आकार को रेखा चित्र एक के द्वारा भी दर्शाया जा सकता है।

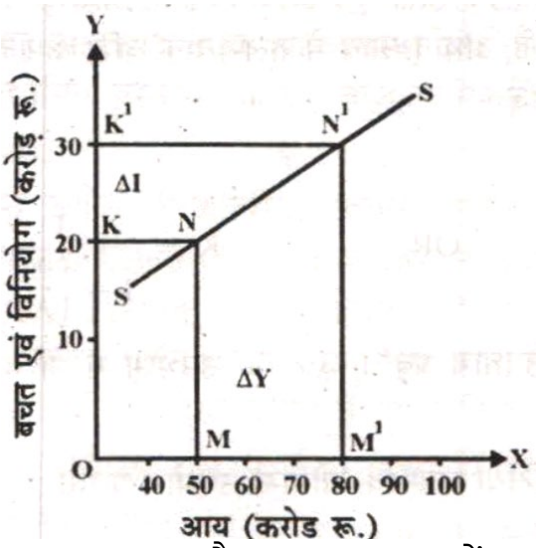

रेखाचित्र एक में OX अक्ष पर आय एवं OY अक्ष पर बचत एवं विनियोग को दर्शाया गया है। जब आय 50 करोड़ रुपये होती है तब विनियोग 20 करोड़ रुपये रहता है, किन्तु यदि विनियोग 20 करोड़ से बढ़कर 30 करोड़ रुपये, अर्थात् 10 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है, तब आय 50 करोड़ रुपये से बढ़कर 80 करोड़ रुपये हो जाती है, अर्थात् 30 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है। यहाँ गुणक का आकार 3 है। इस उदाहरण में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति 2/3 एवं सीमान्त बचत प्रवृत्ति 1/3 है।

गुणक का कार्यकरण (Working of Multiplier)

गुणक सिद्धान्त बताता है कि प्रारम्भिक विनियोग में वृद्धि अर्थव्यवस्था की कुल आय में कई गुना वृद्धिश्कर देती है। अर्थव्यवस्था में गुणक की क्रियाशीलता को एक उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है। मान लीजिए किसी अर्थव्यवस्था में सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) 34 या 75 प्रतिशत है। ऐसी स्थिति में गुणक का मान 4 होगा। माना कि सरकार द्वारा प्रारम्भिक विनियोग 100 करोड़ रुपये का किया जाता है। इससे आय में गुणक के कारण 400 करोड़ रुपये की वृद्धि होगी। इस उदाहरण को निम्नलिखित तालिका-2 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका - दो

गुणक का कार्यकरण

(करोड़ रुपये)

चक्र	प्रारम्भिक विनियोग (ΔI)	आय में वृद्धि (ΔY)	उपभोग में वृद्धि (ΔC)	बचत में वृद्धि (ΔS)
1	100	100	75	25
2		75	56.25	18.75
3		56.25	42.19	14.06
4		42.19	31.64	10.55
5		31.64	23.73	7.19
6		23.73	17.8	5.93

7		17.8	13.35	4.45
8		13.35	10.01	3.34
9		0	0	0
अन्त में	**100**	**400**	**300**	**100**

तालिका-दो से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक अवस्था में मूल विनियोग की राशि 100 करोड़ रुपये है। इससे प्रथम चक्र में लोगों की आय में 100 करोड़ रुपये की वृद्धि होगी। चूंकि लोग अपनी आय का 75 प्रतिशत उपभोग पर व्यय करते हैं. इसलिये द्वितीय चक्र में लोगों की आय में 75 करोड़ रुपये की वृद्धि होगी। तृतीय चक्र में, लोग इस 75 करोड़ रुपये आय का 75 प्रतिशत उपभोग करेंगे, अतः लोगों

की आय में 56.25 करोड़ रुपये की वृद्धि होगी। चतुर्थ चक्र में, लोग 56.25 करोड़ रुपये आय में 75 प्रतिशत का उपभोग करेंगे। फलस्वरूप लोगों की आय में 42.19 करोड़ रुपये की वृद्धि होगी। इसी प्रकार एक गुणक चक्र के बाद दूसरा चक्र प्रारम्भ होता जायेगा। लेकिन प्रत्येक चक्र में आय में वृद्धि पूर्व चक्र की तुलना में कम होती जायेगी। इसका कारण यह है कि लोग आय में वृद्धि का एक भाग (उदाहरण में 75 प्रतिशत) ही उपभोग पर व्यय करते हैं जबकि आय का एक भाग (उदाहरण में 25 प्रतिशत) बचत कर लेते हैं। यह क्रम उस समय तक चलता रहेगा जब तक कुल आय में वृद्धि इतनी न हो जाए कि बचत की मात्रा में कुल वृद्धि प्रारम्भिक विनियोग के बराबर हो जाए। इसका परिणाम यह होगा कि 100 करोड़ रुपये के प्रारम्भिक विनियोग से एक निश्चित अवधि के पश्चात कुल आय में 400 करोड़ रुपये की वृद्धि होगी तथा कुल बचत में 100 करोड़ रुपये की वृद्धि होगी जो प्रारम्भिक विनियोग के बराबर है।

12.4 गुणक की सीमाएँ

गुणक सिद्धान्त की सीमाएँ निम्न प्रकार है-

(1) निवेश में शुद्ध वृद्धि (Net Increase in Investment)- गुणक की क्रियाशीलता के लिए यह आवश्यक है कि निवेश में शुद्ध वृद्धि होनी चाहिए। यदि एक क्षेत्र में निवेश होता है और दूसरे क्षेत्र में निवेश की मात्रा कम हो जाती है, तब शुद्ध निवेश में वृद्धि नहीं होती और परिणामस्वरूप गुणक भी क्रियाशील नहीं होता है

(ii) उपभोग वस्तुओं की उपलब्धता (Availability of Consumer Goods)- गुणक की क्रियाशीलता के लिए यह आवश्यक है कि माँग में वृद्धि के साथ-साथ उन्हें पूरा करने के लिए उपभोक्ता वस्तुओं की उपलब्धता पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए। यदि बाजार में उपभोक्ता वस्तुओं का अभाव रहता है तो उपभोग व्यय कम हो जायेगा या सीमान्त उपभोक्ता प्रवृत्ति कम हो जायेगी। फलतः गुणक का आकार घट जायेगा।

(iii) निवेश में निरन्तरता (Continuity in Investment)- गुणक के पूर्ण आकार की प्राप्ति तभी होती है जब निवेश में निरन्तरता बनी रहे, अर्थात् प्रत्येक क्रम में माँग बढ़ने से उत्पादन में वृद्धि हो एवं निवेश बढ़े। यदि निवेश का क्रम जारी नहीं रहता है तो गुणक का आकार भी कम हो जाता है।

(iv) बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy)- कौंस की यह मान्यता है कि अर्थव्यवस्था का स्वरूप बन्द है, अर्थात् अन्य देशों से व्यापार नहीं होता। यदि किसी देश का अन्य देश से व्यापार होता है, तो इसका प्रभाव गुणक पर पड़ता है।

(v) न्यून रोजगार (Under-employment)- गुणक तभी क्रियाशील होता है जब अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की स्थिति विद्यमान हो। इससे आशय यह है कि यदि अर्थ व्यवस्था में उत्पादन के साधन बेरोजगार हैं, तभी माँग में वृद्धि होने पर उत्पादन की मात्रा में भी वृद्धि होती है। यदि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति विद्यमान है, तब माँग में

वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन, आय एवं रोजगार में वृद्धि होना सम्भव नहीं होता है। परिणामस्वरूप माँग में वृद्धि होने के कारण मूल्य में वृद्धि होने लगती है।

(vi) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति का स्थिर रहना (Stability in Marginal Propensity to Consume) - गुणक सिद्धान्त की क्रियाशीलता इस मान्यता पर भी आधारित है कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है। यदि आय में विस्तार के दौरान सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति में अन्तर आता है तो गुणक का आकार भी परिवर्तित हो जाता है।

(vii) समय अन्तराल (Time Gap)- यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि आय की प्राप्त तथा उसके व्यय के मध्य समय में अन्तर नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर ही गुणक का आकार सही रहता है। आय प्राप्ति एवं उसके व्यय में जितना अधिक अन्तर होता है, उतना ही गुणक का मूल्य कम होता है।

(viii) विकसित एवं औद्योगिक अर्थव्यवस्था (Developed & Industrial Economy) - गुणक की क्रियाशीलता के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था औद्योगीकृत होनी चाहिए। कृषि प्रधान एवं पिछड़ी अर्थव्यवस्था में औद्योगिक वस्तुओं की माँग बहुत सीमित होती है, जिससे गुणक स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर पाता।

(ix) उपभोक्ता वस्तु उद्योग में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता का होना (Surplus Production Capacity in Consumer Goods Industry)- गुणक के क्रियाशील होने से निवेश एवं उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि उपभोक्ता वस्तु उद्योग में अतिरिक्त उत्पादन क्षमता विद्यमान हो। यदि उत्पादन क्षमता विद्यमान नहीं होती है, तो माँग में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि सम्भव नहीं होती है। ऐसी स्थिति में गुणक क्रियाशील नहीं होता है।

12.5 गुणक एवं अर्थव्यवस्था में रिसन

प्रो. कींस का मत है कि अर्थव्यवस्था में अनेक ऐसे तत्व पैदा हो जाते हैं जिनसे कि गुणक ठीक ढंग से कार्य नहीं कर पाता। कींस ने इन्हीं तत्वों को रिसन या लीकेज कहा है। अर्थव्यवस्था मे रिसन पैदा करने वाले तत्व निम्न प्रकार हैं-

(1) बचत प्रवृत्ति (Propensity to Save)- सामान्यतः व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण आय का उपभोग नहीं करता वरन् उसका एक भाग बचत के रूप में रखता है। बचत किया गया भाग आय-धारा से हट जाता है, जिसके कारण गुणक का प्रभाव कम हो जाता है। इस प्रकार बचत प्रवृत्ति जितनी अधिक होती है, गुणक प्रभाव उतना ही कम होता है।

(ii) नकद मुद्रा का संग्रह (Hoarding of Cash Money)- यदि व्यक्ति द्वारा की गई बचत का विनियोग हो जाता है तो आय-धारा क्रमशः प्रवाहित होती रहती है। किन्तु यदि व्यक्ति निष्क्रिय नकदी का संग्रह कर लेता है तो इससे आय-प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती है और फलतः गुणक का आकार भी कम हो जाता है।

(iii) ऋणों का भुगतान (Payment of Debts)- यदि बढ़ी हुई आय को पुराने ऋणों के भुगतान में लगा दिया जाता है तो उपभोग व्यय में वृद्धि नहीं होती, जिसके कारण गुणक का आकार भी कम हो जाता है।

(iv) आयातित वस्तुओं पर व्यय (Expenditure on Imported Goods)- यदि बढ़ी हुई आय को आयातित वस्तुओं पर व्यय किया जाता है तो उसका प्रभाव घरेलू उत्पादन एवं रोजगार पर नहीं पड़ता। इसके कारण देश में गुणक क्रियाशील नहीं होता। इसके विपरीत, गुणक उस देश में क्रियाशील होता है जहाँ से वस्तुओं का आयात किया गया है। इस प्रकार आयातित वस्तुओं पर होने वाला व्यय एक रिसन है जिससे गुणक पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(v) करारोपण (Taxation) - करारोपण का आय एवं उपभोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे गुणक का आकार कम हो जाता है। करारोपण से व्यक्ति की आय में कमी हो जाती है और परिणामस्वरूप उपभोग कम हो जाता है। इसके साथ ही कुछ

करों से वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है जिससे उपभोक्ता की वास्तविक आय कम हो जाती है। फलतः गुणक की क्रियाशीलता में बाधा उत्पन्न होती है।

(vi) मूल्य-वृद्धि (Hike in Prices)- मूल्य वृद्धि से व्यक्ति एवं समाज की वास्तविक आय कम हो जाती है, जिसके कारण उपभोग स्तर में कमी हो जाती है। ऐसी स्थिति में गुणक विपरीत दिशा में कार्य करने लगता है।

(vii) पुराने स्टाक में विनियोग (Investment in Old Stocks)- प्रो. कीस ने अपने रोजगार सिद्धान्त में शुद्ध विनियोग को आवश्यक बताया है, किन्तु जब विनियोग पुराने स्टाक में होता है तो उससे शुद्ध विनियोग में वृद्धि नहीं होती। फलतः गुणक क्रियाशील नहीं होता।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था में अनेक प्रकार की रिसन भी क्रियाशील रहती है जिससे गुणक का आकार कम हो जाता है। इस सन्दर्भ में, यह भी उल्लेखनीय है कि गुणक विपरीत दिशा में भी क्रियाशील होता है, अर्थात् विनियोग में कमी होने पर आय कई गुना समष्टि अर्थशास्त्र तथा मुद्रा एवं बैंकिंग अधिक कम हो जाती है।

12.6 गुणक सिद्धान्त की आलोचना

गुणक की आलोचना के प्रमुख आधार निम्न प्रकार है -

(1) परस्पर विरोधी धारणा (Controversial Statements) कींस ने गुणक की व्याख्या करते हुए यह बताया है कि आय का कुछ भाग न तो व्यय किया जाता है और न ही विनियोजित, अर्थात् निष्क्रिय संग्रह के रूप में रख लिया जाता है। इसके विपरीत, रोजगार सिद्धान्त की व्याख्या में कींस ने यह स्पष्ट किया है कि बचत एवं विनियोग बराबर होते हैं, अर्थात् निष्क्रिय संग्रह नहीं होता। इस प्रकार कींस ने परस्पर विरोधी विचार दिये हैं।

(ii) निवेश और आय में कोई स्पष्ट, पूर्व-निश्चित और याँत्रिक सम्बन्ध नहीं होता (Investment & Income has no Clear, Pre-decided & Mechanical Relation-ship)- प्रो. हैजलिट गुणक की धारणा को काल्पनिक एवं मनगढ़न्त धारणा मानते हैं। उनका मत है, "निवेश एवं आय में कोई स्पष्ट, पूर्व-निश्चित एवं याँत्रिक सम्बन्ध नहीं होता। यह एक नितान्त अनुपयोगी एवं बच्चों के खिलौने के समरूप धारणा है जिसकी व्याख्या कुछ अर्थशास्त्रियों ने आवश्यकता से अधिक लोकप्रिय बनने के उद्देश्य से की है।"

(iii) बेकार की धारणा (Useless Concept)- प्रो. स्टिगलर का मत है कि यह धारणा कीस के सिद्धान्त का एक विचित्र अंश है। इसी प्रकार प्रो. हट्ट का मत है कि गुणक का सिद्धान्त कींस के सामान्य सिद्धान्त का सबसे बेकार भाग है और इसकी व्याख्या करके कीस ने अर्थशास्त्र का बहुत अहित किया है।

12.7 त्वरक की धारणा

त्वरक जिसे गतिवर्धक भी कहा जाता है, से सम्बन्धित विचारों का उल्लेख सर्वप्रथम फ्रांसीसी अर्थशास्त्री अलबर्ट अफ्तालियन (Albert Aftalion) ने किया। तदुपरान्त प्रो. क्लार्क ने इसे पूर्णरूप से विकसित करके लोकप्रिय बनाया। प्रो. क्लार्क ने त्वरक के द्वारा उपभोग एवं निवेश के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या की है। त्वरक निवेश की मात्रा पर उपभोग की दर में वृद्धि या कमी के प्रभावों की माप है। दूसरे शब्दों में उपभोग वस्तुओं की माँग में वृद्धि के परिणामस्वरूप निवेश में होने वाली वृद्धि की माप को त्वरक कहा जाता है। सामान्यतः यह देखा जाता है कि उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि होने से उन पूँजीगत वस्तुओं, जैसे मशीनें आदि, की माँग में वृद्धि होती है जिनके द्वारा ये उपभोक्ता वस्तुएँ बनाई जाती हैं। दूसरे शब्दों में, मशीनों एवं अन्य पूँजीगत वस्तुओं में होने वाला निवेश उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि के कारण बढ़ता है। चूँकि उपभोक्ता वस्तु उद्योग निवेश वस्तु उद्योग (मशीन आदि) का आधार होता है। फलतः उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि होने से निवेश वस्तु-उद्योग की माँग में वृद्धि होना

स्वाभाविक है। इस प्रकार त्वरक का सिद्धान्त उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप निवेश वस्तुओं की माँग में होने वाले परिवर्तनों की माप करता है। त्वरक की क्रियाशीलता को निम्न प्रकार उदाहरण के द्वारा सरलता से समझा जा सकता है

उदाहरण यदि यह मान लें कि किसी उपभोक्ता वस्तु की 10,000 इकाइयों के उत्पादन के लिए 100 मशीनों की आवश्यकता होती है और एक मशीन का जीवनकाल 10 वर्ष है। इस स्थिति में उपभोग की 10,000 इकाइयों के उत्पादन को प्रतिवर्ष निरन्तर जारी रखने के लिए अर्थव्यवस्था में हर वर्ष 10 मशीनों का निर्माण करना आवश्यक होता है। इसका कारण यह है कि उत्पादन निरन्तर चालू रखने के लिए प्रति वर्ष 10 मशीनों की माँग होती है। दूसरे शब्दों में यदि उपभोग वस्तुओं की माँग स्थिर रहती है तो अर्थव्यवस्था में मशीन उद्योग केवल 10 मशीनों का प्रतिवर्ष उत्पादन करता है। मशीनों की यह माँग पुनर्स्थापना माँग (Replacement Demand) कहलाती है।

किन्तु, यदि अब यह मान लिया जावे कि उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में 10 प्रतिशत की वृद्धि होती है, अर्थात् 1000 उपभोक्ता इकाइयों की माँग में वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में उपभोग की 1000 इकाइयों का निर्माण करने के लिए 10 अतिरिक्त मशीनों की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार बढ़ी हुई उपभोक्ता वस्तुओं की माँग (10 प्रतिशत) को पूरा करने के लिए कुल 20 मशीनों की आवश्यकता होगी, 10 मशीनें पुनर्स्थापना के लिए तथा 10 मशीनें बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए। इस स्थिति में मशीनों की माँग अब पूर्व की तुलना में दुगुनी हो जाती है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में केवल 10 प्रतिशत की वृद्धि होने पर निवेश वस्तुओं (मशीनों आदि) की माँग में 100 प्रतिशत की वृद्धि होती है। यही त्वरक का मूल्य होगा या त्वरक 10 होगा। इस उदाहरण से प्राप्त निष्कर्ष को इस प्रकार से भी व्यक्त किया जा सकता है कि यदि उपभोग में 10 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है, तो मशीन उद्योग या निवेश वस्तु उद्योग में दस गुनी अधिक अथवा 100 करोड़ रुपये की वृद्धि होगी, क्योंकि त्वरक का मूल्य 10 है। इसी प्रकार यदि

उपभोक्ता वस्तु-उद्योग में 10 करोड़ की वृद्धि होने पर निवेश वस्तु-उद्योग में 50 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है, तो त्वरक का मूल्य 5 होगा।

त्वरक का कार्यकरण

उपर्युक्त उदाहरण को निम्नलिखित तालिका-तीन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका - तीन

त्वरक का कार्यकरण

समय अवधि	उपभोग वस्तुओं का उत्पादन	आवश्यक पूँजीगत विनियोग वस्तु (मशीनें)	प्रतिस्थापन विनियोग (मशीनें)	प्रेरित विनियोग (मशीनों की माँग)	कुल विनियोग (कुल नयी मशीनों की माँग)
	1,000	100	10	0	10
	1,100	110	10	10	20

उपर्युक्त तालिका-तीन से स्पष्ट होता है कि समय अवधि में उपभोग वस्तुओं की माँग में 10 प्रतिशत की वृद्धि कुल विनियोग में 100 प्रतिशत की वृद्धि कर देती है। इस प्रकार उपभोग या उत्पादन की तुलना में विनियोग में 10 गुना वृद्धि होती है। अतः त्वरक का मूल्य 10 है।

त्वरक की सीमाएँ या मान्यताएँ

अर्थशास्त्र के अन्य सिद्धान्तों के समान ही त्वरक का सिद्धान्त भी कुछ मान्यताओं या सीमाओं पर आधारित है। ये सीमाएँ या मान्यताएँ निम्न प्रकार है-

त्वरक (i) मशीनों की क्षमता का पूर्ण उपयोग (Full Utilisations of the Capacity of Machines)- के सिद्धान्त की क्रियाशीलता के लिए यह आवश्यक है कि विद्यमान मशीनों की समुचित क्षमता का उपयोग हो रहा हो। यदि मशीनों की क्षमता का पूर्ण

उपयोग नहीं हो रहा है तो उपभोक्ता वस्तुओं की बढ़ी हुई माँग की पूर्ति विद्यमान मशीनों के द्वारा हो जाती है। इस स्थिति में मशीनों पर विनियोग नहीं होता, अर्थात् त्वरक का सिद्धान्त लागू नहीं होता।

(ii) रोजगार की स्थिति (Position of Employment) यदि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति विद्यमान होती है, तो त्वरक लागू नहीं होता। इसका कारण यह है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति में निवेश उद्योगों (मशीन उद्योग) में विनियोग उत्पत्ति के साधनों की अनुपलब्धता के कारण सम्भव नहीं होता। अतः त्वरक की क्रियाशीलता के लिए न्यून रोजगार की स्थिति का होना आवश्यक है।

(iii) उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में स्थायी वृद्धि (Stable Growth in the Demand of Consumer Goods) जब उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में अस्थायी वृद्धि होती है, तब मशीनों में निवेश नहीं होता। फलतः त्वरक भी लागू नहीं होता। अस्थायी उपभोक्ता वस्तुओं की माँग को पूरा करने के लिए विद्यमान मशीनों से ही अधिक उत्पादन करके पूरा किया जाता है। इसका कारण यह है कि ऐसी स्थिति में विनियोगकर्ताओं को भावी लाभ की सम्भावना शून्य रहती है। फलतः अतिरिक्त निवेश नहीं होता है।

(iv) दीर्घकालीन दृष्टिकोण (Long-term Approach) यदि किसी देश में निवेश का कार्य दीर्घकालीन दृष्टिकोण के आधार पर किया जाता है तो वहाँ उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन स्वतः बढ़ता जाता है। नियोजित अर्थव्यवस्था इसका एक उदाहरण है। ऐसी स्थिति में त्वरक का सिद्धान्त लागू नहीं होता।

(v) मशीनों की आयु एवं उनकी मरम्मत (Durability & Repairs of Machines) - उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि होने पर सामान्यतः उत्पादक पुरानी मशीनों की मरम्मत करके उत्पादन बढ़ाने का प्रयास करता है। फलतः यदि मशीनों की प्रकृति मरम्मत योग्य होती है, तो त्वरक का प्रभाव कम हो जाता है। इसी प्रकार यदि मशीनों की

आयु अधिक समय तक कार्य करने वाली होती है तो त्वरक का आकार कम और यदि मशीनों की आयु कम होती है तो त्वरक का आकार अधिक होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यद्यपि त्वरक की धारणा अनेक मान्यताओं पर आधारित है, तथापि यह आय एवं रोजगार के स्तर में वृद्धि की प्रक्रिया के वैज्ञानिक विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसका कारण यह है कि त्वरक के द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि उपभोग में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप निवेश उद्योगों में आय एवं रोजगार किस दर से और कितना बढ़ता है। इस प्रकार, त्वरक की क्रियाशीलता गुणक के लिए एक पूरक यंत्र का कार्य करती है।

उपरि-गुणक या महागुणक

आधुनिक अर्थशास्त्रियों, जिनमें प्रो. हैन्सन, प्रो. हैराड, प्रो. हिक्स, प्रो. सैम्युलसन, प्रो. कुरिहार आदि के नाम प्रमुख हैं, ने गुणक एवं त्वरक की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया का विश्लेषण किया है। इसी को उपरि-गुणक या महागुणक कहा जाता है। प्रो. हेन्सन ने गुणक एवं त्वरक की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया को "Leverage Effect" कहा है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि गुणक एवं त्वरक की परस्पर क्रियाशीलता से कुल रोजगार एवं कुल आय पर कई गुना अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रारम्भिक निवेश से आय एवं निवेश में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है। यह गुणक का प्रभाव है। तदुपरान्त, उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि से निवेश उद्योगों में विस्तार होता है और परिणामस्वरूप आय एवं रोजगार बढ़ता है। यह त्वरक प्रभाव है।

त्वरक प्रभाव के परिणामस्वरूप निवेश उद्योगों या मशीन उद्योग, जिसे व्युत्पन्न निवेश भी कहा जाता है, में विनियोग होने से पुनः गुणक की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप आय एवं रोजगार में वृद्धि कई गुना अधिक हो जाती है। संक्षेप में, गुणक

एवं त्वरक की परस्पर क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप आय एवं रोजगार में कई गुनी अधिक वृद्धि होती है।

12.8 सार संक्षेप

गुणक का सिद्धान्त (Principle of Factorization) का उद्देश्य संख्याओं या बहुपदों (polynomials) को उनके गुणकों के रूप में विभाजित करना है। यह सिद्धान्त गणित में समीकरणों को सरल बनाने, उनकी जड़ों (roots) को पहचानने और समस्याओं को हल करने में सहायक होता है।

सार संक्षेप:

1. **संख्याओं का विभाजन**: किसी संख्या के गुणकों को पहचानने के लिए।
2. **बहुपदों का विभाजन**: बहुपदों को उनके गुणकों में विभाजित करना, जिससे उन्हें सरल और हल करना आसान होता है।
3. **समस्या समाधान**: गणितीय समस्याओं को हल करने में सहायक।
4. **समीकरणों के हल**: समीकरणों को गुणकों में विभाजित करके उनकी जड़ें ज्ञात करना।
5. **गणितीय विश्लेषण**: गणितीय रूपों और गुणों को समझने में सहायता करना।

12.9 मुख्य शब्द

गुणक का सिद्धान्त (Principle of Factorization) से संबंधित कुछ प्रमुख मुख्य शब्द निम्नलिखित हैं:

1. **गुणक (Factor)**: कोई ऐसी संख्या, पद, या अभिव्यक्ति, जिसे अन्य संख्याओं या पदों द्वारा विभाजित किया जा सकता है, जिससे बिना शेष के भाग निकलता है।

- उदाहरण: (x+2)(x + 2)(x+2) और (x+3)(x + 3)(x+3) गुणक हैं, यदि x2+5x+6=(x+2)(x+3)x^2 + 5x + 6 = (x + 2)(x + 3)x2+5x+6=(x+2)(x+3) हो।

2. **गुणनखंड (Factorization)**: किसी संख्या, बहुपद या अभिव्यक्ति को उसके गुणकों में विभाजित करने की प्रक्रिया।
   - उदाहरण: x2+5x+6x^2 + 5x + 6x2+5x+6 को (x+2)(x+3)(x + 2)(x + 3)(x+2)(x+3) में विभाजित करना।
3. **बहुपद (Polynomial)**: एक गणितीय अभिव्यक्ति जिसमें कई पद होते हैं, जैसे ax2+bx+cax^2 + bx + cax2+bx+c।
   - उदाहरण: x2+5x+6x^2 + 5x + 6x2+5x+6 एक द्विघात बहुपद है।
4. **समीकरण (Equation)**: एक गणितीय अभिव्यक्ति जिसमें समानता का चिह्न === होता है।
   - उदाहरण: x2+5x+6=0x^2 + 5x + 6 = 0x2+5x+6=0 एक समीकरण है।
5. **जड़ (Root)**: समीकरण का वह मान जो समीकरण को संतुष्ट करता है, अर्थात् जब उसे समीकरण में प्रतिस्थापित किया जाता है तो समानता सही होती है।
   - उदाहरण: x2+5x+6=0x^2 + 5x + 6 = 0x2+5x+6=0 के जड़ें x=−2x = -2x=−2 और x=−3x = -3x=−3 हैं।
6. **समानांतर गुणन (Common Factor)**: वह गुणक जो दो या दो से अधिक अभिव्यक्तियों में समान रूप से होता है।
   - उदाहरण: 2x2x2x और 4x24x^24x2 का समानांतर गुणन 2x2x2x है।
7. **गुणांक (Coefficient)**: किसी बहुपद के पदों के साथ जुड़ी हुई संख्याएँ।

- उदाहरण: 3x2+4x+53x^2 + 4x + 53x2+4x+5 में 333 और 444 गुणांक हैं।

8. **पूर्णांक (Integer)**: वह संख्या जो पूर्ण होती है, अर्थात् जिसमें दशमलव या भिन्न नहीं होता।
   - उदाहरण: −2,3,7-2, 3, 7−2,3,7 पूर्णांक हैं।
9. **रेखीय बहुपद (Linear Polynomial)**: वह बहुपद जिसमें केवल एक डिग्री होती है (यानी उच्चतम घात 1 होती है)।
   - उदाहरण: x+3x + 3x+3 एक रेखीय बहुपद है।
10. **समीकरण का हल (Solution of an Equation)**: समीकरण में दिए गए चर का वह मान जो समीकरण को संतुष्ट करता है।
    - उदाहरण: x2−4=0x^2 - 4 = 0x2−4=0 का हल x=2x = 2x=2 और x=−2x = -2x=−2 है।

12.10 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

गुणक का सिद्धान्त पर आधारित **स्व-प्रगति परीक्षा प्रश्नों** के उत्तर निम्नलिखित हैं:

प्रश्न 1: गुणक का सिद्धान्त क्या है?

उत्तर:

गुणक का सिद्धान्त वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा किसी गणितीय अभिव्यक्ति (जैसे, संख्या या बहुपद) को उसके गुणकों में विभाजित किया जाता है। यह सिद्धान्त संख्याओं या बहुपदों के विभाजन को सरल बनाता है, जिससे उनकी गुणात्मक विशेषताओं को पहचानना और समस्याओं को हल करना आसान हो जाता है।

प्रश्न 2: गुणक के सिद्धान्त के द्वारा कौन-सी समस्याएँ हल की जाती हैं?

उत्तर:

गुणक का सिद्धान्त निम्नलिखित समस्याओं को हल करने में सहायक होता है:

- **समीकरणों का हल**: गुणक के सिद्धान्त के द्वारा समीकरणों को सरल किया जा सकता है, जिससे उनके हल (roots) आसानी से मिल सकते हैं।
- **बहुपदों का विभाजन**: किसी बहुपद को उसके गुणकों में विभाजित करने से समीकरणों को हल करना आसान हो जाता है।
- **समीकरणों के जड़ों का पता लगाना**: गुणक के सिद्धान्त के द्वारा हम किसी समीकरण के जड़ों (roots) की पहचान कर सकते हैं।

प्रश्न 3: x2+5x+6x^2 + 5x + 6x2+5x+6 को गुणक रूप में विभाजित करें।

उत्तर:

x2+5x+6x^2 + 5x + 6x2+5x+6 को गुणक रूप में विभाजित करने के लिए हम ऐसे दो अंश ढूंढते हैं जिनका गुणनफल 6 हो और योगफल 5 हो।

यह दो अंश 222 और 333 हैं, क्योंकि 2×3=62 \times 3 = 62×3=6 और 2+3=52 + 3 = 52+3=5।

इसलिए,

x2+5x+6=(x+2)(x+3)x^2 + 5x + 6 = (x + 2)(x + 3)x2+5x+6=(x+2)(x+3)

प्रश्न 4: x2−9x^2 - 9x2−9 को गुणक रूप में विभाजित करें।

उत्तर:

यह एक **द्विघात पूर्णांक** है, जो **प्रारंभिक रूप में अंतर का वर्ग** (difference of squares) का रूप लेता है।

x2−9=(x−3)(x+3)x^2 - 9 = (x - 3)(x + 3)x2−9=(x−3)(x+3)

यहाँ, x2x^2x2 और 999 दोनों पूर्णांक हैं, जो अंतर के रूप में विभाजित होते हैं।

प्रश्न 5: गुणक रूप में विभाजन से क्या लाभ होते हैं?

उत्तर:

गुणक रूप में विभाजन से निम्नलिखित लाभ होते हैं:

- **समीकरण हल करना आसान**: जब बहुपद को गुणक रूप में विभाजित किया जाता है, तो उसके जड़ें (roots) आसानी से मिल जाती हैं।
- **सरलता**: गणितीय समस्याओं को हल करना सरल हो जाता है क्योंकि गुणकों के द्वारा कई जटिल समीकरणों को सरल रूप में बदला जा सकता है।
- **समस्या समाधान में सहायता**: गुणक रूप में विभाजन से हम आसानी से यह पहचान सकते हैं कि कोई अभिव्यक्ति कितने और किस प्रकार के गुणकों से बनी है।

प्रश्न 6: x2+7x+10x^2 + 7x + 10x2+7x+10 को गुणक रूप में विभाजित करें।

उत्तर:

इसमें दो अंश ऐसे होने चाहिए जिनका गुणनफल 101010 हो और योगफल 777 हो। ये दो अंश 222 और 555 हैं, क्योंकि 2×5=102 \times 5 = 102×5=10 और 2+5=72 + 5 = 72+5=7।

इसलिए,

x2+7x+10=(x+2)(x+5)x^2 + 7x + 10 = (x + 2)(x + 5)x2+7x+10=(x+2)(x+5)

प्रश्न 7: x2−4x+4x^2 - 4x + 4x2−4x+4 को गुणक रूप में विभाजित करें।

उत्तर:

यह बहुपद एक पूर्ण वर्ग (perfect square) है, जिसे (x−2)2(x - 2)^2(x−2)2 के रूप में लिखा जा सकता है।

x2−4x+4=(x−2)(x−2)=(x−2)2x^2 - 4x + 4 = (x - 2)(x - 2) = (x - 2)^2x2−4x+4=(x−2)(x−2)=(x−2)2

प्रश्न 8: 6x2+11x−356x^2 + 11x - 356x2+11x−35 को गुणक रूप में विभाजित करें।

उत्तर:

इस बहुपद को गुणक रूप में विभाजित करने के लिए हम 6×(−35)=−2106 \times (-35) = -2106×(−35)=−210 के ऐसे दो अंश खोजेंगे जिनका योग 111111 हो। यह दो अंश 212121 और −10-10−10 हैं, क्योंकि 21×(−10)=−21021 \times (-10) = -21021×(−10)=−210 और 21+(−10)=1121 + (-10) = 1121+(−10)=11।

अब,

6x2+11x−35=6x2+21x−10x−356x^2 + 11x - 35 = 6x^2 + 21x - 10x - 356x2+11x−35=6x2+21x−10x−35

इसे जोड़ते हुए:

=3x(2x+7)−5(2x+7)= 3x(2x + 7) - 5(2x + 7)=3x(2x+7)−5(2x+7)

अब, सामान्य गुणक निकालते हैं:

=(2x+7)(3x−5)= (2x + 7)(3x - 5)=(2x+7)(3x−5)

यह गुणक रूप में विभाजन का उत्तर है।

12.11 संदर्भ ग्रंथ

- आहूजा, एच. एल. (2021). *आधुनिक अर्थशास्त्र - सिद्धान्त और नीतियाँ.* नई दिल्ली: सुल्तान चंद एंड संस।
- गुप्ता, एस. (2019). *भारतीय अर्थव्यवस्था: एक संरचनात्मक अध्ययन.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

- कुमार, आर. (2020). *भारत में आर्थिक नीति और संरचना.* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- सिंह, एम. (2022). *अर्थशास्त्र और सार्वजनिक वित्त का परिचय.* चंडीगढ़: किन्स पब्लिशिंग।
- मिश्रा, पी. (2023). *वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत का स्थान.* पटना: प्रभात प्रकाशन।

12.12 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1.गुणक सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? इसकी सीमाएँ एवं रिसन की व्याख्या कीजिए। What do you understand by the Multiplier Theory? Explain its limitations and leakages.

2. कींस के गुणक सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

Explain critically the Multiplier Theory of Keynes.

3. कींस का विनियोग गुणक क्या है? यह कैसे कार्य करता है ? उदाहरण सहित समझाइए। What is Keynesian Investment Multiplier? Explain the working of Multiplier with help of suitable example.

4.त्वरक क्या है ? विस्तार से व्याख्या कीजिये एवं सीमाएँ बताइये ।

What is Accelerator ? Explain in detail and give assumptions.

लघुउत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित की 100 शब्दों में व्याख्या कीजिए -

(1) विनियोग गुणक क्या है ?

What is Investment Multiplier?

(2) त्वरक को परिभाषित कीजिए ?

Define Accelerator?

(3) उपरि-गुणक क्या है?

What is Super multiplier?

(4) गुणक सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by the Multiplier theory.

(5) गुणक की सीमाएँ लिखिए।

Write limitations of Mulitplier.

(6) गुणक के रिसाव समझाइये।

Explain leakages of Mulitplier.

(7) त्वरक की सीमाएँ क्या है?कणा-भोक

What are the limitations of Accelerater.

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. विनियोग गुणक की धारणा किसने लोकप्रिय बनाई ?

(अ) प्रो. आर.एफ. काहन

(ब) प्रो. जे.एम. कीस

(स) प्रो. जे.बी. क्लार्क

(द) प्रो. अलबर्ट अप्तालियन ।

2. त्वरक के सिद्धान्त को विकसित कर किसने लोकप्रिय बनाया-

(अ) प्रो. जे.एम. क्लार्क

(ब) प्रो. आरएफ. काहन

(स) प्रो. जे.एम. कींस

(द) प्रो. विकसेल ।

3. उपरिगुणक (महागुणक) किससे सम्बन्धित है-

(अ) विनियोग गुणक

(ब) त्वरक

(स) उपर्युक्त दोनों से

(द) उपर्युक्त किसी से नहीं।

4. यदि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति 0.5 है, तब गुणक का आकार क्या होगा-

(अ) 1

(ब) 2

(स) 3

(द) 4

5. कींस का गुणक निम्न में से किससे संबंधित है?

(अ) विनियोग एवं आय

(ब) बचत एवं विनियोग

(स) आय एवं उपभोग

(द) उत्पादन एवं उपभोग

6. गुणक की गणना का सूत्र निम्न में से कौन सा है?

(अ) $k = \frac{1}{1+MPC}$

(ब) $k = \frac{1}{1-MPC}$

(स) $k = 1 - MPC$

(द) उपर्युक्त किसी से नहीं।

उत्तर- 1. (ब), 2. (अ), 3. (स), 4. (ब), 5. (अ), 6. (ब) 1

ब्लॉक - IV

इकाई -13

बचत फलन

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 बचत फलन का अर्थ

13.4 बचत प्रवृत्ति के प्रकार

13.5 बचत के निर्धारिक तत्व

13.6 बचत गतिशीलता के स्त्रोत

13.7 सार संक्षेप

13.8 मुख्य शब्द

13.9 बचत फलन पर आधारित स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर:

13.10 बचत फलन पर संदर्भ ग्रंथ:

13.11 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

बचत फलन (Saving Function) प्रस्तावना:

बचत फलन (Saving Function) एक आर्थिक सिद्धांत है, जो यह दर्शाता है कि किसी देश या व्यक्ति की बचत किस प्रकार आय और उपभोग के बीच संबंध पर निर्भर करती है। यह एक महत्वपूर्ण आर्थिक उपकरण है जिसका उपयोग यह समझने के लिए किया जाता है कि एक व्यक्ति या समाज अपनी आय के कितने हिस्से को उपभोग के बजाय बचत के रूप में रखता है।

आमतौर पर, बचत फलन को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है:

$S=S(Y)$

जहाँ:

- S बचत है,
- Y आय (Income) है।

बचत फलन यह दर्शाता है कि जब आय बढ़ती है, तो बचत किस अनुपात में बढ़ती है। आमतौर पर, जब आय में वृद्धि होती है, तो व्यक्ति अपनी आय का एक छोटा हिस्सा बचत के रूप में रखता है और शेष हिस्सा उपभोग में खर्च करता है।

बचत फलन का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि:

1. **आय और बचत के बीच संबंध**: यह दिखाता है कि उच्च आय होने पर लोग अपनी आय का कितना हिस्सा बचत के रूप में रखते हैं।
2. **विकासशील और विकसित देशों में अंतर**: विकासशील देशों में बचत दर आमतौर पर कम होती है, जबकि विकसित देशों में यह अधिक हो सकती है।
3. **आर्थिक नीति निर्माण**: यह सरकारों को यह समझने में मदद करता है कि बचत को बढ़ाने के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं।

बचत फलन के प्रकार:

1. **स्वतंत्र बचत (Autonomous Savings)**: यह वह बचत होती है जो आय के बिना भी होती है, जैसे कि सरकार द्वारा दी गई सब्सिडी या किसी अन्य प्रकार की सहायता से उत्पन्न बचत।
2. **संबंधित बचत (Induced Savings)**: यह वह बचत होती है जो आय में वृद्धि के साथ बढ़ती है, अर्थात् जैसे-जैसे व्यक्ति की आय बढ़ती है, उसकी बचत भी बढ़ती है।

बचत फलन के निर्धारण के कारक:

- **आय का स्तर**: जितनी अधिक आय होगी, उतनी अधिक बचत की संभावना होती है।
- **वृद्धि दर**: यदि अर्थव्यवस्था में निरंतर वृद्धि हो रही है, तो लोग बचत के लिए अधिक प्रेरित होते हैं।
- **उपभोग की प्रवृत्ति**: व्यक्ति की उपभोग की प्रवृत्ति यह तय करती है कि बचत कितनी होगी।
- **आर्थिक नीति और सरकारी योजनाएँ**: सरकार द्वारा लागू की गई आर्थिक नीतियाँ भी बचत को प्रभावित कर सकती हैं, जैसे कि करों की दर, बचत पर ब्याज दर आदि।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. आर्थिक स्थिरता और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने के उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. रोजगार सृजन और संसाधनों के समुचित उपयोग के महत्व को समझ सकेंगे।
5. सामाजिक और आर्थिक समानता के लिए आवश्यक नीतियों का विश्लेषण कर सकेंगे।

13.3 बचत फलन का अर्थ

कीन्स की विचारधारां के अन्तर्गत बचत एवं विनियोग की धारणाओं को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। बचत व विनियोग का एक-दूसरे से घनिष्ठ संबंध रहता है।

अल्पकाल में उपयोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है और उपभोग में इतनी वृद्धि नहीं हो पाती है जितनी कि आय में वृद्धि होती है। अतः जो आय उपभोग पर व्यय नहीं की जाए वह बचत होती है। अर्थव्यवस्था में सन्तुलन प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उपभोग से बचायी गई आय को विनियोग पर व्यय कर दिया जाए। राष्ट्रीय आय के सन्तुलन स्तर पर बचत एवं विनियोग को आपस में बराबर होना अनिवार्य है।

प्रो. कीन्स के अनुसार, "उपभोग पर किये गये व्यय से जो आय का आधिक्य है, वही बचत मानी जाती है।"

अतः बचत आय का वह भाग है जो कि उपभोग पर व्यय करने के बाद बच जाता है। सूत्र के रूप में-

$$S=Y-C$$

यहाँ पर S = बचत

Y = आय

C = उपभोग

यह सूत्र व्यक्तिगत एवं सामाजिक व राष्ट्रीय बचत पर समान रूप से लागू होता है। सामाजिक बचत, व्यक्तिगत बचतों का ही योग माना जाता है और दोनों प्रकार की बचतों के प्रभाव भिन्न-भिन्न रहते है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री व्यक्तिगत बचत को ही सामाजिक बचत का आधार मानते रहे और उन्होंने व्यक्तिगत बचत को प्रोत्साहन दिया। बचत को विनियोग का निर्धारक तत्व माना गया और बचत व विनियोग को एक दूसरे से पृथक् नहीं समझा गया। इसके विपरीत हॉब्सन तथा अफ्तालियों आदि अर्थशास्त्रियों ने बचत का विरोध किया। उनके अनुसार बचत अर्थव्यवस्था में न्यून-उपभोग की स्थिति उत्पन्न करती है, जिससे माँग में कमी होकर बेरोजगारी व आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाते हैं। कीन्स ने प्रतिष्ठित विचारधारा का खण्डन किया और बताया की बचत का अच्छा तथा बुरा होना उसके उपयोग पर निर्भर करता है। यदि बचत का विनियोग कर दिया जाए, तो प्रभावपूर्ण माँग

में कमी नहीं होगी और समाज को कोई हानि नहीं होगी, परन्तु यदि बचत को विनियोग नहीं किया गया तो उसके हानिकारक परिणाम नजर आएँगे।

कीन्स का मत है कि एक व्यक्ति के लिए बचत करना एक अच्छाई है, परन्तु सामाजिक दृष्टिकोण से बचत एक बुराई है। व्यक्ति द्वारा उपभोग व्यय में कमी करके अपनी आय में से बचत करना अच्छा है परन्तु इससे सामाजिक बचत में कोई वृद्धि नहीं होती है। एक व्यक्ति द्वारा किया गया व्यय सदैव दूसरे व्यक्ति की आय होती है। एक निश्चित आय में से एक व्यक्ति द्वारा अधिक बचत करने पर अन्य व्यक्तियों की आय उतनी ही कम हो जाती है और इससे उनकी बचत करने की क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। समाज में यदि एक व्यक्ति अधिक बचत करता है तो दूसरे व्यक्ति उतनी ही कम बचत कर पाते हैं। परिणामस्वरूप व्यक्तिगत बचत बढ़ने पर सामाजिक बचत नहीं बढ़ पाती है। राष्ट्रीय बचत में व्यक्तिगत बचत एवं व्यावसायिक व सरकारी बचतों को सम्मिलित किया जाता है।

आय और बचत के बीच संबंध

बचत सदैव राष्ट्रीय आय का ही एक भाग है। अतः बचत को आय का फलन माना गया है।

सूत्र रूप में-

$$S = f(Y)$$

यहाँ पर

S = बचत

Y = आय

f = फलल (Function)

इस प्रकार आय में परिवर्तन के साथ-साथ बचत में भी कमी या वृद्धि होती रहती है। बचत की मात्रा सदैव बचत प्रवृत्ति (Propensity to save) पर निर्भर करती है। बचत प्रवृत्ति का अनुमान उपभोग प्रवृत्ति के आधार पर लगाया जा सकता है। यदि उपभोग

प्रवृत्ति को आय में से घटा दिया जाये तो बचत प्रवृत्ति ज्ञात हो जाती है। आय एवं बचत के बीच संबंध की व्याख्या तालिका-1 में की गई है।

तालिका-1

आय और बचत के बीच संबंध

आय (Y) (करोड़ रु.)	उपभोग (C) (करोड़ रु.)	बचत (S) (करोड़ रु.)	औसत बचत प्रवृत्ति APS = (S/Y)	सीमान्त बचत प्रवृत्ति MPS = (ΔS/ΔY)
0	20	-20	-	-
50	50	0	0	-
100	90	10	0.10	0.20
200	170	30	0.15	0.20
300	240	60	6.20	0.30

तालिका-1 से स्पष्ट है कि जब आय शून्य या बहुत कम होती है तो लोग बचत नहीं करते हैं। यद्यपि लोग नहीं कमाने पर भी कुछ न कुछ उपभोग व्यय (20 करोड़ रु.) करते हैं। इसी प्रकार आय बहुत कम होने पर (5) करोड़ रु.) समस्त आय उपभोग पर व्यय कर दी गई है तथा बचत शून्य रहती है। जब आय 50 करोड़ रु. से बढ़कर 100 करोड़ रु. हो जाती है अर्थात् आय में 50 करोड़ रु. की वृद्धि होने पर बचत में 10 करोड़ रु. की वृद्धि होती है। इसी प्रकार आय बढ़कर 200 करोड़ रु. होने पर बचत 30 करोड़ रु. तथा आय 300 करोड़ रु. होने पर बचत भी बढ़कर 60 करोड़ रु. हो जाती है। यह दर्शाता है कि जब आय बढ़ती है तो लोगों की बचतें भी बढ़ती हैं किन्तु बचत आय के अनुपात से कम दर से बढ़ती है। बचत में वृद्धि होने पर औसत बचत प्रवृत्ति (APS) एवं सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) भी बढ़ जाती है।

बचत और आय के बीच के इस संबंध को बचत की प्रवृत्ति या बचत फलन कहते हैं। इसे S = (Y) के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार बचत फलन बचत (S) और आय

(Y) के बीच फलनात्मक संबंध को व्यक्त करता है, जहाँ बचत निर्भर और आय स्वतंत्र चर है। अर्थात् S चर (बचत) Y चर (आय) द्वारा निर्धारित होता है। तालिका-1 में आय और बचत के बीच संबंधों की व्याख्या के आधार पर बचत की प्रवृत्ति का वक्र खींचा जा सकता है। बचत प्रवृत्ति का वक्र रेखा चित्र-1 में दर्शाया गया है।

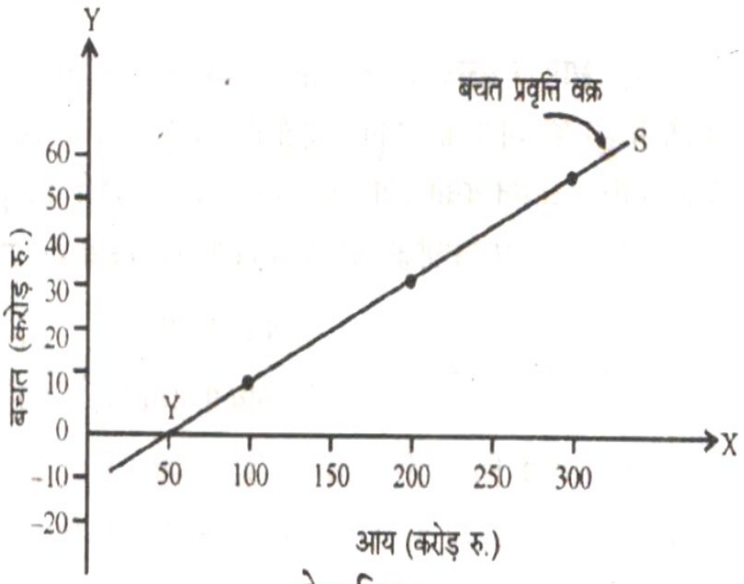

रेखाचित्र-1

रेखाचित्र-1 में बचत का प्रवृत्ति वक्र दर्शाया गया है। यहाँ आय को क्षैतिज अक्ष (OX) पर और बचत को अनुलम्ब अक्ष (OY) पर लिया गया है। चित्र में S वक्र बचत की प्रवृत्ति वक्र (Propensity save curve) है। चित्र से स्पष्ट बत Y बिन्दु अर्थात् 50 करोड़ आय के नीचे बचत ऋणात्मक है क्योंकि लोग बचत नहीं कर पाते हैं। Y बिन्दु (50 करोड़ रु. आय) पर बचत शून्य है। इसके बाद Y बिन्दु के ऊपर बचत आय में वृद्धि के साथ बढ़ती जाती है। अर्थात् आय 100 करोड़ रु होने पर बचत 10 करोड़ रु., आय 200 करोड़ रु. होने पर बचत 30 करोड़ रु. तथा आय 300 करोड़ रु. होने पर बचत बढ़कर 60 करोड़ रु. हो जाती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आय (Y) के दो भाग होते हैं: उपभोग (C) एवं बचत (S)। यदि उपभोग प्रवृत्ति को आय में से घटा दें तो बचत प्रवृत्ति ज्ञात हो जाती है।

अतः $\frac{S}{Y} = -\frac{C}{Y}$

उपभोग प्रवृत्ति एवं बचत प्रवृत्ति एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। अल्पकाल में उपभोग प्रवृत्ति आय का एक स्थिर फलन है और बचत प्रवृत्ति भी आय का एक स्थिर फलन है। बचत-प्रवृत्ति स्थिर होने पर आय में वृद्धि होने पर बचत में भी वृद्धि होती है। अतः

सीमान्त बचत प्रवृत्ति सदैश शून्य से अधिक, परन्तु इकाई से कम रहती है। सूत्र रूप में

$1 < \frac{\Delta S}{\Delta Y} > 0$

प्रायः बचत एवं उपभोग का स्तर राष्ट्रीय आय के स्तर पर निर्भर करता है, परन्तु व्यवहार में कम आय वाले देशों में भी बचत प्रवृत्ति काफी अधिक है, जबकि अधिक आय वाले देशों में बचत प्रवृत्ति कम पायी जाती है। बचत पर अनेक तत्वों का प्रभाव पड़ता है।

13.4 बचत प्रवृत्ति के प्रकार

बचत की प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है- (1) **औसत बचत प्रवृत्ति** (Average Propensity to save) एवं (2**) सीमान्त बचत प्रवृत्ति** (Marginal Propensity to save)। ये निम्नानुसार होती हैं-

(1) **औसत बचत प्रवृत्ति** (APS)- औसत बचत प्रवृत्ति किसी निश्चित समयावधि में कुल बचत

बचत और आय के बीच का अनुपात होती है। सूत्र रूप में औसत बचत प्रवृत्ति को निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है-

औसत बचत प्रवृत्ति (APS). $\frac{\text{कुल बचत}}{\text{कुल आय}} = \frac{S}{Y}$

उदाहरण के लिए, यदि अर्थव्यवस्था में कुल बचत 10 करोड़ रुपये की है, जबकि कुल आय 100 करोड़ रुपए है। अतः औसत बचत प्रवृत्ति होगी-

APS=$\frac{S}{Y}$

$$= \frac{10}{100} 0.1 \text{ अर्थात् } 10 \text{ प्रतिशत}$$

अतः औसत बचत प्रवृत्ति 0.1 अथवा 10 प्रतिशत है। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) घटती जाती है और इसके फलस्वरूप औसत बचत प्रवृत्ति (APS) बढ़ती है। यह तथ्य तालिका-1 में दर्शाया गया है।

(2) सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS)- सीमान्त बचत प्रवृत्ति आय में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप बचतों में हुए परिवर्तनों का अनुपात होती है। अन्य शब्दों में जब आय में परिवर्तन होता है तो सीमान्त बचत प्रवृत्ति, औसत बचत प्रवृत्ति में परिवर्तन की दर होती है। इसे बचत में परिवर्तन (ΔS) को आय में परिवर्तन (ΔY) से विभाजित कर प्राप्त किया जा सकता है। सूत्र रूप में-

सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) $=\frac{\text{बचत में परिवर्तन}}{\text{आय में परिवर्तन}}=\frac{\Delta S}{\Delta Y}$

उदाहरण के लिये, यदि आय 100 करोड़ रुपए से बढ़कर 200 करोड़ रुपए हो जाये और 10 करोड़ रुपए से बढ़कर 30 करोड़ रुपए हो जाती है तो सीमान्त बचत प्रवृत्ति होगी-

आय में वृद्धि (ΔY) = 200 - 100 = 100 करोड़ रुपए

बचत में वृद्धि (ΔS) 10 = 20 करोड़ रुपए

अतः सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) = $\frac{\Delta A}{\Delta Y}=\frac{20}{100}$=0.2अर्थात् 20 प्रतिशत

इस प्रकार, सीमान्त बचत प्रवृत्ति 0.2 अथवा 20 प्रतिशत है। यहाँ पर यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) घटती जाती है, और इसके फलस्वरूप सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) बढ़ती है। यह तथ्य तालिका-1 में दर्शाया गया है।

निष्कर्ष रूप में औसत बचत प्रवृत्ति (APS) और सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) दो भिन्न धारणाएँ हैं। जहाँ APS कुल बचत का कुल आय से संबंध बतलाती है, वहाँ MPS बचत में परिवर्तन और आय में परिवर्तन से संबंध रखती है।

13.5 बचत के निर्धारिक तत्व

बचत किसी भी अर्थव्यवस्था में लोगों की बचत करने की इच्छा, बचत करने की शक्ति और बचत करने की सुविधाओं पर निर्भर करती है। बचत के प्रमुख निर्धारक तत्व निम्न प्रकार है-

1. बचत करने की इच्छा (Will to save)- बचत का प्रमुख निर्धारक बचत करने की इच्छा है। यदि लोगों में बचत करने की इच्छा हो तो आय का एक भाग बचाया जा सकता है। किन्तु यदि लोग बचत करना नहीं चाहें तो वे कुछ भी नहीं बचा सकते हैं। बचत करने की इच्छा निम्न घटकों पर निर्भर

करती है-

(i) उच्च जीवन स्तर- प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन-स्तर को उच्च बनाना चाहता है और इसके लिए अपनी वर्तमान आय से बचत करना आवश्यक होता है।

(ii) परिवार से प्रेम- सभी लोगों को अपने बच्चों और परिवार के सदस्यों से कुछ स्नेह या लगाव रहता है जिससे वे बचत करते हैं। अपने परिवार के लोगों का जीवन सुखमय और भविष्य में बेहतर बनाने के लिए व्यक्ति अधिक कमाते हैं और अधिक बचत करते हैं।

(iii) सावधानी या दूरदर्शिता भविष्य की अनिश्चितता एवं आकस्मिक आवश्यकताओं के कारण लोग मुद्रा या सम्पत्ति रखते हैं। एक दूरदर्शी व्यक्ति अपने बच्चों की शिक्षा, विवाह आदि के लिए प्रबन्ध करना चाहता है। इसी प्रकार लोग वृद्धावस्था, बीमारी, दुर्घटना, यात्रा, आकस्मिक प्रयोजनों तथा आपातस्थिति आदि से निपटने के लिए बचत करते हैं।

(iv) सामाजिक प्रतिष्ठा- आधुनिक समाज में प्रायः धनी व्यक्तियों का ही आदर होता है जबकि निर्धनों की कोई सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं होती है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा की चाह रखता है, अतः यह उसकी बचत करने की इच्छा को प्रबल करती है।

(v) कंजूसी की प्रवृत्ति- प्रायः समाज में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो बिना किसी प्रयोजन के ही बचत करते हैं। कंजूस व्यक्ति केवल अपनी सम्पत्ति बढ़ाने की इच्छा को पूरा करने के लिए ही बचत करता है।

(vi) भविष्य में लाभ प्राप्ति- कुछ लोग अपनी भविष्य की आय को बढ़ाना चाहते हैं। अतः वे अपनी वर्तमान आय में से बचत करते हैं ताकि अपनी बचत को निवेश कर भविष्य में और अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। इसी प्रकार यदि लोग निकट भविष्य में ब्याज दर में वृद्धि की आशा करते हैं तो वे अधिक बचत करते हैं।

(vii) उद्यम में निवेश- उद्यमशीलता की भावना भी लोगों को बचत करने के लिए प्रेरित करती है। कभी-कभी नया व्यवसाय प्रारंभ करने अथवा पहले से संचालित व्यवसाय का विस्तार करने के लिए भी बचत की जाती है।

(viii) आर्थिक स्वतंत्रता- अधिकांश लोग आत्म-निर्भर या आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना चाहते हैं। वे किसी से ऋण लेना या उधार लेना पसन्द नहीं करते हैं। अतः वे भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अपनी वर्तमान आय से बचत करते हैं।

2. बचत करने की शक्ति (Power to Save)- बचत करने की शक्ति का अभिप्राय बचत करने की क्षमता से है। दूसरे शब्दों में, वर्तमान आय में से उपभोग पर व्यय करने के उपरान्त जो राशि शेष बचती है वह बचत करने की शक्ति को दर्शाती है। कोई भी व्यक्ति बचत करने की इच्छा होने पर भी बचत नहीं कर सकता यदि उसकी बचत करने की शक्ति नहीं है। बचत करने की शक्ति आय और उपभोग दोनों के स्तरों पर निर्भर करती है। कोई भी व्यक्ति तभी बचत कर सकता है जब उसकी आय उपभोग व्यय से अधिक हो क्योंकि उपभोग व्यय घटने की संभावना कम होती है। अतः एक देश में लोगों की बचत करने की शक्ति उनकी आय या उसे प्रभावित करने वाले घटकों पर निर्भर करती है। बचत करने की शक्ति को निर्धारित करने वाले घटक निम्न प्रकार है-

(i) राष्ट्रीय आय का आकार- व्यक्तियों की बचत करने की शक्ति उस देश की राष्ट्रीय आय के आकार पर निर्भर करती है। किसी भी देश में यदि राष्ट्रीय आय अधिक होगी तो बचत करने की शक्ति भी अधिक होगी। भारत जैसे विकासशील देशों में राष्ट्रीय आय कम होने के कारण ही बचत करने की शक्ति कम है।

(ii) श्रम की कुशलता- कुशल श्रम देश में उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होता है जिसके फलस्वरूप देश की आय में वृद्धि होती है। इस प्रकार श्रम की कुशलता बचत

करने की शक्ति में वृद्धि करती है। किन्तु कम कुशल श्रम बचत करने की शक्ति को सीमित करता है।

(iii) प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता- किसी भी देश में आर्थिक प्रगति एवं आय का स्तर उस देश में प्राकृतिक संसाधनों (Natural Resources) यथा-भूमि, खनिज, जल, वन आदि पर निर्भर करती है। किन्तु केवल प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता ही बचत करने की शक्ति को नहीं बढ़ा सकती है। इसके लिए प्राकृतिक संसाधनों का उचित ढंग से उपभोग करना आवश्यक है जिससे बचत करने की शक्ति बढ़ती है।

(iv) कृषि एवं उद्योगों का विकास- किसी देश में कृषि एवं उद्योग धंधों का विकास आय में वृद्धि करता है जिसके फलस्वरूप बचत करने की शक्ति बढ़ती है। भारत जैसे कृषि प्रधान देशों में बचत करने की शक्ति कृषि के विकास पर विशेष रूप से निर्भर करती है। कही

(v) आय और घन का वितरण- एक देश में बचत करने की शक्ति आय और धन के वितरण पर भी निर्भर करती है। सामान्यतया आय व धन का असमान वितरण धन को कुछ लोगों तक संकेन्द्रित करता है और ये सम्पन्न व्यक्ति अपने उपभोग व्यय के बाद अधिक बचत करने में सक्षम होते हैं।

(vi) व्यापार की मात्रा- व्यापार की मात्रा भी आय और बचत करने की शक्ति को प्रभावित करती है। घरेलू तथा विदेशी व्यापार के विकास होने पर आय बढ़ती हैं जिसके फलस्वरूप बचत करने की शक्ति में वृद्धि होती है।

3. बचत करने की सुविधाएँ (Facilities to Save)- बचत करने की शक्ति देश में बचत करने की सुविधाओं पर भी निर्भर करती है। ये सुविधाएँ निम्न प्रकार हैं-

(i) बैंकिंग सुविधाएँ- किसी देश में कुशल और विकसित बैंकिंग प्रणाली बचत करने की सुविधाएँ उपलब्ध करती है। बैंकों में लोगों की नकद सुरक्षित रहती है तथा ब्याज के रूप में लाभ प्राप्त होता है जिससे बचत बढ़ती है। किन्तु बैंकिंग सुविधाओं के अभाव में मुद्रा लोगों के हाथ में नकद के रूप में रहती है जिसे किसी भी समय व्यय किया जा सकता है। अतः बैंकिग सुविधाओं की कमी बचत को घटा देती है।

(ii) विनियोग के अवसर- उद्यमियों को विनियोग के अवसर उपलब्ध होने पर बचत को प्रोत्साहन मिलता है। यदि व्यापार-व्यवसाय में विनियोग के पर्याप्त अवसर हों तो बचत बढ़ती है। इसी प्रकार स्टॉक एवं विनिमय बाजारों का देश में विकास होने पर बचत अधिक होती है। किन्तु विनियोग के अवसर कम होने पर बचत भी कम होती है।

(iii) शांति व सुरक्षा का वातावरण- यदि देश में शांति और सुरक्षा का वातावरण हो लोग तभी बचत कर सकते हैं। यदि लोगों का जीवन और उनकी सम्पत्ति सुरक्षित न हो तो वे बचत नहीं कर पायेंगे।

(iv) कीमत-स्तर- कीमतों में वृद्धि के फलस्वरूप मुद्रा की क्रयशक्ति घट जाती है जिससे लोग बचत कम करते हैं। अतः बचत करने की सुविधाओं के लिए कीमत स्तर या मुद्रा के मूल्य में स्थिरता आवश्यक होती है। कीमत-स्तर में स्थिरता बचत को प्रोत्साहित करती है।

(v) करारोपण एवं आर्थिक नीतियाँ- सरकार की कर-नीति भी देश में बचत को प्रभावित करती है। प्रगतिशील करारोपण बचत को कम करता है क्योंकि करों की दरें आय में वृद्धि के साथ बढ़ती है। यही स्थिति धन कर तथा उत्तराधिकार कर के संबंध में होती है जिससे लोगों की बचत करने की प्रवृत्ति घटती है। जब लोग यह महसूस करते हैं कि उनकी आय का अधिकांश हिस्सा सरकार को करों के रूप में चला जायेगा तो वे कम बचत करते हैं। दूसरी ओर व्यय कर लगाने पर लोग इस कर से बचने के लिए व्यय कम करते हैं और बचत को प्रोत्साहन मिलता है। इसके अतिरिक्त बचत करने की सुविधाएँ सरकार की आर्थिक नीति से भी प्रभावित होती है। प्रायः समाजवादी पद्धति में बचत करने की प्रवृत्ति कम हो जाती है जबकि पूँजीवादी पद्धति में बचत करने को प्रोत्साहन मिलता है।

13.6 बचत गतिशीलता के स्त्रोत

सम्पूर्ण आय में से कुल व्यय को घटा देने से जो शेष बचता है उसे बचत कहते हैं। बचत जितनी अधिक होती है है पूँजी निर्माण (Capital Formation) की संभावना भी उतनी ही

अधिक होती है। अतः बचतें पूँजी निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण स्त्रोत मानी जाती हैं। आन्तरिक बचतों को या तो उत्पादन में वृद्धि करके अथवा अनावश्यक उपभोग में कमी करके अथवा दोनों ही तरीकों से बढ़ाया जा सकता है। अर्थव्यवस्था में बचतों को गतिशील बनाने के लिए देश में प्रचार, सामाजिक शिक्षा और वित्तीय संस्थाओं का होना आवश्यक है। किसी भी देश में बचत करने वाले निम्न वर्ग होते हैं:- (i) उच्च आय वर्ग, (ii) कृषक वर्ग, (iii) मध्य आय वर्ग, (iv) व्यापारी वर्ग, एवं (v) सरकार। उपर्युक्त वर्गों की बचत करने की क्षमता एवं प्रवृत्ति कम होने के कारण बचतों को बढ़ाने के लिए अनेक उपाय करने पड़ते हैं। इनमें बचतों को गतिशील बनाना एक प्रमुख उपाय होता है। पूँजी निर्माण या बचतों को गतिशील बनाने की दृष्टि से बचतों के निम्नलिखित रूप हो सकते हैं-

(1) ऐच्छिक बचतें (Voluntary Savings)- ऐच्छिक बचतें पूँजी निर्माण का सबसे प्रभावशाली और न्यूनतम प्रतिकूल प्रभाव रखने वाला स्त्रोत है। ये बचतें उच्चव आय वर्ग, मध्यम वर्ग, कृषकों एवं व्यापारी वर्ग द्वारा की जाती है। ऐच्छिक बचतों से आशय उन बचतों से है जिन्हें व्यक्ति अपनी इच्छा से करते हैं। ऐच्छिक बचतों का प्रमुख लाभ यह है कि इनसे समाज में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न किये बिना विकास हेतु पूँजी प्राप्त की जा सकती है। किन्तु बचतों की ऐच्छिक गतिशीलता के लिए देश में पर्याप्त संख्या में वित्तीय और साख संस्थाओं को होना आवश्यक है। इस श्रेणी की बचतें डाकघर व्या बैंक, बीमा कम्पनी, यूनिट ट्रस्ट आदि के माध्यम से की जाती है। इन्हें सरकारी बॉण्ड तथा बचत प्रपत्रों को जारी करके भी एकत्रित किया जा सकता है। इसके आंतरिक्त बानस, उपहार, लाटरी, समष्टि अर्थशास्त्र तथा मुद्रा एवं बैंकिंग पुरस्कार तथा सरकारी बॉण्डों पर कर की छूट देकर भी बचतों को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

(2) अनिवार्य बचतें (Compulsory Savings)- अनिवार्य बचतों से आशय उन बचतों से है जिसके लिए व्यक्ति को विवश किया जाता है तथा इनके लिए उसे अपने उपभोग को कम करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, करों क भुगतान। यदि ऐच्छिक बचतों के रूप में पूँजी कम प्राप्त होती है तो सरकार करारोपण की नीति द्वारा अथवा विशेष बचत

योजनाओं को शुरू करके जनता को अनिवार्य रूप से बचत करने को बाध्य कर सकती है। किन्तु अनिवार्य बचत योजना एक कठोर नीति है जो भारत जैसे प्रजातांत्रिक देशों के लिए अधिक उपयुक्त नहीं मानी जा सकती है।

(3) सरकारी बचतें (Government Savings)- सरकारी बचत उस राशि को कहते हैं जो सरकार की कर आदि से होने वाली चालू आय एवं सरकारी चालू व्यय का अन्तर होती है। सरकार की बचतों को सार्वजनिक बचतें (Public Savings) कहा जाता है। सरकारी बचतों के अन्तर्गत 'सार्वजनिक उपक्रमों के लाभ' आदि को शामिल करते हैं। किन्तु इस साधन से अधिक बचतें प्राप्त नहीं हो पाती हैं क्योंकि सरकार द्वारा अधिकांश उपक्रम 'न लाभ न हानि' के आधार पर संचालित किये जाते है। इसके अतिरिक्त थोड़ी बहुत मात्रा में जो लाभ होता है वह भी प्रायः अपव्यय, भ्रष्टाचार आदि के रूप में समाप्त हो जाता है। आय के निम्न स्तर और अधिक प्रशासकीय व्ययों के कारण विकासशील देशों में सरकार की बचत करने की क्षमता सीमित होती है।

(4) स्फीतिक बचतें (Inflationary Savings)- यदि ऐच्छिक, अनिवार्य और सरकारी बचतों के द्वारा बचतों की आवश्यक मात्रा उपलब्ध नहीं हो पाती तो इस विधि का प्रयोग किया जाता है। स्फीतिक बचतें एक प्रकार का अदृश्य करारोपण (Invisible Taxation) के समान है। जब सरकार ही नार्थ प्रबन्धन के अन्तर्गत नोट छापकर विकास कार्यक्रमों की वित्त व्यवस्था करती है तो उससे मुद्रा-स्फीति (Inflation) होती है अर्थात् कीमतें बढ़ती हैं। बढ़ी हुई कीमतें उपभोग को कम कर देती हैं जिसके फलस्वरूप साधनों को चालू उपभोग से विनियोग की ओर मोड़ना संभव हो जाता है किन्तु इस रीति का प्रयोग अधिक मात्रा में नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। स्फीति जनसाधारण के जीवन-स्तर की लागत पर बचतों को बढ़ाती है।

पूँजी निर्माण की दृष्टि से बचतों का संकलन (Mobilisation) एक महत्वपूर्ण घटक होता है। किन्तु विकासशील तथा अर्ध-विकसित देशों में कुशल वित्तीय संस्थाओं की कमी के कारण बचतों को संकलित करना अत्यधिक कठिन हो जाता है। इसका कारण यह है

कि पारिवारिक बचतें छोटी-छोटी मात्रा में होती है तथा दूर-दराज के गाँवों तक फैली रहती है। वित्तीय संस्थाओं की कमी के कारण ग्रामीण क्षेत्र की बचतें संकलित नहीं हो पाती और परिणामस्वरूप इन बचतों का उपभोग पूँजी निर्माण में नहीं हो पाता। अतः यह आवश्यक है कि इन देशों में बचत को विभिन्न वित्तीय क्रियाओं द्वारा गतिशील बनाये जाये। बचत करना एक आदत है जिसे प्रचार द्वारा बढ़ाया जा सकता है तथा लोगों को प्रेरित किया जा सकता है। जनसाधारण में छोटी बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए जीवन बीमा, अनिवार्य भविष्य निधि पर नगर प्रारंभ की जायें तथा वाणिज्यिक बैंकों के विस्तार के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में बचत बैंक खोले जायें। संक्षेप में बचतों के संकलन हेतु वित्तीय सुविधाओं का समुचित विस्तार करना आवश्यक होता है।

13.7 सार संक्षेप:

बचत फलन एक आर्थिक सिद्धांत है, जो यह दर्शाता है कि किसी व्यक्ति या समाज की आय के साथ बचत का क्या संबंध है। यह बताता है कि लोग अपनी आय का कितना हिस्सा बचत के रूप में रखते हैं और कितना हिस्सा उपभोग के रूप में खर्च करते हैं।

मुख्य बिंदु:

1. **आय और बचत का संबंध**: बचत फलन यह दर्शाता है कि आय में वृद्धि होने पर बचत किस अनुपात में बढ़ती है। साधारणतः, उच्च आय वाले व्यक्ति अधिक बचत करते हैं।
2. **स्वतंत्र और संबंधित बचत**:
    - **स्वतंत्र बचत**: यह वह बचत होती है जो आय के बिना भी होती है, जैसे सरकारी सहायता।
    - **संबंधित बचत**: यह आय में वृद्धि के साथ बढ़ती है।
3. **आर्थिक विकास**: बचत फलन से यह पता चलता है कि अधिक बचत का मतलब है अधिक निवेश और आर्थिक विकास।

4. **आर्थिक नीति निर्माण**: सरकारें बचत को प्रोत्साहित करने के लिए नीतियाँ बनाती हैं, जैसे ब्याज दरों में वृद्धि या करों में कमी।
5. **आय वितरण**: बचत फलन से यह भी पता चलता है कि उच्च आय वाले लोग अधिक बचत करते हैं, जबकि निम्न आय वाले व्यक्तियों के लिए बचत करना मुश्किल होता है।

13.8 मुख्य शब्द

1. **बचत (Savings)**: वह राशि जो किसी व्यक्ति, परिवार, या समाज की आय में से उपभोग के लिए खर्च नहीं की जाती और भविष्य के लिए सुरक्षित रखी जाती है।
2. **आय (Income)**: वह राशि जो किसी व्यक्ति, घर या समाज के पास किसी निश्चित समय में उपलब्ध होती है, जैसे वेतन, व्यापार से आय आदि।
3. **उपभोग (Consumption)**: वह राशि जो किसी व्यक्ति या समाज द्वारा अपनी आय से रोजमर्रा के खर्चों के लिए खर्च की जाती है।
4. **स्वतंत्र बचत (Autonomous Savings)**: वह बचत जो किसी व्यक्ति या समाज की आय से स्वतंत्र होती है, जैसे सरकारी योजनाओं या सब्सिडी से प्राप्त बचत।
5. **संबंधित बचत (Induced Savings)**: वह बचत जो किसी व्यक्ति या समाज की आय में वृद्धि के साथ बढ़ती है, यानी जब आय बढ़ती है, तो बचत भी बढ़ती है।
6. **बचत दर (Saving Rate)**: कुल आय के अनुपात में बचत का प्रतिशत। यह बताता है कि व्यक्ति या समाज अपनी आय का कितना हिस्सा बचत के रूप में रखता है।
7. **बचत फलन (Saving Function)**: यह गणितीय या सांस्कृतिक मॉडल है, जो आय के स्तर के आधार पर बचत का अनुमान लगाता है। यह बताता है कि किसी विशेष आय स्तर पर बचत कितनी होगी।
8. **उपभोग फलन (Consumption Function)**: यह आर्थिक सिद्धांत है जो यह दिखाता है कि उपभोग, आय के साथ किस प्रकार बदलता है। यह बचत फलन का उल्टा है क्योंकि बचत = आय - उपभोग।
9. **समय मूल्य (Time Value)**: यह विचार कि पैसे का मूल्य समय के साथ बदलता है, और भविष्य में प्राप्त पैसे का वर्तमान मूल्य कम हो सकता है, खासकर यदि उसे बचत किया जाए।
10. **वित्तीय सुरक्षा (Financial Security)**: वह स्थिति जिसमें किसी व्यक्ति या समाज के पास पर्याप्त धन या संसाधन होते हैं, जो भविष्य में किसी संकट या अप्रत्याशित परिस्थितियों से निपटने के लिए पर्याप्त होते हैं।

11. **निवेश (Investment)**: वह राशि जो बचत के रूप में बचाकर विभिन्न आर्थिक या वित्तीय संसाधनों में निवेश की जाती है, जिससे भविष्य में लाभ अर्जित किया जा सके।
12. **आर्थिक नीति (Economic Policy)**: सरकार या केंद्रीय बैंक द्वारा लागू की गई नीतियाँ, जो आर्थिक गतिविधियों, जैसे बचत, निवेश, उपभोग आदि को प्रभावित करती हैं।
13. **वृद्धि दर (Growth Rate)**: किसी अर्थव्यवस्था की कुल उत्पादन या आय में होने वाली वार्षिक वृद्धि की दर, जो बचत और निवेश के स्तर से प्रभावित होती है।

13.9 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर:

1. **बचत फलन क्या है?**
   - **उत्तर**: बचत फलन एक आर्थिक सिद्धांत है, जो यह बताता है कि किसी व्यक्ति या समाज की आय के साथ उसकी बचत का कितना संबंध है। यह आय के एक हिस्से को बचत के रूप में अलग करने की प्रक्रिया को दर्शाता है। सामान्यत: बचत फलन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है:
     $S=S(Y)S = S(Y)S=S(Y)$
     जहाँ SSS बचत है और YYY आय है।
2. **बचत फलन का उद्देश्य क्या है?**
   - **उत्तर**: बचत फलन का उद्देश्य यह समझना है कि किसी व्यक्ति या समाज की आय में वृद्धि होने पर बचत किस अनुपात में बढ़ती है। यह आर्थिक नीति, निवेश, विकास और वित्तीय सुरक्षा के संदर्भ में महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि इससे सरकार और नीति निर्माता बचत को बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त उपाय तय कर सकते हैं।
3. **बचत फलन और उपभोग फलन में अंतर बताइए।**
   - **उत्तर**:
     - **बचत फलन**: यह दर्शाता है कि व्यक्ति या समाज अपनी आय का कितना हिस्सा बचत के रूप में रखता है।

- **उपभोग फलन**: यह बताता है कि किसी व्यक्ति या समाज की आय का कितना हिस्सा उपभोग में जाता है। दोनों मिलकर आय के कुल वितरण को निर्धारित करते हैं।

  आय=उपभोग+बचत\text{आय} = \text{उपभोग} + \text{बचत}आय=उपभोग+बचत

4. **स्वतंत्र बचत और संबंधित बचत में क्या अंतर है?**
   - **उत्तर**:
     - **स्वतंत्र बचत (Autonomous Savings)**: यह वह बचत होती है जो आय के बिना भी होती है, जैसे सरकार द्वारा दी गई सब्सिडी या अन्य वित्तीय सहायता।
     - **संबंधित बचत (Induced Savings)**: यह वह बचत होती है जो आय में वृद्धि के साथ बढ़ती है, अर्थात जब आय बढ़ती है, तो बचत भी बढ़ती है।
5. **बचत फलन को प्रभावित करने वाले कारक कौन से हैं?**
   - **उत्तर**: बचत फलन को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं:
     1. **आय का स्तर**: जब आय बढ़ती है, तो बचत भी बढ़ने की संभावना होती है।
     2. **उपभोग की प्रवृत्तियाँ**: लोगों की उपभोग की आदतें और प्राथमिकताएँ बचत पर प्रभाव डालती हैं।
     3. **आर्थिक नीति**: सरकार की नीतियाँ, जैसे ब्याज दरों में बदलाव, करों में कमी, या वित्तीय प्रोत्साहन, बचत को प्रभावित कर सकती हैं।
     4. **वृद्धि दर**: जब अर्थव्यवस्था में विकास हो रहा होता है, तो लोग अधिक बचत करते हैं, क्योंकि वे भविष्य में लाभ की उम्मीद करते हैं।

बचत फलन का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर: बचत फलन का आर्थिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जब समाज या व्यक्ति अधिक बचत करता है, तो वह अधिक निवेश करने में सक्षम होता है। यह निवेश आर्थिक उत्पादन को बढ़ाता है, जिससे देश की अर्थव्यवस्था में विकास होता है। इसलिए, उच्च बचत दरों से दीर्घकालिक आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है।

बचत फलन का अध्ययन क्यों आवश्यक है?

उत्तर: बचत फलन का अध्ययन इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह यह दर्शाता है कि आय और बचत के बीच क्या संबंध है। इससे नीति निर्माताओं को यह समझने में मदद मिलती है कि कैसे बचत को बढ़ावा दिया जा सकता है, ताकि देश में वित्तीय स्थिरता, निवेश और समृद्धि को बढ़ावा मिल सके। यह भविष्य में संभावित संकटों या आपात स्थितियों के लिए वित्तीय सुरक्षा भी सुनिश्चित करता है।

बचत दर (Saving Rate) क्या है और इसका महत्व क्या है?

उत्तर: बचत दर वह अनुपात है जो यह दर्शाता है कि किसी समाज की कुल आय का कितना प्रतिशत बचत के रूप में रखा जाता है। इसे इस प्रकार व्यक्त किया जाता है:

बचत दर=कुल बचतकुल आय×100\text{बचत दर} = \frac{\text{कुल बचत}}{\text{कुल आय}} \times 100बचत दर=कुल आयकुल बचत ×100 बचत दर का महत्व इस लिए है क्योंकि यह आर्थिक स्थिरता और विकास के लिए महत्वपूर्ण होती है। उच्च बचत दर अधिक निवेश और दीर्घकालिक आर्थिक विकास की ओर इशारा करती है।

उच्च आय वाले व्यक्तियों की बचत दर सामान्यतः क्यों अधिक होती है?

उत्तर: उच्च आय वाले व्यक्तियों की बचत दर अधिक होती है क्योंकि उनके पास उपभोग के लिए आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद

अतिरिक्त आय होती है, जिसे वे बचत के रूप में रख सकते हैं। इसके विपरीत, निम्न आय वाले व्यक्तियों को अपनी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिकांश आय खर्च करनी पड़ती है, जिससे उनकी बचत दर कम होती है।

क्या बचत फलन में कोई असमानता हो सकती है?

उत्तर: हां, बचत फलन में असमानता हो सकती है। उच्च आय वाले व्यक्तियों की बचत दर कम आय वाले व्यक्तियों की तुलना में अधिक होती है। इस प्रकार, बचत फलन आय वितरण और आर्थिक असमानता को भी दर्शाता है, और यह समाज में समृद्धि और गरीबी के बीच अंतर को स्पष्ट करता है।

13.10 संदर्भ ग्रंथ:

- आहूजा, एच. एल. (2019). *आधुनिक अर्थशास्त्र: सिद्धांत और अनुप्रयोग.* नई दिल्ली: एस चंद पब्लिकेशन्स।
- पटनायक, प्रभात. (2021). *भारतीय आर्थिक संरचना: सिद्धांत और नीति.* नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- सेनगुप्ता, अरिंदम. (2020). *भारत की अर्थव्यवस्था: समकालीन परिप्रेक्ष्य.* कोलकाता: रूपा पब्लिशिंग।
- दत्ता, आर. और सुंदरम, के.पी.एम. (2023). *भारतीय अर्थशास्त्र.* नई दिल्ली: एस चंद पब्लिकेशन्स।
- मेहता, विकास. (2022). *अर्थशास्त्र के मौलिक सिद्धांत.* नई दिल्ली: टाटा मैकग्रा-हिल।

13.11 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

1. बचत फलन से आप क्या समझते हैं? बचत के निर्धारकों की विवेचना कीजिए।

What do you understand by saving function? Explain determinants of savings.

2 बचत फलन क्या है? बचत गतिशीलता के स्त्रोतों का वर्णन कीजिए।

What is saving function? Discuss sources of saving mobilisation.

3. बचत क्या है? औसत बचत प्रवृत्ति और सीमान्त बचत प्रवृत्ति की व्याख्या कीजिए।

What is saving? Explain average propensity to save and marginal propensity to save.

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बचत से आप क्या समझते हैं?
   What do you understand by savings.
2. बचत फलन क्या है?
   What is saving function.
3. बचत गतिशीलता के स्त्रोत बताइये ।
   Explain sources of saving mobilisation.
4. बचत के निर्धारकों की विवेचना कीजिए। Discuss determinants of savings.
5. औसत एवं सीमान्त बचत प्रवृत्ति को समझाइये ।
   Explain average and marginal propensity to save.

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नलिखित में से बचत ज्ञात करने का सूत्र कौन सा है?

(अ) S=Y-

(ब) S=Y+C

(स) S = Y/C

(द) उपर्युक्त कोई नहीं।

2. "एक व्यक्ति के लिए बचत करना एक अच्छाई है, परन्तु सामाजिक दृष्टिकोण से बचत एक बुराई है।" यह विचार किसने दिया-

(अ) मार्शल

(ब) जे.एम. कीन्स

(स) हेन्सन

(द) हिक्स।

3. औसत बचत प्रवृत्ति ज्ञात करने का सूत्र है-

(अ) APS = $\frac{Y}{S}$

(ब) APS = $\frac{C}{Y}$

(स) A APS = $\frac{S}{Y}$

(द) उपर्युक्त कोई नहीं।

4. सीमान्त बचत प्रवृत्ति ज्ञात करने का सूत्र है-

(अ) MPS = $\frac{\Delta S}{\Delta Y}$

(ब) MPS = $\frac{\Delta Y}{\Delta S}$

(स) MAPS =$\frac{\Delta C}{\Delta Y}$

(द) MAPS = $\frac{C}{S}$

उत्तर- 1. (अ), 2. (ब), 3. (स), 4. (अ))

इकाई -14

विनियोग फलन एवं पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 पूँजी की सीमान्त उत्पादकता या कार्यक्षमता

14.4 पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं निवेश माँग

14.5 पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की आलोचना

14.6 ब्याज दर

14.7 तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की आलोचना

14.8 विनियोग के निर्धारक तत्व- एक दृष्टि में

14.9 सार संक्षेप

14.10 मुख्य शब्द

14. 11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

14.12 संदर्भ ग्रंथ

14.13 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्रो. कींस के रोजगार सिद्धान्त में निवेश क्रिया या निवेश फलन का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रभावपूर्ण माँग का निर्धारण एक ओर तो उपभोग क्रिया और दूसरी ओर निवेश क्रिया द्वारा होता है, किन्तु निवेश क्रिया का निर्धारण उपभोग क्रिया या उपभोग प्रवृत्ति की भाँति सरल नहीं होता। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि प्रो. कीस ने अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार की स्थिति में लाने के लिए उपभोग क्रिया की तुलना में निवेश क्रिया को अधिक महत्व दिया है। इसका कारण यह है कि अल्पकाल में जहाँ उपभोग क्रिया स्थिर रहती है, वहीं निवेश क्रिया अत्यधिक परिवर्तनशील होती है।

प्रो. कींस ने अपने सिद्धान्त में केवल शुद्ध या वास्तविक निवेश को ही लिया है। शुद्ध निवेश से आशय पूँजीगत परिसम्पत्तियों में शुद्ध वृद्धि से है। इसके अन्तर्गत नवीन कारखानों, भवनों, सड़कों, मशीनों आदि को सम्मिलित किया जाता है। प्रो. कींस ने निवेश क्रिया को निर्धारित करने वाले दो प्रमुख तत्व बताये हैं: यथा (अ) पूँजी की सीमान्त उत्पादकता, और (ब) ब्याज दर। इन दोनों तत्वों में, चूँकि ब्याज दर अल्पकाल में बहुत कम परिवर्तित होती है, फलत- पूँजी की सीमान्त उत्पादकता रोजगार को अधिक प्रभावित करती है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकें।
3. विनियोग फलन की अवधारणा और इसका उपयोग समझ सकें।
4. पूंजी की सीमान्त कार्यक्षमता का महत्व और इसके आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण कर सकें।
5. विकासशील अर्थव्यवस्था में पूंजी और निवेश के परस्पर संबंध को समझ सकें।

14.3 पूँजी की सीमान्त उत्पादकता या कार्यक्षमता

पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से आशय उस लाभ से है जो कि पूँजी की सीमान्त इकाई के विनियोग से प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में, "पूँजी की सीमान्त उत्पादकता उत्पादन लागत को निकाल कर प्राप्त होने वाला वह प्रतिफल या लाभ है जो कि पूँजी परिसम्पत्ति की सीमान्त इकाई से प्राप्त होता है।" इस प्रकार उद्यमी पूँजी के निवेश से पूर्व यह अनुमान लगाता है कि उसे लगाई जाने वाली पूँजी से कितना लाभ होगा। यदि उद्यमी को पूँजी के निवेश से अधिक लाभ प्राप्त होता है या पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अधिक है तब वह अधिक मात्रा में विनियोग करता है। इसके विपरीत यदि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता कम है, या कम लाभ प्राप्त होता है, तो वह विनियोग नहीं करता ।

प्रो. कींस के अनुसार पूँजी की सीमान्त उत्पादकता दो तत्वों पर निर्भर करती है, अ- पूँजी परिसम्पत्ति की भावी आय और ब- पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत। इन दोनों तत्वों की विस्तृत व्याख्या निम्न प्रकार है-

(A) पूँजी परिसम्पत्ति की भावी आय (Prospective Yield from Capital Assets) -

पूँजी-परिसम्पत्ति की भावी आय से आशय उस शुद्ध आय से है जिसे मशीन अथवा अन्य परिसम्पत्ति अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में दे सकती है। यहाँ शुद्ध शब्द का प्रयोग इस लिए किया गया है कि शुद्ध आय ज्ञात करने के लिए कुल आय में से पूँजी परिसम्पत्ति की वर्तमान लागतों; जैसे ब्याज, मजदूरी, कच्चा माल आदि के मूल्यों को घटा दिया जाता है। इसके साथ ही परिसम्पत्ति के जीवनकाल से प्राप्त आय से तात्पर्य उस वार्षिक शुद्ध लाभ से है जिसे कोई परिसम्पत्ति अपने जीवनकाल में देती है। दूसरे शब्दों में, "पूँजी परिसम्पत्ति की भावी प्राप्ति, वह कुल शुद्ध प्राप्ति है जिसे वह अपने जीवनकाल में प्रदान करती है।"

उदाहरणार्थ- यदि किसी परिसम्पत्ति (मशीन) की कुल आयु 12 वर्ष है, तब उस परिसम्पत्ति की कुल भावी आय ज्ञात करने के लिए आने वाले 12 वर्षों की शुद्ध आय की गणना (अनुमान) करनी होगी। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भावी आय नवीन पूँजी परिसम्पत्ति की होती है। दूसरे शब्दों में,।

विनियोगकर्ता नवीन पूँजी परिसम्पत्ति से होने वाली आय की ही गणना करता है, पुरानी परिसम्पत्ति की नहीं।

(B) पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत (Supply Price of Capital Assets) -

सामान्यतः पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत से तात्पर्य परिसम्पत्ति को क्रय करने या स्थापित करने की लागत से है। एक उद्यमी नवीन पूँजी-परिसम्पत्ति; जैसे मशीन आदि को खरीदकर उत्पादन में लगाने के लिए केवल उससे प्राप्त होने वाली भावी आय को ही

ध्यान में नहीं रखता वरन् वह परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत या लागत को भी ध्यान में रखता है। पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत से आशय नवीन परिसम्पत्ति की स्थापित करने की लागत से है।

इस प्रकार एक उद्यमी नवीन पूँजी परिसम्पत्ति में विनियोग करने से पूर्व उसके जीवनकाल में होने वाले भावी लाभ तथा उसकी पूर्ति कीमत या लागत की तुलना करता है। यदि उद्यमी को यह प्रतीत होता है की पूँजी परिसम्पत्ति से प्राप्त होने वाली सम्भावित आय उसकी लागत से अधिक है तो वह विनियोग करता है, अन्यथा नहीं। अतः किसी विशेष प्रकार की पूँजी परिसम्पत्ति की सीमान्त उत्पादकता का अर्थ यह है कि उद्यमी पूँजी-परिसम्पत्ति की एक अतिरिक्त इकाई से उसकी लागत की तुलना में कितना अधिक लाभ प्राप्त कर सकता है।

प्रो. कींस ने पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की परिभाषा देते हुए लिखा है कि, "पूँजी की सीमान्त उत्पादकता कटौती की उस दर के बराबर होती है जो किसी परिसम्पत्ति या मशीन के सम्पूर्ण जीवनकाल में प्रतिवर्ष की भावी आयों की दर पर वर्तमान मूल्यों को उसकी पूर्ति कीमत या लागत के बराबर कर देती है।"

अतः पूर्ति कीमत = भावी प्राप्ति - बट्टा

सूत्र रूप में-

$$Cr = \frac{Q_1}{(1+r)^1} + \frac{Q_2}{(1+r)^2} + \frac{Q_3}{(1+r)^3} + \frac{Q_n}{(1+r)^n}$$

यहाँ पर Cr: = नवीन पूँजी सम्पत्ति की पूर्ति कीमत

Q_1, Q_2, Q_3 = पूँजी परिसम्पत्ति से उपलब्ध होने वाली वार्षिक प्राप्तियाँ।

r = बट्टा दर या पूँजी की सीमान्त उत्पादकता।

चूँकि Q का मूल्य प्रति वर्ष समान नहीं रहता है और यह आवश्यक नहीं है कि पूँजी परिसम्मत्ति से प्राप्त होने वाली वार्षिक प्राप्तियाँ प्रति वर्ष समान ही रहें। परिसम्पत्ति की प्राप्तियाँ प्रति वर्ष समान नहीं रहती हैं। परन्तु कोई न कोई बट्टा दर या पूँजी की सीमान्त

उत्पादकता का कोई न कोई ऐसा मूल्य अवश्य होगा जो समीकरण के दोनों पक्षों के बीच समानता स्थापित करें। यहाँ पर $Q_1/(1+r)^1$ वार्षिकी के वर्तमान मूल्य को बताता है या यह उस प्राप्ति को प्रकट करता है जो कि प्रथम वर्ष की समाप्ति पर दर पर बट्टा करके प्राप्त हों। विभिन्न वार्षिकियों के वर्तमान मूल्य का इस ढंग से बट्टा काट सकते हैं कि उसकी कुल राशि तथा पूँजी परिसम्पत्ति की चालू पूर्ति कीमत के मध्य समानता स्थापित की जा सके। बट्टा दर पूँजी परिसम्पत्ति की भावी प्राप्तियों को उसकी चालू पूर्ति कीमत के बराबर कर देती है।

इस प्रकार पूँजी की सीमान्त उत्पादकता उस कटौती दर को बताती है जिस पर परिसम्पत्ति की भावी आय की कटौती की जाये ताकि यह सम्पत्ति की पूर्ति कीमत के बराबर हो जाये।

उदाहरण- माना की एक उद्यमर्मी एक नई मशीन में 1,00,000 रुपये का विनियोग करता है और यह मशीन अपने जीवनकाल या 10 वर्षों में 10,000 रुपये का शुद्ध वार्षिक लाभ देती है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ज्ञात करने के लिए भावी वार्षिक आय का वास्तविक लागत से अनुपात ज्ञात करना होगा, अर्थात्

$$\frac{10,000}{1,00,000} \times 100 = 10 \text{ प्रतिशत}$$

इस प्रकार पूँजी की सीमान्त उत्पादकता 10 प्रतिशत होगी। एक उद्यमी विनियोग करने के पूर्व पूँजी की सीमान्त उत्पादकता और पूँजी की पूर्ति कीमत की तुलना करेगा। उपर्युक्त उदाहरण में यदि पूँजी की पूर्ति कीमत 10 प्रतिशत से कम होगी, तभी उद्यमी मशीन खरीदने में विनियोग करेगा, अन्यथा समष्टि अर्थशास्त्र तथा मुद्रा एवं बैंकिंग नहीं।

14.4 पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं निवेश माँग

पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं निवेश माँग में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब किसी समय विशेष में किसी विशिष्ट प्रकार की पूँजी परिसम्पत्ति में अधिकाधिक विनियोग किया

जाता है तो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता घटने लगती है। सीमान्त उत्पादकता की इस प्रवृत्ति के दो कारण है-

प्रथम - जैसे-जैसे एक विशेष प्रकार की पूँजी-परिसम्पत्ति की पूर्ति बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उसकी भावी आय में कमी होती जाती है।

द्वितीय- किसी विशेष प्रकार की पूँजी-परिसम्पत्ति की अधिक पूर्ति के लिए सम्बन्धित उत्पादन के अन्य साधनों की माँग बढ़ जाती है और परिणामस्वरूप उस परिसम्पत्ति की लागत बढ़ जाती है और अन्ततः लागत की तुलना में भावी आय में कमी आने लगती है। इन दोनों कारणों के संयुक्त प्रभाव के परिणामस्वरूप जैसे-जैसे विनियोग की मात्रा में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे पूँजी की सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। सीमान्त उत्पादकता की इस प्रवृत्ति को सारणी- एक द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

सारणी-एक

पूँजी की घटती हुई सीमान्त उत्पादकता

सीमान्त निवेश	कुल निवेश	पूँजी की सीमान्त उत्पादकता
1000 करोड़ रु.	1000 करोड़ रु.	13 प्रतिशत
1000 करोड़ रु.	2000 करोड़ रु. (1000+1000)	11 प्रतिशत
1000 करोड़ रु.	3000 करोड़ रु. (2000 +1000)	9 प्रतिशत
1000 करोड़ रु.	4000 करोड़ रु. (3000+1000)	7 प्रतिशत
1000 करोड़ रु.	5000 करोड़ रु. (4000+1000)	5 प्रतिशत
1000 करोड़ रु.	6000 करोड़ रु. (5000 + 1000)	3 प्रतिशत

सारणी एक- से यह स्पष्ट होता है कि जब निवेश 1000 करोड़ रुपये होता है तब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता 13 प्रतिशत रहती है किन्तु जब निवेश बढ़कर 2000 करोड़ रु. (1000 + 1000 करोड़ रु.) होता है तब सीमान्त उत्पादकता घटकर 11 प्रतिशत रह जाती है। इसी प्रकार जैसे-जैसे निवेश की मात्रा में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे पूँजी की

सीमान्त उत्पादकता दर क्रमशः घटती जाती है। अन्ततः जब कुल निवेश 6,000 करोड़ रुपये होता है, तब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता घटकर केवल 3 प्रतिशत रह जाती है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि निवेश की मात्रा का निर्धारण दो तत्वों से होता है; यथा-पूँजी की **सीमान्त उत्पादकता एवं ब्याज दर**। फलतः उद्यमी उतनी ही मात्रा में पूँजी निवेश करता है, जहाँ पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं व्याज दर बराबर होते हैं। सारणी-एक के अनुसार, यदि ब्याज दर किसी समय विशेष में 9 प्रतिशत है, तब उद्यमी इस व्याज दर पर 3,000 करोड़ रुपये विनियोग करेंगे, क्योंकि इतनी मात्रा में निवेश की सीमान्त उत्पादकता भी 9 प्रतिशत है।

यदि किन्हीं कारणों से ब्याज दर में परिवर्तन होता है तो निवेश की मात्रा में भी परिवर्तन हो जाता है। सारणी एक के सन्दर्भ में यदि मान लें कि ब्याज की दर गिरकर 7 प्रतिशत हो जाती है, तब निवेश की मात्रा भी बढ़कर 4,000 करोड़ रु. हो जायेगी, क्योंकि निवेश के इस स्तर पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता भी 7 प्रतिशत है। निवेश की मात्रा और पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की इस प्रवृत्ति को रेखाचित्र-एक द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

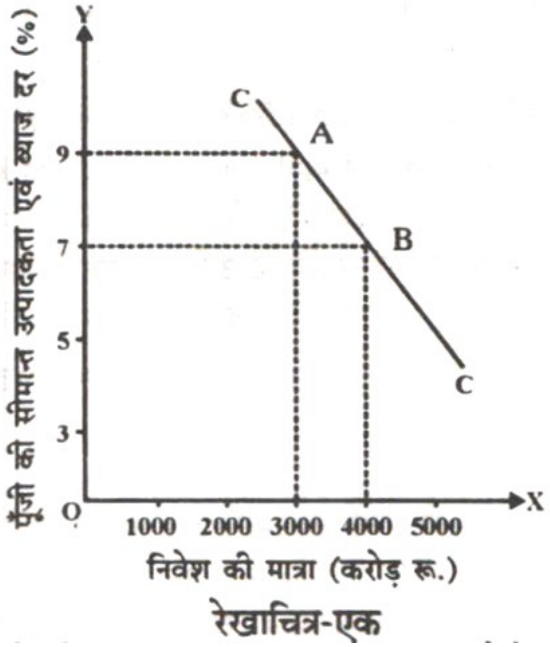

रेखाचित्र-एक

रेखाचित्र एक में OX अक्ष पर निवेश की मात्रा एवं OY अक्ष पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा ब्याज दर को दर्शाया गया है। CC रेखा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को दर्शाती है। इस रेखा से

यह स्पष्ट है कि जब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं ब्याज दर, दोनों 9 प्रतिशत रहते हैं, तब निवेश की मात्रा 3000 करोड़ रुपये रहती है। इसी प्रकार जब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं ब्याज दर 7 प्रतिशत रहते हैं तब निवेश 4000 करोड़ रुपये का होता है।

संक्षेप में, निवेश की मात्रा उस स्थान पर निर्धारित होती है, जहाँ पूँजी की सीमान्त उत्पादकता, व्याज दर के बराबर होती है।

पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को प्रभावित करने वाले घटक

पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्वों को दो शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है, यथा (अ) अल्पकालीन तत्व और (ब) दीर्घकालीन तत्व। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है:-

(A) अल्पकालीन तत्व (Short-term Factors)

पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को प्रभावित करने वाले प्रमुख अल्पकालीन तत्व निम्नलिखित हैं :-

1. लागत सीमा, माँग स्वरूप एवं कीमतों की सम्भावना- जैसा कि स्पष्ट है कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता भावी आय एवं पूँजी परिसम्पत्ति के पूर्ति मूल्य या लागत पर निर्भर करती है। अतः यदि भविष्य में लागत बढ़ने की सम्भावना हो और साथ में माँग घटने तथा कीमतें गिरने की सम्भावना भी हो तो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसके विपरीत, यदि भविष्य में लागत कम होने, माँग में वृद्धि होने और कीमतें बढ़ने की सम्भावना हो तो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा और साथ ही विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा।

2. आय में परिवर्तन :- सामान्यतः आय में वृद्धि होने से वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग में वृद्धि होती है, जिससे मूल्य बढ़ते हैं और लाभ की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है और परिणामस्वरूप पूँजी की सीमान्त उत्पादकता प्रोत्साहित होती है। इसके विपरीत आय में कमी से पूँजी की सीमान्त उत्पादकता हतोत्साहित होती है।

3. उपभोग प्रवृत्ति- अल्पकाल में भी उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि का पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। कारण यह है कि उपभोग में वृद्धि से

उपभोक्ता वस्तुओं के साथ-साथ पूँजीगत वस्तुओं जैसे मशीनें आदि की माँग भी बढ़ती है।

4. तरल सम्पत्ति- तरल सम्पत्ति का पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। कारण यह है कि जब साहसी के पास अनेक प्रकार की तरल सम्पत्ति होती है तो वह हर प्रकार का विनियोग करके लाभ उठाने का प्रयास करता है। इसके विपरीत, जब तरल सम्पत्ति नहीं होती है तब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के साथ-साथ विनियोग पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

5. भावी लाभ की सम्भावना- वर्तमान निवेश पर भावी लाभ की सम्भावना से पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। यदि साहसियों को दीर्घकाल में अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने की आशा हो तो वर्तमान में भी पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है।

(B) दीर्घकालीन तत्व (Long - term Factors): -

1. जनसंख्या :- तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या का विनियोग तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। कारण यह है कि बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार के उद्योगों में विनियोग की आवश्यकता पड़ती है जिससे पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

2. नये क्षेत्रों का विकास:- जब किसी देश में नवीन क्षेत्रों का आर्थिक विकास किया जाता है तो कृषि, सिचाई, बिजली, उद्योग, परिवहन, संचार आदि के विकास पर बड़े पैमाने में विनियोग किया जाता है, अर्थात् निवेश एवं पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि होती है।

3. वर्तमान पूँजी उपकरणों की उत्पादन क्षमता:- जब किसी अर्थव्यवस्था में वर्तमान उत्पादन क्षमता का पहले ही पूर्ण उपयोग हो चुका हो, तो वस्तु की बढ़ी हुई माँग को नई

मशीनें एवं संयंत्र लगाकर ही पूरा किया जा सकता है। इस प्रकार उपक्रमों को नया विनियोग करना पड़ेगा और पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

4. तकनीकी प्रगति :- जब उत्पादन तकनीकी में सुधार होता है या नवीन तकनीकी प्रचलन में आती है तो उत्पादन में लगे उद्योगों में नवीन विनियोग आवश्यक हो जाता है जिससे पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि होती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर अनेक तत्वों का प्रभाव पड़ता है, किन्तु कीस ने इस तथ्य को पूर्णतः स्पष्ट किया है कि ब्याज पर दर की तुलना में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के अधिक होने पर ही निवेश में वृद्धि होती है। दूसरे शब्दों में, निवेश या विनियोग में वृद्धि करने के लिए सीमान्त उत्पादकता की तुलना में ब्याज दर को कम होना चाहिए। यद्यपि प्रो. कींस के अनुसार अल्पकाल में ब्याज दर स्थिर रहती है, तथापि सरकार मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन करके ब्याज दर को कम कर सकती है।

14.5 पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की आलोचना

कीन्स की पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की मुख्य आलोचनाएँ निम्न प्रकार हैं:-

(i) कीन्स ने पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का प्रयोग इतने विभिन्न अर्थों में किया है कि इसका सही-सही अर्थ समझ पाना सम्भव नहीं हो पाता। वह इस अर्थ का प्रयोग एक निश्चित अर्थ में नहीं कर पाए थे।

(ii) कीन्स यह ज्ञात करने में असफल रहे कि ब्याज दरें आशंसाओं से इतनी शासित होती है, जितनी की पूँजी की सीमान्त उत्पादकता है। कीन्स का मत था कि ब्याज दर का आशंसाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(iii) कीन्स ने पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को गतिशील अर्थशास्त्र एवं ब्याज दर को गतिहीन अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सम्मिलित किया था। परन्तु आलोचकों का मत है कि इस

मान्यता का न तो कोई आधार है और न ही आर्थिक जीवन के तथ्यों के साथ इसका कोई सम्बन्ध है।

(iv) हैजलिट का मत है कि यदि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का आशंसाओं से सम्बन्ध है, तो ब्याज दर का भी आशंसाओं के साथ सम्बन्ध होना चाहिए, परन्तु कीन्स की धारणा अस्पष्ट एवं तथ्यों से परे हैं।

पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं ब्याज दर का सम्बन्ध

पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में भारी उतार-चढ़ाव होते रहते हैं, जबकि ब्याज दर में प्रायः स्थिरता ही बनी रहती है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एक ऐसा तत्व है जो कि अनेक जटिलताओं से प्रभावित होता है। आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्र में थोड़ा सा भी परिवर्तन आ जाने से MEC में परिवर्तन आना स्वाभाविक ही है। MEC निवेश की मात्रा से पर्याप्त रूप में प्रभावित हो जाती है। निवेश जितना अधिक होगा, MEC उतनी ही कम होगी और निवेश जितना कम होगा, MEC उतनी ही अधिक होगी। प्रायः ब्याज दर स्थिर रहती है और MEC व्याज दर पर अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डाल पाती, बल्कि ब्याज दर एवं MEC पर प्रभाव डालती है। पूर्ति कीमत में ब्याज दर को नहीं भुलाया जा सकता है और इसी कारण MEC, ब्याज दर से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती है। कीन्स का मत है कि MEC ब्याज दर को निर्धारित नहीं करती, बल्कि ब्याज दर ही MEC को निर्धारित करती है, परन्तु यह भी सदैव सत्य नहीं होता ।

14.6 ब्याज दर

प्रो. कींस ने अपने सामान्य सिद्धान्त में व्याज दर के निर्धारण की भी एक नए ढंग से व्याख्या की है। प्रतिष्ठित विचारधारा के विपरीत **प्रो. कींस** व्याज को मुद्रा का ही एक स्वरूप मानते हैं और इसी कारण आपके ब्याज दर के सिद्धान्त को एक मौद्रिक सिद्धान्त माना जाता है।

प्रो. कींस का ब्याज दर निर्धारण सिद्धान्त तरलता पसन्दगी सिद्धान्त (Liquidity Preference Theory of Interest) के नाम से लोकप्रिय है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर मुद्रा की माँग एवं पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों के द्वारा निर्धारित होती है। इस सिद्धान्त में मुद्रा की माँग का अर्थ है, व्यक्तियों द्वारा मुद्रा को तरल या नकद रूप में रखने की माँग और मुद्रा की पूर्ति का अर्थ है किसी समय विशेष में मुद्रा की कुल उपलब्ध मात्रा! मुद्रा की पूर्ति को केन्द्रीय बैंक या मुद्रा अधिकारी नियन्त्रित करता है। कींस के अनुसार जिस बिन्दु पर मुद्रा की माँग एवं पूर्ति बराबर होती है, वहीं ब्याज दर का निर्धारण होता है। प्रो. कीस के शब्दों में, "व्याज एक निश्चित समय के लिए तरलता का परित्याग करने का पारितोषक है।"

मुद्रा की माँग या तरलता पसन्दगी

प्रो. कींस के अनुसार मुद्रा की माँग का अर्थ है मुद्रा को नकद रूप में या तरल रूप में रखने की माँग। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय प्राप्त होने के बाद यह निर्धारित करता है कि कितने भाग का उपयोग वर्तमान में किया जावे और कितने भाग को भविष्य के लिए बचाकर नकद रूप में रखा जावे । इसके साथ ही व्यक्ति को यह भी निर्णय करना पड़ता है कि वह अपनी बचत को किस प्रकार रखे। इसके दो तरीके हैं, प्रथम व्यक्ति अपनी बचत को अपने ही पास नकद रूप में रखे और द्वितीय, वह अपनी बचत को किसी अन्य व्यक्ति को उधार दे दे, किन्तु, जब वह अपनी बचत को किसी अन्य व्यक्ति को दे देता है तो उसे तरलता का परित्याग करना पड़ता है। इस तरलता के परित्याग के लिए जो पारितोषक प्राप्त होता है, कीस ने उसी को ब्याज कहा है।

तरलता पसन्दगी के उद्देश्य

प्रो. कींस ने मुद्रा को नकद या तरल रूप में रखने के तीन उद्देश्य बताए है, जो कि निम्न प्रकार है-

(1) लेन-देन या सौदा उद्देश्य (Transaction Motive)- सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति अथवा व्यवसायी अपनी आय का एक भाग दैनिक कार्यों व अनेक प्रकार के भुगतानों के लिए नकद या तरल रूप में रखता है, जिसे लेन-देन या सौदा उद्देश्य कहा जाता है। प्रो. कींस के शब्दों में, "नकदी की आवश्यकता

आय प्राप्ति तथा व्यय करने के बीच के समय को पार करने के लिए पड़ती है।" सौदा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग प्रायः आय के स्तर पर निर्भर रहती है, अर्थात् यदि आय अधिक है तो व्यक्ति लेन-देन के उद्देश्य के लिए अधिक नकद रखता है। इसके विपरीत, यदि आय कम है, तो मुद्रा नकद मात्रा में कम रखी जाती है। सामान्यतः इस उद्देश्य से रखी जाने वाली नकद मुद्रा की मात्रा ब्याज दर से प्रभावित न होकर व्यक्ति की आय से प्रभावित होती है।

(ii) सावधानी या दूरदर्शिता उद्देश्य (Precautionary Motive)- प्रत्येक व्यक्ति सावधानी या दूरदर्शिता के उद्देश्य से भी नकद मुद्रा रखता है। सावधानी या दूरदर्शिता से आशय अप्रत्याशित घटनाओं, जैसे बीमॉरी, दुर्घटना, बेरोजगारी आदि के समय नकद मुद्रा की आवश्यकता से है, जिनका सामना करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय का एक भाग नकद रखता है। इस उद्देश्य के लिए रखी जाने वाली नकद मुद्रा की मात्रा सामान्यतः ब्याज दर से प्रभावित नहीं होती।

(iii) सट्टा उद्देश्य (Speculative Motive)- व्यवसायी एवं सटोरिये भविष्य में आर्थिक क्षेत्र (ब्याज दर) में होने वाले परिवर्तन से लाभ उठाने के लिए भी अपने पास नकद मुद्रा रखते हैं। इसे सट्टा उद्देश्य कहते हैं। प्रो. कींस के अनुसार, "भविष्य की घटनाओं के बारे में साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक जानकारी होने के कारण लाभ कमाने की प्रवृत्ति को सट्टा उद्देश्य कहते हैं।"

मुद्रा को तरल या नकद (मुद्रा की माँग) रखने के सन्दर्भ में प्रो. कींस का मत है कि सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग मुख्यतः ब्याज दर पर निर्भर करती है। यदि सटोरिये ब्याज की वर्तमान दर को नीचा समझते हैं तो वे मुद्रा की अधिक मात्रा नकद रूप में रखेंगे

ताकि भविष्य में ब्याज की दर ऊँची होने पर मुद्रा को ब्याज पर उधार देकर अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्याज दर में परिवर्तन का मुख्य कारण सट्टे के उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग है।

मुद्रा की पूर्ति

मुद्रा की पूर्ति पर सरकार या केन्द्रीय बैंक का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। फलतः किसी समय विशेष में मुद्रा की कुल पूर्ति लगभग स्थिर रहती है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि मुद्रा की पूर्ति एवं वस्तु की पूर्ति में अन्तर होता है। वस्तु की पूर्ति एक प्रवाह (Flow) के रूप में होती है, जबकि मुद्रा की पूर्ति एक स्टाक (Stock) के समान होती है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार वस्तुओं का उत्पादन व उपभोग निरन्तर होता रहता है, उसी प्रकार मुद्रा का नहीं होता।

मुद्रा की पूर्ति का ब्याज की दर पर ठीक वही प्रभाव पड़ता है जो किसी वस्तु की पूर्ति का उसकी कीमत पर पड़ता है। दूसरे शब्दों में, मुद्रा की पूर्ति जितनी अधिक होगी, अन्य बातें समान रहने पर, ब्याज की दर उतनी ही कम होगी। इसके विपरीत, मुद्रा की पूर्ति जितनी कम होगी, ब्याज दर उतनी ही अधिक होगी।

ब्याज दर का निर्धारण

प्रो. कींस के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण मुद्रा की माँग या तरलता पसन्दगी और मुद्रा की पूर्ति के द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में, जहाँ पर मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति की रेखाएँ एक-दूसरे को काटती है, वहीं पर व्याज दर का निर्धारण होता है। इसे रेखाचित्र दो के द्वारा सरलता से समझा जा सकता है।

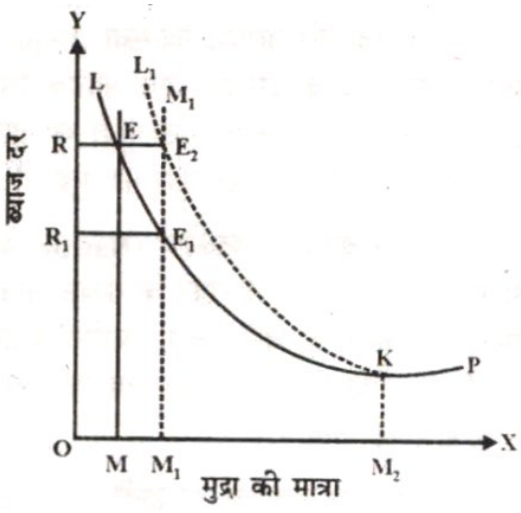

रेखाचित्र – दो

रेखाचित्र-दो में OX अक्ष पर मुद्रा की मात्रा एवं OY अक्ष पर ब्याज की दर को दर्शाया गया है। रेखा MM मुद्रा की पूर्ति एवं रेखा LP मुद्रा की

माँग या तरलता पसन्दगी को दर्शाती है। E साम्य बिन्दु है, जहाँ MM रेखा LP रेखा को काटती है। इस बिन्दु पर OR ब्याज दर निर्धारित होती है।

यदि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है, अर्थात् मुद्रा की पूर्ति MM रेखा से बढ़कर M_1M_1 हो जाती है, तब चूँकि मुद्रा की माँग पूर्ववत् LP रेखा है, नवीन साम्य बिन्दु E_1 होगा जहाँ पर ब्याज दर OR1 निर्धारित होती है। दूसरे शब्दों में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होने से ब्याज दर कम होती है।

अब यदि, आय के स्तर में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप तरलता-पसन्दगी (मुद्रा की माँग) रेखा LP बढ़कर L_1P हो जाती है। यदि तरलता पसन्दगी (L_1P) में वृद्धि के साथ-साथ मुद्रा की बढ़ी हुई पूर्ति (M1M1) रहती है, तब नवीन साम्य E_2 बिन्दु पर होगा। इस स्थिति में ब्याज की दर पूर्ववत् OR ही होगी। इसका कारण यह है कि E2 साम्य पर मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति दोनों में वृद्धि हुई है और परिणामस्वरूप व्याज दर में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

तरलता ट्रेप

प्रो. कींस द्वारा प्रतिपादित तरलता पसन्दगी सिद्धान्त इस तथ्य की व्याख्या करता है कि ब्याज की दर को एक स्तर से नीचे नहीं लाया जा सकता, चाहे मुद्रा की पूर्ति को कितना भी अधिक क्यों न बढ़ा दिया जाए। प्रो. कींस का मत है कि ब्याज की दर कम होते-होते एक ऐसे स्तर पर आ जाती है जहाँ उसे और अधिक कम करने के प्रत्येक प्रयास का विरोध होता है। फलतः इस न्यूनतम स्तर पर ब्याज की दर स्थिर हो जाती है। इस स्तर पर मुद्रा की माँग पूर्णतः लोचदार बन जाती है।

रेखाचित्र - दो में तरलता पसन्दगी रेखा LP एवं L_1P (मुद्रा की माँग रेखाएँ) K बिन्दु के बाद OX अक्ष के समानान्तर हो जाती है। इस स्थिति में मुद्रा की पूर्ति या या MM एवं M_1M_1 रेखा को कितना भी बढ़ाया जावे ब्याज की दर KM2 से कम नहीं होती है। इस

स्थिति में KP रेखा, जो कि OX अक्ष के समानान्तर है, तरलता ट्रेप की स्थिति को दर्शाती है।

इस प्रकार प्रो. कींस का मत है कि व्याज की दर एक सीमा के बाद और अधिक नीचे नहीं गिरती। इसका कारण यह है कि ब्याज की निम्नतम दर पर ब्याज से होने वाली आय में जोखिम बहुत अधिक बढ़ जाता है जिसके कारण व्यक्ति इस दर से कम ब्याज दर पर ऋण देना लाभदायक नहीं समझता। इसके साथ ही, ब्याज की इस न्यूनतम दर पर प्रत्येक व्यक्ति बाण्ड्स अथवा प्रतिभूतियाँ आदि खरीदकर जोखिम उठाने की तुलना में मुद्रा को नकद रूप में रखना अधिक लाभदायक समझता रता है। इस प्रकार, प्रो. कींस का मत है कि ब्याज दर कभी भी शून्य तक नहीं गिरती और न यह कभी ऋणात्मक होती है।

14.7 तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की आलोचना

प्रो. कींस द्वारा प्रतिपादित ब्याज के सिद्धान्त या तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की अनेक अर्थशास्त्रियों के द्वारा कटु आलोचना की गई है, जो कि निम्न प्रकार है-

(i) मुद्रा की अस्पष्ट व्याख्या (Explanation of Money is not Clear)- यद्यपि प्रो. कींस द्वारा दिया गया ब्याज का सिद्धान्त एक मौद्रिक सिद्धान्त है, तथापि उन्होंने मुद्रा का ही अर्थ स्पष्ट नहीं किया है। एक स्थान पर उन्होंने साख मुद्रा को कुल मुद्रा की पूर्ति में सम्मिलित किया है, किन्तु एक अन्य स्थान पर कहा है कि साख मुद्रा को, मुद्रा के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

(ii) संकुचित दृष्टिकोण (Narrow Approach)- तरलता पसन्दगी या नकद वरीयता सिद्धान्त में मुद्रा को तरल रूप में रखने के केवल तीन उद्देश्य ही बताए हैं, जबकि मुद्रा की तरलता अनेक तत्वों पर निर्भर करती है, जैसे बचत, उपभोग प्रवृत्ति, पूँजी की सीमान्त उत्पादकता आदि। प्रो. कींस ने इन तत्वों की अपने सिद्धान्त में व्याख्या नहीं की। इस प्रकार आलोचकों का मत है कि कींस ने संकुचित दृष्टिकोण अपनाया है।

(iii) मुद्रा उत्पादक भी होती है (Money is also Productive)- आलोचकों का मत है कि ब्याज केवल तरलता के परित्याग का प्रतिफल नहीं है, वरन् ब्याज पूँजी में उत्पादकता के गुण होने के कारण भी दिया जाता है। इस प्रकार कींस ने अपने सिद्धान्त में उत्पादकता को सम्मिलित नहीं किया, जो कि उचित नहीं है।

(iv) तरल एवं अ-तरल मुद्रा में भेद करना कठिन है (Difficult to Distinguish between Liquid & non-Liquid Money)- प्रो. कींस ने मुद्रा को तरल मानकर अपने विश्लेषण को बहुत अधिक सरल बना दिया है। वास्तव में तरलता कई प्रकार की होती है, जिसके कारण ब्याज दर एक जटिल समस्या बन जाती है। प्रो. हैजलिट के अनुसार "यदि कोई व्यक्ति अपने धन को समयावधि जमा या अल्पकालीन कोषागार विपत्रों में लगा देता है तो उसे केवल ब्याज ही प्राप्त नहीं होता वरन् उसके साथ-साथ उसे तरलता भी उपलब्ध होती है।"

(v) तरलता बचत पर आधारित है (Liquidity is Based on Savings)- आलोचकों का मत है कि तरलता बचत पर आधारित होती है जिसका कि परित्याग किया जाता है, किन्तु प्रो. कींस ने अपने सिद्धान्त में बचत की व्याख्या नहीं की है।

प्रो. वाइनर के शब्दों में, "बचत के बिना वह तरलता सम्भव नहीं हो सकती जिसका कि परित्याग किया जाता है। अर्थात् ब्याज की दर तरलता का नहीं वरन् बचत का प्रतिफल होती है। अतः व्याज के किसी भी सिद्धान्त में बचत की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

(vi) अनिश्चितता (Un-certainity)- प्रो. हेंसन का मत है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त की भाँति यह सिद्धान्त भी अनिश्चित है। इसका कारण यह है कि ब्याज दर तरलता पसन्दगी पर निर्भर करती है और तरलता पसन्दगी आय पर निर्भर करती है। आय में वृद्धि होने से तरलता पसन्दगी बढ़ जाती है और आय में कमी से तरलता पसन्दगी कम हो जाती है। किन्तु आय का स्तर विनियोग पर निर्भर करता है तथा विनियोग ब्याज दर पर निर्भर करता है। इस प्रकार कॉस का सिद्धान्त भी प्रतिष्ठित सिद्धान्त के समान अनिश्चितताओं से भरा हुआ है।

(vii) सीमित क्षेत्र (Limited Scope)- प्रो. कींस का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त अत्यन्त संकीर्ण एवं संकुचित है, क्योंकि एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें नकद लेन-देन नहीं होता, ब्याज दर का निर्धारण किस प्रकार होता है, के सम्बन्ध में विचार स्पष्ट नहीं है। संक्षेप में यह सिद्धान्त सीमित क्षेत्र पर ही लागू होता है।

(viii) सिद्धान्त की विसंगतियाँ (Controversies)- प्रो. हेजलिट का मत है कि यदि कीस के सिद्धान्त को सही मान लिया जाए तो आर्थिक मन्दी के समय ब्याज की दर उच्चतम होनी चाहिए, क्योंकि गिरती हुई कीमतों के कारण लोगों की तरलता पसन्दगी बढ़ जाती है। इसके विपरीत, वास्तविकता यह है कि आर्थिक मन्दी के समय ब्याज की दर सबसे कम होती है। इसी प्रकार, इस सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा स्फीति या ऊँची कीमतों की स्थिति में ब्याज की दर ऊँची होनी चाहिए, क्योंकि लोग. नकद मुद्रा कम रख पाएँगे, किन्तु वास्तविकता यह है कि ऐसे समय में ब्याज की दर बहुत नीची होती है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी कींस का तरलता सिद्धान्त अत्यधिका महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। प्रो. कींस का यह मत विशेष लोकप्रिय हुआ है कि ब्याज दर को कम रखकर निवेश की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है जिससे कि रोजगार के स्तर को ऊँचा उठाकर पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त किया जा सकता है।

14.8 विनियोग के निर्धारिक तत्व- एक दृष्टि में

निवेश या विनियोग क्रिया (फलन) के अन्तर्गत कींस ने यह स्पष्ट किया है कि विनियोग पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एवं ब्याज दर द्वारा निर्धारित होता है। संक्षेप में विनियोग के निर्धारक तत्वों को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है:-

1. अर्थव्यवस्था में विनियोग (निवेश) की मात्रा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा ब्याज दर पर निर्भर करती है। जब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर से अधिक होती है, तभी विनियोग हेतु प्रेरणा मिलती है, अर्थात् विनियोग होता है। इसके विपरीत, जब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज दर से कम होती है, तब विनियोग में कमी होने लगती है।

2. पूँजी की सीमान्त उत्पादकता स्वयं पूँजी परिसम्पत्ति की पूर्ति कीमत एवं पूँजी सम्पत्ति से भावी आय द्वारा निर्धारित होती है। फलतः विनियोग हेतु उद्यमी पूँजी परिसम्पत्ति की भावी आय और उसकी पूर्ति कीमत की भी तुलना करता है। जब पूँजी परिसम्पत्ति की भावी आय उसकी पूर्ति कीमत से अधिक रहती है, तभी उद्यमी विनियोग हेतु प्रेरित होता है।

3. संक्षेप में विनियोग को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व पूँजी की सीमान्त उत्पादकता है।

निजी निवेश को प्रोत्साहित करने के उपाय

अल्पकाल में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में भारी उतार-चढ़ाव होते रहते हैं, परन्तु दीर्घकाल में उसमें नीचे की ओर गिरने की प्रवृत्ति पायी जाती है। अतः निजी निवेश से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह अल्पकाल में स्थिर रहेगा। दीर्घकाल में निजी निवेश गिरावट की प्रवृत्ति को बताता है। अल्पकाल में उपभोग व्यय किस सीमा तक स्वर रहता है और संगठित प्रयासों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। रोजगार में वृद्धि निवेश से ही सम्भव हो सकती है। निजी निवेश के प्रोत्साहन के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं:-

(1) कराधान में कमी- करों का भारी बोझ निजी व्यावसायिक संस्थाओं की आय व व्यय के अन्तर को संकुचित करते हैं तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में कमी उत्पन्न कर देते हैं। इससे व्यवसाय का प्रसार रुक जाता है। अतः मन्दीकाल में निजी निवेश को प्रोत्साहित करने हेतु व्यावसायिक करों में पर्याप्त कमी करनी चाहिए। इससे पूँजी की सीमान्त उत्पादकत बढ़ेगी और निजी निवेश बढ़ेगा।

(2) मजदूरी स्तर में कमी- निवेश की मात्रा को बढ़ाने के लिए मन्दीकाल में मुद्रा-मजदूरी में कटौती की जानी चाहिए। यह कटौती पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को निम्न प्रकार से प्रभावित करती

(i) यह ब्याज दर को प्रभावित करती है, एवं

(ii) ब्याज दर आशंसाओं को प्रभावित करती हुई पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को प्रभावित करती है।

(iii) मुद्रा मजदूरी कटौती के कारण मालिकों के मजदूरी बिलों की राशि में कमी आएगी और नकद रुपए की माँग घटकर ब्याज दर को कम कर देगी।

चूँकि निवेश पर ब्याज का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और ब्याज दर में की गयी कटौती निवेश में वृद्धि नहीं कर पाती है, परन्तु आशंसाओं द्वारा यह कटौती निवेश पर उत्साहवर्द्धक प्रभाव डाल सकती है। यदि मजदूरी कटौतियाँ धीरे-धीरे की जाएँ तो इसका निवेश पर पड़ने वाला उत्साहवर्द्धक प्रभाव नष्ट हो जाएगा।

मजदूरी का दोहरा स्वभाव होने के कारण मजदूरी कटौती से निवेश पर पड़ने वाले प्रभाव का अनुमान लगाना सरल नहीं होता है। मजदूरी को आय व लागत दो दृष्टि से देखा जाता है। मालिकों के लिए मजदूरी उनकी लागत का एक अभिन्न अंग है तो समाज के लिए मजदूरी आय का एक साधन है। अतः मजदूरी कटौती से समाज की कुल माँग से मजदूरी कटौती के अनुपात में ही कमी आ जाती है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन एवं रोजगार की कमी आ जाती है। यह भी सम्भव है कि उपभोग में कमी आने से मजदूरी कटौती का निवेश पर पड़ने वाला प्रेरक प्रभाव तटस्थ हो जाए। अतः मजदूरी-कटौती की अपेक्षा मुद्रा मजदूरी को स्थिर रखना अधिक लाभप्रद माना जाता है।

(3) ब्याज दर में कमी- यह कहा जाता है कि मन्दीकाल में अधिक निवेश को प्रोत्साहित करने हेतु ब्याज दर में जान-बूझकर कमी की जानी चाहिए, परन्तु कीन्स ने अपने सामान्य सिद्धान्त में इस बात को नहीं माना कि ब्याज पर निवेश में विस्तार करने की क्षमता रखता है।

(4) मूल्य समर्थन नीति- मूल्यों की अस्थिरता से निजी निवेश में भी अस्थिरता आ जाती है। अतः निजी निवेश की वृद्धि के लिए मूल्यों में अस्थिरता लाना आवश्यक है। मूल्यों में

स्थिरता लाने हेतु सरकारी मूल्य समर्थन नीति का सुझाव दिया जाता है। अतः माँग व पूर्ति में सन्तुलन बनाए रखने हेतु सरकार को भारी मात्रा में क्रय व विक्रय करना होता है। सरकार को चाहिए कि मूल्य गिरने पर वह वस्तुओं की भारी मात्रा में खरीद करें तथा मूल्यों को और अधिक गिरने से बचाने हेतु उचित भण्डारों का प्रयोग करें। बढ़ती हुई कीमतों के समय सरकार भण्डार के माल को बाजार में बेचने हेतु प्रस्तुत करें, जिससे वस्तुओं की कीमतें और अधिक ऊंची न हो सकें। अतः सरकार को वस्तुओं की क्रय व विक्रय के द्वारा मूल्यों में स्थिरता लाना चाहिए तथा निजी निवेश को प्रोत्साहित करना चाहिए।

(5) अन्य प्रभाव- निजी निवेश को प्रोत्साहन करने हेतु अन्य उपाय निम्न प्रकार से हैं:-

(i) एकाधिकारी सुविधाओं की समाप्ति बड़े-बड़े संस्थाओं की प्राविधिक प्रक्रिया में एकाधिकार के कानून को कमजोर करके तथा पेटेण्ट प्रणाली में सुधार करके, नवीन भावी निवेश में सुधार लाए जा सकते हैं।

(ii) शोध क्षेत्र में विस्तार गैर व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा शोध कार्य सम्पन्न कराकर निवेशकर्ताओं के लिए नवीन मार्ग खोले जा सकेंगे तथा देश में निजी निवेश को प्रोत्साहित किया जा सकेगा।

निजी निवेश एक अति अविश्वसनीय तत्व होने के कारण इन उपायों से भी उसमें वृद्धि होना सम्भव नहीं हो पाती है। अतः निजी निवेश के स्थान पर सरकारी निवेश को अधिक महत्व दिया जाना उचित माना जाता है।

14.9 सार संक्षेप

विनियोग फलन (Investment Function) और **पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता (Marginal Efficiency of Capital)** दोनों ही अर्थशास्त्र के महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं, जो निवेश और पूँजी के उपयोग से संबंधित हैं। इनके सार-संक्षेप पर चर्चा करते हैं:

1. **विनियोग फलन** (Investment Function):

विनियोग फलन यह बताता है कि एक अर्थव्यवस्था में कुल निवेश (Investment) कैसे विभिन्न कारकों के आधार पर बदलता है, जैसे कि ब्याज दर, आय, और अन्य आर्थिक शर्तें। इसे आमतौर पर इस प्रकार व्यक्त किया जाता है:

- **I = f(i)**: यहाँ। निवेश है और i ब्याज दर है। यह सिद्धांत कहता है कि जैसे-जैसे ब्याज दर घटती है, निवेश में वृद्धि होती है, क्योंकि पूँजी की लागत कम होती है।

विनियोग फलन में निवेश की मात्रा ब्याज दर और अन्य आर्थिक परिवर्तनों के आधार पर निर्धारित होती है। यह सिद्धांत यह भी बताता है कि जब ब्याज दर अधिक होती है, तो निवेश कम होता है, और जब ब्याज दर कम होती है, तो निवेश बढ़ता है।

2. **पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता** (Marginal Efficiency of Capital):

पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता (MEC) से तात्पर्य उस पूँजी के निवेश से होने वाली अतिरिक्त लाभ की दर से है, जिसे निवेशकर्ता अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए निवेश करता है। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है:

- **MEC = (आवश्यक लाभ / पूँजी निवेश की राशि)**

यह सिद्धांत यह बताता है कि पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता उस निवेश पर आधारित होती है जो निवेशक को अपनी पूँजी से लाभ की उम्मीद करता है। जब MEC अधिक होती है, तो निवेशकों को अधिक लाभ मिलने की उम्मीद होती है, जिससे निवेश में वृद्धि होती है। और जब MEC घटती है, तो निवेश कम हो जाता है।

14.10 मुख्य शब्द

विनियोग फलन (Investment Function) और **पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता (Marginal Efficiency of Capital)** की मुख्य शब्द को समझना अर्थशास्त्र के

अध्ययन में बहुत महत्वपूर्ण है। नीचे इन दोनों शब्दों से संबंधित प्रमुख मुख्य शब्द दी गई है:

विनियोग फलन (Investment Function) की मुख्य शब्द :

1. **विनियोग (Investment)**: वह धनराशि जो एक व्यक्ति, कंपनी, या सरकार उत्पादन की क्षमता बढ़ाने के लिए खर्च करती है, जैसे कि मशीनरी, इमारत, या अन्य भौतिक संपत्ति खरीदने में।
2. **ब्याज दर (Interest Rate)**: वह दर जिस पर पैसे को उधार लिया जाता है या दिया जाता है। ब्याज दर आमतौर पर निवेश निर्णयों को प्रभावित करती है।
3. **आय (Income)**: वह कुल राशि जो किसी व्यक्ति, परिवार या समाज के पास होती है, जिससे वह उपभोग और निवेश करता है।
4. **विनियोग फलन (Investment Function)**: यह एक आर्थिक मॉडल है जो बताता है कि निवेश ब्याज दर, आय, और अन्य आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर कैसे बदलता है।
5. **प्राकृतिक आय (Autonomous Income)**: वह आय जो निवेश और अन्य आर्थिक तत्वों पर निर्भर नहीं होती, जैसे कि सरकारी खर्च या विदेशी निवेश।
6. **ब्याज दर में परिवर्तन (Change in Interest Rate)**: जब ब्याज दर बढ़ती है, तो निवेश कम होता है और जब ब्याज दर घटती है, तो निवेश बढ़ता है।

पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता (Marginal Efficiency of Capital) की मुख्य शब्द :

1. **सीमान्त कार्यक्षमता (Marginal Efficiency)**: यह एक इकाई निवेश से उत्पन्न अतिरिक्त लाभ की दर को दर्शाता है। यदि किसी नए निवेश से मिलने वाले लाभ में वृद्धि होती है, तो सीमान्त कार्यक्षमता अधिक होगी।
2. **पूँजी (Capital)**: वह संसाधन जो उत्पादन को बढ़ाने या नए उत्पादों और सेवाओं के निर्माण के लिए निवेश किया जाता है, जैसे मशीनरी, उपकरण या भूमि।

3. **सीमान्त कार्यक्षमता का माप (Measurement of MEC)**: पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता उस अतिरिक्त लाभ से मापी जाती है जो किसी निवेश से उत्पन्न होता है। यह गणना पूँजी के निवेश पर प्राप्त लाभ और निवेश की राशि के आधार पर की जाती है।
4. **संचयी लाभ (Cumulative Returns)**: पूँजी निवेश से जो लाभ एकत्रित होता है, उसे संचयी लाभ कहा जाता है।
5. **सीमान्त लाभ (Marginal Return)**: एक अतिरिक्त यूनिट पूँजी निवेश करने पर प्राप्त होने वाला अतिरिक्त लाभ।
6. **पूँजी की ढलान (Capital Diminishing)**: जब पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता घटती है, तो यह स्थिति पूँजी की ढलान कहलाती है। यह तब होता है जब एक ही पूँजी निवेश से प्राप्त लाभ में कमी आती है।
7. **पूँजी की कार्यक्षमता में परिवर्तन (Change in Efficiency of Capital)**: यह उस समय को दर्शाता है जब किसी विशेष निवेश के लाभ की दर में वृद्धि या कमी होती है।

14. 11 स्व -प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

विनियोग फलन (Investment Function) और **पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता (Marginal Efficiency of Capital)** पर आधारित स्व-प्रगति परिक्षण (Self-Assessment Test) के प्रश्नों के उत्तर निम्नलिखित हैं:

प्रश्न 1: **विनियोग फलन** (Investment Function) **क्या है**?

उत्तर:

विनियोग फलन एक आर्थिक मॉडल है जो यह दर्शाता है कि एक अर्थव्यवस्था में कुल निवेश (Investment) ब्याज दर (Interest Rate) और अन्य कारकों के आधार पर कैसे बदलता है। इसे आमतौर पर इस प्रकार व्यक्त किया जाता है:

- **I = f(i)**, जहाँ। निवेश है और i ब्याज दर है।
  विनियोग फलन के अनुसार, जैसे-जैसे ब्याज दर कम होती है, निवेश बढ़ता है, क्योंकि पूँजी की लागत कम होती है। जब ब्याज दर अधिक होती है, तो निवेश कम होता है।

प्रश्न 2: **पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता** (Marginal Efficiency of Capital) **क्या है**?
उत्तर:
पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता (MEC) उस अतिरिक्त लाभ की दर को दर्शाती है, जो एक अतिरिक्त पूँजी निवेश से प्राप्त होती है। इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

- **MEC = (आवश्यक लाभ / पूँजी निवेश की राशि)**
  यह सिद्धांत यह बताता है कि जब पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता अधिक होती है, तो निवेशक को अपेक्षित लाभ अधिक होता है, जिससे निवेश में वृद्धि होती है। जब MEC घटता है, तो निवेश कम हो जाता है।

प्रश्न 3: **विनियोग फलन और पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता में क्या अंतर है**?
उत्तर:

- **विनियोग फलन**: यह बताता है कि ब्याज दर और अन्य कारकों के आधार पर कुल निवेश कैसे प्रभावित होता है। यह यह दिखाता है कि जैसे-जैसे ब्याज दर घटती है, निवेश बढ़ता है और जैसे-जैसे ब्याज दर बढ़ती है, निवेश कम होता है।
- **पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता**: यह एक निवेश से उत्पन्न होने वाले अतिरिक्त लाभ की दर को दर्शाता है। यह निवेश की मात्रा को प्रभावित करता है, क्योंकि जब MEC अधिक होती है, तो निवेशक अधिक निवेश करने के लिए तैयार होते हैं।

संक्षेप में, विनियोग फलन ब्याज दर और अन्य कारकों के आधार पर निवेश का निर्धारण करता है, जबकि पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता यह बताती है कि पूँजी निवेश से कितना अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है।

प्रश्न 4: **ब्याज दर में परिवर्तन का विनियोग फलन पर क्या प्रभाव पड़ता है**?
उत्तर:
विनियोग फलन के अनुसार, ब्याज दर और निवेश के बीच एक प्रतिकूल संबंध होता है। जब ब्याज दर में वृद्धि होती है, तो निवेश कम होता है क्योंकि पूँजी की लागत बढ़ जाती

है। इसके विपरीत, जब ब्याज दर घटती है, तो निवेश में वृद्धि होती है, क्योंकि पूँजी की लागत कम होती है और अधिक लाभ की संभावना होती है।

प्रश्न 5: **पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता में गिरावट क्यों होती है**?
उत्तर:
पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता में गिरावट तब होती है जब अतिरिक्त पूँजी निवेश से प्राप्त लाभ में कमी आने लगती है। यह "सीमान्त लाभ" में कमी के कारण होता है, जिससे निवेश की लाभप्रदता घट जाती है। अधिक पूँजी निवेश करने पर उत्पादकता में कमी आ सकती है, और इसी कारण MEC घटने लगता है।

प्रश्न 6: **पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता का माप कैसे किया जाता है**?
उत्तर:
पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता (MEC) का माप उस अतिरिक्त लाभ से किया जाता है जो निवेश की एक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त होता है। इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

- **MEC = (आवश्यक लाभ / पूँजी निवेश की राशि)**
  जब एक नई पूँजी इकाई निवेश की जाती है, तो उससे उत्पन्न होने वाला लाभ उसकी MEC को निर्धारित करता है। यदि लाभ अधिक होता है, तो MEC उच्च होती है, और यदि लाभ कम होता है, तो MEC घटित होती है।

प्रश्न 7: **विनियोग फलन और पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता का मिलाजुला प्रभाव निवेश पर क्या होता है**?
उत्तर:
विनियोग फलन और पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता दोनों ही निवेश निर्णयों को प्रभावित करते हैं:

- जब ब्याज दर घटती है, तो **विनियोग फलन** के अनुसार निवेश बढ़ता है, क्योंकि पूँजी की लागत कम होती है।
- साथ ही, **पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता** के अनुसार, यदि एक निवेश से अधिक लाभ प्राप्त होता है, तो निवेशक अधिक निवेश करने के लिए प्रेरित होते हैं। जब MEC अधिक होती है, तो निवेश बढ़ता है, लेकिन जब MEC घटती है, तो निवेश में कमी आती है।

इस प्रकार, जब ब्याज दर कम होती है और MEC अधिक होती है, तो निवेश में वृद्धि होती है।

प्रश्न 8: क्या पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता और निवेश के बीच संबंध है?
उत्तर:
हाँ, पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता और निवेश के बीच घनिष्ठ संबंध होता है। जब पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता अधिक होती है, तो निवेशक अधिक निवेश करने के लिए तैयार होते हैं, क्योंकि उन्हें निवेश से अधिक लाभ प्राप्त होने की उम्मीद होती है। इसके विपरीत, जब MEC घटती है, तो निवेश की दर भी घट जाती है, क्योंकि पूँजी निवेश से मिलने वाले लाभ में कमी होती है।

14.12 संदर्भ ग्रंथ

- कुमार, ए. (2018). *भारतीय अर्थव्यवस्था के सिद्धांत और अनुप्रयोग.* नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन।
- वर्मा, आर. (2020). *आधुनिक अर्थशास्त्र: सिद्धांत और व्यवहार.* मुंबई: हेमंत पब्लिशर्स।
- शर्मा, पी. (2021). *नवीन अर्थव्यवस्था का विकास और चुनौतियाँ.* पटना: प्रगति प्रकाशन।
- गुप्ता, एस. (2019). *पूँजी बाजार और निवेश का विश्लेषण.* जयपुर: इंडिया पब्लिशिंग हाउस।
- तिवारी, एन. (2022). *अर्थशास्त्र की भूमिका और प्रभाव.* वाराणसी: यूनिवर्सिटी प्रेस।

14.13 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. निवेश क्रिया से आप क्या समझते हैं? उन तत्वों की संक्षेप में व्याख्या कीजिए जिनसे निवेश क्रिया निर्धारित होती है।

What do you understand by Investment Function? Explain in short the factors which determine the investment function.

2. पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से आप क्या समझते हैं? पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्वों को समझाइये ।

   What do you understand by marginal efficiency of capital? Explain factors affecting marginal efficiency of capital.

3. कीस द्वारा प्रतिपादित तरलता पसन्दगी सिद्धान्त की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

   Explain fully the Keynesian Theory of Liquidity Preference.

4. "व्याज दर तरलता का परित्याग करने का पारितोषक है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

   "The rate of interest is the payment for parting with liquidity." Explain the above statement.

5. निम्नलिखित प्रश्नों की 100 शब्दों में व्याख्या कीजिए -

(i) पूँजी-परिसम्पत्ति की भावी आय। (Prospective yield from capital assets)

(ii) सट्टा उद्देश्य (Speculative Motive)

(iii) तरलता ट्रेप (Liquidity Trap)

(iv) पूँजी की सीमान्त कार्यक्षमता एवं ब्याज की दर।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विनियोग का अर्थ बताइये ।

Explain meaning of Investment.

2. पूँजी की सीमान्त क्षमता से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by marginal efficiency of capital.

3. तरलता पसन्दगी से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by Liquidity preference.

4. तरलता जाल (ट्रेप) को समझाइये ।

Explain Liquidity trap.

5. निजी निवेश को प्रोत्साहित करने के उपाय बताइये ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्न प्रश्नों में सही विकल्प पर निशान लगाइये-

1. निवेश की मात्रा में वृद्धि होने पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की वृद्धि कैसी रहती है-

(अ) बढ़ती हुई

(ब) घटती हुई

(स) स्थिर

(द) अनिश्चित ।

2. कींस के अनुसार तरलता पसन्दगी किस उद्देश्य से की जाती है-

(अ) लेन-देन उद्देश्य

(ब) सावधानी उद्देश्य

(स) सट्टा उद्देश्य

(द) उपर्युक्त सभी ।

3. पूँजी की सीमान्त क्षमता को कौनसा घटक प्रभावित करता है-

(अ) पूँजी परिसम्पत्ति की लागत

(ब) आय में परिवर्तन

(स) भावी लाभ की सम्भावना

(द) उपर्युक्त सभी ।

4. कींस के अनुसार निवेश प्रवृत्ति किस पर निर्भर करती है-

(अ) पूँजी की सीमान्त क्षमता

(ब) ब्याज की दर

(स) उपर्युक्त दोनों पर

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

उत्तर- 1. (ब), 2. (द), 3. (द), 4. (स)]

इकाई -15

पूँजी निर्माण

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 पूँजी की माँग
15.4 पूँजी की पूर्ति
15.5 पूँजी निर्माण एवं आर्थिक विकास
15.6 विकासशील देशों में पूँजी निर्माण की धीमी प्रगति के कारण
15.7 पूँजी निर्माण की विधियाँ
15.8 मानवीय पूँजी का अर्थ
15.9 मानवीय पूँजी निर्माण का महत्व
15.10 मानवीय पूँजी निर्माण के लिये विनियोग के क्षेत्र
15.11 मानवीय पूँजी निर्माण की समस्याएँ
15.12 मुख्य शब्द
15.13 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर
15.14 सार संक्षेप
15.15 संदर्भ ग्रंथ
15.16 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

पूँजी निर्माण (Capital Formation) का अर्थ है संसाधनों का वह संकलन जो उत्पादन के विभिन्न साधनों, जैसे भूमि, श्रम, पूँजी और प्रौद्योगिकी, के निर्माण में निवेश किया जाता है। यह प्रक्रिया एक देश की आर्थिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पूँजी निर्माण में उत्पादकता को बढ़ाने के लिए विभिन्न निवेशों का योगदान होता है, जैसे उद्योग, संरचनात्मक विकास, मानव संसाधन की शिक्षा और प्रशिक्षण आदि।

पूँजी निर्माण प्रस्तावना का उद्देश्य यह है कि एक राष्ट्र अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ और स्थिर बनाने के लिए आवश्यक निवेश करें, ताकि उत्पादन क्षमता बढ़ सके और आर्थिक विकास की गति तेज हो सके।

15. 2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और उसके उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न क्षेत्रों में संसाधनों के वितरण और विकास की दिशा तय कर सकेंगे।
3. पूंजी निर्माण की अवधारणा और उसकी प्रक्रिया को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. आर्थिक विकास में पूंजी निर्माण की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण के क्षेत्रीय और सामाजिक प्रभावों को पहचान सकेंगे।

15.3 पूँजी की माँग

पूँजी निर्माण, मूलतः पूँजी की माँग एवं पूँजी की पूर्ति से प्रभावित होता है। प्रो. ए.जे. यंगसन के अनुसार, "विनियोग, माँग तत्वों या पूर्ति तत्वों या दोनों के प्रभाव के कारण होता है।" सामान्यतः विकासशील या अर्ध-विकसित देशों में आन्तरिक बाजार के सीमित होने के कारण विनियोजन लाभदायक नहीं होता और परिणामस्वरूप पूँजी की माँग सीमित होती है। विकासशील एवं अर्ध-विकसित देशों में पूँजी की माँग पर अनेक तत्वों का प्रभाव पड़ता है। ये तत्व निम्न प्रकार है-

(1) आधारभूत सुविधाओं की कमी (Lack of Infrastructure Facilities) - अर्धविकसित देशों में बड़ी मात्रा में पूँजी के विनियोजन के लिए आवश्यक सुविधाओं,

जैसे विद्युत, पानी, यातायात व संचार सेवाएँ आदि का अभाव होता है। फलतः पूँजी की माँग सीमित रहती है।

(ii) साहसी वर्ग की कमी (Shortage of Entrepreneur Class)- विनियोग तभी सम्भव होता है जबकि देश में जोखिम उठाने वाला वर्ग उपलब्ध हो, किन्तु यह देखा जाता है कि अर्ध-विकसित राष्ट्रों में जोखिम उठाने वाले साहसी वर्ग की कमी रहती है। फलस्वरूप पूँजी की माँग कम रहती है।

(iii) सीमित बाजार (Limited Market)- विकासशील देशों में न्यून आय के कारण वस्तुओं की माँग कम होती है, अर्थात् बाजार का पर्याप्त विस्तार नहीं होता। ऐसी स्थिति में साहसी को विनियोजन से प्राप्त होने वाला लाभ भी सीमित रहता है। ऐसी स्थिति में विनियोग करने की प्रेरणा नहीं मिलती। फलतः पूँजी की माँग कम रहती है।

(iv) कर-नीति (Tax Policy)- अर्ध-विकसित देशों की सरकारें अपनी आय में वृद्धि करने एवं समाज में आय के वितरण की विषमताओं को कम करने के लिए प्रत्यक्ष करों (जैसे आय कर) की दरों को बहुत ऊँचा रखती हैं। परिणामस्वरूप उद्योगपतियों के लाभ तथा आय पर कर-भार बढ़ जाता है तथा परिणामस्वरूप विनियोग हतोत्साहित होते हैं।

(v) श्रम-गहन तकनीक का प्रयोग (Use of Labour-intensive Technique)- प्रायः अर्ध-विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि दर अधिक रहती है जिससे सस्ता श्रम पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है। फलतः पूँजीपति श्रम-गहन तकनीक का प्रयोग करते हैं और पूँजी के स्थान पर श्रम का अधिकाधिक प्रयोग करते हैं जिससे पूँजी की माँग कम हो जाती है।

(vi) कुशल श्रम की कमी (Lack of Skilled Labourers)- पूँजी-गहन तकनीक के लिए कुशल श्रम आवश्यक होता है, किन्तु अर्ध-विकसित देशों में कुशल श्रमिकों का अभाव पाया जाता है जिससे विनियोजन को पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं मिल पाता। फलतः पूँजी की माँग कम रहती है।

(vii) कृषि जोतों का छोटा होना (Small Land-holdings)- प्रायः अर्ध-विकसित देशों में कृषि का विशेष महत्व होता है। किन्तु कृषि जोतों के छोटा होने के कारण उनमें विनियोग को प्रोत्साहन नहीं मिलता। कृषि जोतों के छोटा होने से आधुनिक मशीनों का प्रयोग लाभकारी नहीं होता।

(viii) लाभ की दर का कम होना (Low Rate of Profit)- विनियोजन की मात्रा लाभ पर निर्भर करती है। चूँकि अर्ध-विकसित देशों में लाभ की दर कम रहती है, फलतः उद्योग, कृषि एवं अन्य क्षेत्रों में विनियोग को प्रोत्साहन नहीं मिलता ।

(ix) ऊँची ब्याज दर (High Rate of Interest)- ऊँची ब्याज दर उत्पादन लागत में वृद्धि करती है जिससे विनियोग हतोत्साहित हो जाते हैं। प्रायः अर्ध-विकसित देशों में ब्याज दर ऊँची रहती है जिससे विनियोग हतोत्साहित होते हैं और पूँजी की माँग कम रहती है।

15.4 पूँजी की पूर्ति

पूँजी की पूर्ति विनियोग बीग्य कोषों पर निर्भर करती है जो कि वित्तीय संस्थाओं एवं व्यापारिक बैंकों में उपलब्ध रहते हैं। वित्तीय संस्थाओं और व्यापारिक बैंकों को यह राशि जन-साधारण से बचतों के रूप में प्राप्त होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पूँजी की पूर्ति के लिए दो बातें आवश्यक है प्रथम बचतें और द्वितीय बचतों को संकलित करने वाली वित्तीय संस्थाएँ। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है-

(A) बचत (Savings)

सम्पूर्ण आय में में से कुल व्यय को घटा देने से जो शेष बचता है, उसे बचत कहते हैं। किसी भी अर्थव्यवस्था की समस्त बचतें तीन स्रोतों से मिलकर बनती हैं। ये स्रोत हैं (i) पारिवारिक बचत, (ii) व्यापारिक बचत और (iii) सरकारी बचत। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है-

(i) पारिवारिक बचत (Domestic Savings):- पारिवारिक बचत की राशि परिवारों की शुद्ध आय (करों का भुगतान करने के बाद बची हुई आय) एवं उपभोग व्यय का अन्तर होती है। पारिवारिक बचतें दो प्रकार की होती है, यथा ऐच्छिक बचतें एवं अनिवार्य बचतें। ऐच्छिक बचतों से आशय उन बचतों से है जिन्हें व्यक्ति अपनी इच्छा से करते हैं। इस श्रेणी की बचतें डाकघर, व्यापारिक बैंक, बीमा कम्पनी, यूनिट ट्रस्ट आदि के माध्यम से की जाती हैं। अनिवार्य बचतों से आशय टन बचतों से है जिसके लिए व्यक्ति को विवश किया जाता है तथा इनके लिए उसे अपने उपभोग को कम करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, समष्टि अर्थशास्त्र तथा मुद्रा एवं बैंकिंग करों का भुगतान ।

(ii) व्यापारिक बचतें (Commercial Savings)- व्यापारिक बचतें भी पारिवारिक बचतों के समान ही होती हैं। व्यापार एवं उद्योग आदि से प्राप्त कुल लाभ में से कर एवं लाभांश आदि का भुगतान करने के बाद जो राशि शेष बचती है, उसे व्यापारिक बचतें कहा जाता है।

(ii) सरकारी बचतें (Government Savings) - सरकारी बचत उस राशि को कहते हैं जो सरकार की कर आदि से होने वाली चालू आय एवं सरकारी चालू व्यय का अन्तर होती है। सरकार की बचतों को सार्वजनिक बचतें (Public of Savings) कहा जाता है।

(B) बचतों को संकलित करना (Mobilisation of Savings)

पूँजी की पूर्ति को प्रभावित करने वाला दूसरा महत्वपूर्ण घटक बचतों का संकलन है। विकासशील तथा अर्ध-विकसित देशों में कुशल वित्तीय संस्थाओं की कमी के कारण बचतों को संकलित करना अत्यधिक कठिन हो जाता है। इसका कारण यह है कि पारिवारिक बचतें छोटी-छोटी मात्रा में होती हैं तथा दूर-दराज के गाँवों तक में फैली रहती हैं। वित्तीय संस्थाओं की कमी के कारण ग्रामीण क्षेत्रों की बचतें संकलित नहीं हो पातीं और परिणामस्वरूप इन बचतों का उपयोग पूँजी निर्माण में नहीं हो पाता।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि विकासशील तथा अर्ध-विकसित देशों में पूँजी निर्माण की न्यून दर होने के मुख्य दो कारण हैं प्रथम, आय कम होने के कारण बचतों का कम होना; और द्वितीय, बचतों के संकलन हेतु वित्तीय सुविधाओं का समुचित विस्तार न होना। इसके साथ ही इन देशों में पूँजी की माँग भी कम रहती है।

15.5 पूँजी निर्माण एवं आर्थिक विकास

पूँजी निर्माण आर्थिक विकास के लिए प्राणशक्ति है, जो कि अर्थव्यवस्था को जीवित बनाये रखने के लिए आवश्यक है। सम्पूर्ण विश्व में आज तक भौतिक परिवर्तन, उत्पादन विकास और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में जो परिवर्तन हुए हैं वे पूँजी निवेश का ही परिणाम है। प्रो. साइमन कुजनेट्स का मत है, "पूँजी निर्माण आर्थिक उत्पादकता और विकास के लिए एक आवश्यक शर्त है।" प्रो. केयर्न कास ने भी पूँजी निर्माण को राष्ट्रीय उत्पादन एवं भौतिक समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण माना है। संक्षेप में, आर्थिक विकास में पूँजी निर्माण के महत्व को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है -

1. जटिल उत्पादन विधि का उपयोग (Use of Complex Method of Production):- आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रगति ने विशिष्टीकरण को जन्म दिया है। फलतः वस्तु विशेष के उत्पादन की समस्त प्रक्रिया एक ही केन्द्र पर न होकर विभिन्न केन्द्रों पर विशिष्ट मशीनों एवं यंत्रों द्वारा पूर्ण की जाती है और प्रत्येक केन्द्र किसी वस्तु के केवल कुछ अंशों का ही उत्पादन करता है। ऐसी स्थिति में उत्पादन की प्रविधि घुमाव-फिरावदार एवं जटिल होती है और इसे अपनाने के लिए पर्याप्त मात्रा में पूँजी आवश्यक होती है।

2. अर्थव्यवस्था की गतिविधियों में तीव्रता (Activeness in the Economy):- पूँजी की उपलब्धि में वृद्धि होने पर पूँजी का उपयोग विभिन्न प्रकार के उत्पादनों पर किया जाना सम्भव होता है। इससे जहाँ जटिल यंत्रों एवं विधियों का उपयोग सम्भव होता है, वहीं उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि होती है।

3. आर्थिक विकास में तीव्रता (Rapid Economic Growth):- विनियोग में वृद्धि का सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर संचयी प्रभाव पड़ता है। पूँजीगत वस्तुओं की पूर्ति में वृद्धि होने से जहाँ एक ओर नवीन कारखानों की स्थापना होती है तथा राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर जनसाधारण की क्रय-शक्ति बढ़ने से उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है। इससे, अर्थव्यवस्था में विनियोग गुणक एवं त्वरक क्रियाशील होने लगते हैं और परिणामस्वरूप विकास की गति तीव्र हो जाती है।

4. उपरिव्यय सुविधाएँ (Overhead Facilities):- आर्थिक विकास के लिए तकनीक एवं उपरिव्यय सुविधाएँ, जैसे परिवहन एवं संचार, विद्युत, पानी, आदि की व्यवस्था आवश्यक होती है, किन्तु इन सुविधाओं पर बड़ी मात्रा में पूँजी का विनियोजन आवश्यक होता है। फलतः तीव्र गति से पूँजी निर्माण के अभाव में इन सुविधाओं का विस्तार सम्भव नहीं होता ।

5. रोजगार के अवसरों में वृद्धि (Expansion in Employment Opportunities):- प्रायः विकासशील तथा अर्ध-विकसित देशों में प्राकृतिक संसाधन तो उपलब्ध रहते हैं किन्तु पूँजी की कमी के कारण उनका दोहन नहीं हो पाता। फलतः बेरोजगारी एवं अदृश्य रोजगार की स्थिति पैदा हो जाती है। पूँजी निर्माण के द्वारा व्यावसायिक ढाँचे को विविधतापूर्ण बनाया जा सकता है जिससे रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है।

6. मानवीय पूँजी का निर्माण (Creation of Human Capital):- भौतिक पूँजी से मानवीय पूँजी का निर्माण सम्भव होता है। इस सन्दर्भ में प्रो. कुजनेट्स ने लिखा है, "प्रमुख पूँजी स्टाक जनता का चरित्र, प्रशिक्षण एवं कार्यकुशलता है। स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर किये गए विनियोग से श्रम की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है, परन्तु पूँजी निर्माण में मे व्ययों को सम्मिलित नहीं किया जाता और इसकी अवहेलना कर दी जाती है।" दूसरे शब्दों में पूँजी की मात्रा में वृद्धि होने से श्रमिकों के प्रशिक्षण, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक

सुरक्षा एवं कल्याण की विस्तृत व्यवस्था की जाती है जिससे श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

7. बाजार का विस्तार (Expansion of Market):- पूँजी निर्माण से उत्पादित वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है जिससे बड़े पैमाने पर उत्पादन सम्भव होता है। उपरिव्यय सुविधाओं (Overhead Facilities) के विस्तार से बाजार की अपूर्णताएँ समाप्त हो जाती है तथा दरिद्रता के कुचक्रों का अन्त होता है। संक्षेप में पूँजी निर्माण से बाजार का विस्तार होता है जिससे चहुँमुखी प्रगति सम्भव होती है।

8. भुगतान सन्तुलन (Balance of Payment):- प्रायः अर्ध-विकसित देशों में भुगतान सन्तुलन के असाम्य की जटिल समस्या विद्यमान रहती है। इन देशों के आयात, निर्यातों की तुलना में अधिक रहते है। इस स्थिति में सुधार लाने के लिए पूँजी निर्माण की सहायता से आयात प्रतिस्थापन एवं निर्यात संवर्धन कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया जा सकता है। इससे भुगतान सन्तुलन की समस्या को हल करना सम्भव होता है।

9. प्राकृतिक साधनों का दोहन (Exploitation of Natural Resources):- देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों के समुचित उपयोग के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है। पूँजी निर्माण के द्वारा उत्पत्ति के अन्य साधनों की सहायता से उत्पादन में वृद्धि सम्भव होती है।

10. अन्य लाभ (Other Advantages):- पूँजी निर्माण से देश में आत्मनिर्भरता आती है जिससे विदेशी ऋणों के भार में कमी होती है। इसके साथ ही पूँजी निर्माण के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय की मात्रा एवं दर में वृद्धि होती है। देश में प्रति-व्यक्ति आय में वृद्धि होने से आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है।

15.6 विकासशील देशों में पूँजी निर्माण की धीमी प्रगति के कारण

आर्थिक दृष्टि से विकसित देशों की तुलना में विकासशील तथा अर्ध-विकसित देशों में पूँजी निर्माण की दर कम है, जबकि तीव्र आर्थिक विकास के लिए इस दर का अधिक होना आवश्यक है। यही कारण है कि सभी विकासशील एवं अर्ध-विकसित देश पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करने में लगे हुए हैं। इन देशों में पूँजी निर्माण की निम्न दर के मुख्य कारण निम्न प्रकार है-

1. जनसंख्या की तीव्र वृद्धि दर (Rapid Population Growth):- विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि दर 2 2 से 3 प्रतिशत है, जबकि विकसित देशों में यह 1 प्रतिशत से भी कम है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि दर के कारण उपभोग व्यय अधिक रहता है तथा बचत कम हो जाती है। इसके साथ ही, श्रम-शक्ति में वृद्धि होने से मजदूरी की दर भी कम रहती है। फलतः पूँजी निर्माण की दर धीमी रहती है।

2. गरीबी एवं निम्न आय-स्तर (Poverty & Low Income-level):- विकासशील देशों में न्यून आय के कारण गरीबी का दुश्चक्र क्रियाशील होता है और परिणामस्वरूप बचत एवं विनियोग की दर न्यून रहती है। इस सन्दर्भ में प्रो. रेगनर नर्कसे ने लिखा है, "अर्ध-विकसित राष्ट्रों में आय-स्तर निम्न होने के कारण लोगों में बचाने की शक्ति कम होती है जिससे पूँजी का अभाव रहता है। पूँजी के अभाव के कारण इनमें उत्पादकता भी निम्न होती है और निम्न उत्पादकता के कारण प्रति-व्यक्ति वास्तविक आय निम्न होती है।"

3. आधारभूत उद्योगों एवं अन्य सुविधाओं का अभाव (Lack of Basic Industries and Other Facilities):- विकासशील देशों में पूँजी निर्माण की धीमी गति का एक प्रधान कारण आधारभूत उद्योगों, जैसे लोहा-इस्पात, कोयला, सीमेन्ट, मशीनें आदि तैयार करने वाले उद्योगों तथा सुविधाएँ, जैसे यातायात, संचार, विद्युत, पानी आदि का अभाव है। इनके अभाव में औद्योगीकरण सम्भव नहीं होता और परिणामस्वरूप पूँजी के विनियोग को प्रोत्साहन नहीं मिलता अर्थात पूँजी की माँग न्यून रहती है।

4. वित्तीय एवं बैंकिंग सुविधाओं का अभाव (Lack of Financial and Banking Facilities):- छोटी-छोटी बचतों को संकलित करने के लिए बड़े पैमाने पर वित्तीय एवं बैंकिंग संस्थाओं का विस्तार होना चाहिए। इस सन्दर्भ में प्रो. एडवर्ड नेविन ने लिखा है, "चाहे कोई अर्थव्यवस्था कितनी ही गरीब क्यों न हो, वहाँ पर ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता होती है जो उपलब्ध बचतों के सुविधापूर्ण एवं सुरक्षित विनियोग की व्यवस्था करें।" प्रायः यह देखा गया है कि अर्ध-विकसित देशों में ऐसी सुविधाओं का अभाव होता है। फलतः पूँजी निर्माण की दर कम रहती है।

5. करारोपण. की अधिकता (High Rate of Taxation):- विकासशील एवं अर्ध-विकसित देशों में प्रशासनिक व्ययों को पूरा करने के लिए ऊँची दर से कर लगाये जाते हैं। करारोपण की इस प्रवृत्ति से विनियोग एवं उत्पादन हतोत्साहित होता है तथा कर-चोरी को प्रोत्साहन मिलता है। करारोपण से मूल्यों में भी वृद्धि होती है जिससे उपभोग व्यय बढ़ जाता है और बचतें कम हो जाती है।

6. घाटे की वित्त व्यवस्था के दुष्प्रभाव (Ill-effects of Deficit Finance):- प्रायः विकासशील तथा अर्ध-विकसित देशों में विकास व्ययों को पूरा करने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था को अपनाया जाता है, किन्तु यदि घाटे की वित्त व्यवस्था का ठीक ढंग से नियमन या नियंत्रण न हो तो मुद्रास्फीति पैदा हो जाती है। फलतः घाटे की वित्त व्यवस्था के द्वारा पूँजी निर्माण की विधि को अर्ध-विकसित देशों में सीमित मात्रा में ही अपनाया जा सकता है।

7. बचतों का अनुत्पादक संग्रह (Un-productive Accumulation of Capital):- अर्ध-विकसित देशों में बचतों के एक बड़े भाग का उपयोग अनुत्पादक कार्यों, जैसे सोना-चाँदी, मकान, मन्दिर-मस्जिद, पिरामिड आदि के रूप में होता है। प्रो. केयर्न कास ने लिखा है, "कोई भी व्यक्ति जो इन देशों में प्राचीन सभ्यता काल में बनाये गए पिरामिडों, गिरजाघरों, मन्दिरों आदि को देखता है तो कठिनाई से ही इस बात में विश्वास करेगा कि रेलों, बाँधों तथा बिजलीघरों का निर्माण गरीब देशों पर असहाय भार होगा।"

दूसरे शब्दों में, अनुत्पादक नचतों की अधिकता से विनियोग दर कम रह जाती है और पूँजी निर्माण की दर धीमी रहती है।

8. योग्य साहसियों का अभाव (Lack of Efficient Entrepreneurs):- विकासशील तथा अर्ध-विकसित देशों में पूँजी निर्माण की धीमी गति का एक महत्वपूर्ण कारण योग्य साहसियों का अभाव भी है। जोखिम उठाने की पर्याप्त क्षमता. न होने के कारण उत्पादक विनियोगों को प्रोत्साहन नहीं मिल पाता तथा परिणामस्वरूप बचतें अनुत्पादक कार्यों की ओर प्रवाहित होती है।

9. प्रदर्शनकारी प्रभाव (Demonstration Effect):- प्रो. नर्कसे के अनुसार अर्ध-विकसित देशों में पूँजी निर्माण की दर कम होने का एक कारण प्रदर्शनकारी प्रभाव है। अर्ध-विकसित देशों के निवासी अपने जीवन-यापन के तरीकों में समृद्ध विदेशियों की नकल करते हैं। इससे उनका उपभोग बढ़ जाता है तथा बचतें कम हो जाती है। इस प्रवृत्ति का पूँजी निर्माण पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

10. माँग की कमी (Lack of Demand):- विकासशील तथा अर्ध-विकसित देशों में आय की न्यूनता के कारण वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग कम रहती है। माँग कम होने से उत्पादक भी कम मात्रा में ही उत्पादन करते हैं। इससे बड़े पैमाने के उत्पादन को प्रोत्साहन नहीं मिलता। संक्षेप में, माँग कम होने के कारण विनियोग, उत्पादन एवं आय का स्तर भी न्यून रहता है। फलतः पूँजी निर्माण की दर भी कम रहती है।

11. पूँजी की कमी (Lack of Capital):- विकासशील तथा अर्ध-विकसित देशों में पूँजी की कमी के कारण भी विनियोग को प्रोत्साहन नहीं मिलता। पूँजी की कमी के कारण ब्याज दर अधिक रहती है, जिसका उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पूँजी की कमी के कारण उद्योगों एवं व्यापारिक क्रियाओं का भी समुचित विस्तार नहीं हो पाता और परिणामस्वरूप आर्थिक गतिविधियाँ सीमित रह जाती हैं।

12. निम्न उत्पादकता (Low Productivity):- विकासशील तथा अर्ध-विकसित देशों में अशिक्षा, निम्न जीवन-स्तर, आर्थिक एवं सामाजिक सुविधाओं के अभाव के कारण श्रमिकों की उत्पादकता बहुत कम होती है। फलतः श्रमिकों की मजदूरी भी कम रहती है और वे बचत के रूप में पूँजी निर्माण में कोई योगदान नहीं दे पाते ।

15.7 पूँजी निर्माण की विधियाँ

पूँजी निर्माण की प्रक्रिया के प्रमुख तीन अंग है, यथा प्रथम, बचतों का उपलब्ध होना, द्वितीय, वित्तीय संस्थाओं के द्वारा बचतों का संकलन और तृतीय, संकलित बचतों का उत्पादक कार्यों में विनियोग। इन तीनों अंगों को सक्रिय करने पर ही पूँजी निर्माण होता है। चूँकि अर्ध-विकसित देशों में न्यून आय के कारण बचत दर बहुत कम रहती है, अतः पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करना एक जटिल समस्या बन जाती है। ऐसी स्थिति में पूँजी निर्माण की प्रमुख विधियाँ निम्न प्रकार है-

(1) उपभोग में कमी लाकर पूँजी निर्माण (Capital Formation Through Reducing Consumption):- चूँकि पूँजी निर्माण बचत पर निर्भर करती है तथा बचत, आय एवं व्यय का अन्तर होती है। अतः पूँजी निर्माण में वृद्धि करने के लिए यह आवश्यक है कि उपभोग स्तर को कम किया जाये। इस सन्दर्भ में प्रो. लुइस का मत है कि अर्ध-विकसित देशों में उपभोग को कम करके पूँजी निर्माण किया जा सकता है, किन्तु यह विधि कष्टकारक होने के साथ-साथ अधिक उपयोगी भी नहीं है।

(ii) प्रशुल्क या राजकोषीय नीति द्वारा पूँजी निर्माण (Capital Formation Through Fiscal Policy):- प्रशुल्क या राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकार की कर नीति, व्यय नीति एवं सार्वजनिक ऋण नीति को लिया जाता है। पूँजी निर्माण के सन्दर्भ में सरकार कर लगाकर एवं सार्वजनिक ऋण लेकर विनियोग की मात्रा में वृद्धि कर सकती है। यद्यपि अर्ध-विकसित देशों में जन-साधारण की करदान क्षमता कम रहती है, तथापि करों में शनैः शनै वृद्धि करके पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि की जा सकती है।

(iii) बचतों के संकलन में वृद्धि करके (Through Mobilising Savings):- सामान्यतः यह देखा जाता है कि अर्ध-विकसित देशों में बचतों का उपयोग उत्पादक कार्यों में न किया जाकर अनुत्पादक कार्यों, जैसे स्वर्ण, चाँदी, विलासितापूर्ण भवन आदि में किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि बचत की इस प्रवृत्ति को बदला जाये।

अतः यह आवश्यक है कि अर्ध-विकसित देशों में वित्तीय संस्थाओं का पर्याप्त विस्तार होना चाहिए। ग्रामीण एवं अर्ध शहरी क्षेत्रों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। बचत योजनाएँ सरल एवं सुरक्षात्मक होनी चाहिए जिससे कि जन-साधारण को पूर्ण विश्वास रहे। इसके साथ ही बचत योजनाओं को, भिन्न-भिन्न छोटी राशि में इस प्रकार से विभाजित किया जाना चाहिए कि सभी आय-स्तर के व्यक्ति उसमें अपना धन सुविधापूर्वक जमा कर सकें।

(iv) मुद्रा-स्फीति द्वारा पूँजी निर्माण (Capital Formation Through Inflation):- सरकार मुद्रा-स्फीति को प्रोत्साहन देकर भी पूँजी निर्माण करती है। इसके लिए सरकार घाटे की वित्त व्यवस्था को अपनाती है। इस पद्धति के अन्तर्गत सरकार अतिरिक्त मुद्रा को चलन में लाकर विनियोग करती है। फलतः जन-साधारण की आय या क्रय-शक्ति में तो वृद्धि हो जाती है, किन्तु वस्तुओं की पूर्ति में कोई वृद्धि नहीं होती। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्यों में वृद्धि होने लगती है। इस स्थिति में जन-साधारण को अपने उपभोग में कमी करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यद्यपि मुद्रा-स्फीति द्वारा पूँजी निर्माण की विधि को अनेक देशों द्वारा अपनाया जाता है, तथापि इसके अनेक घातक परिणामों, जैसे कीमतों में वृद्धि, उत्पादन लागत में वृद्धि, भुगतान सन्तुलन में असाम्यता, श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी में कमी आदि का सामना करना पड़ता है।

(v) साधनों का अनुकूलतम उपयोग (Optimum Utilisation of Resources):- सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि विकासशील तथा अर्ध-विकसित देशों में उपलब्ध साधनों का आधा-अधूरा उपयोग होता है। इन देशों में मशीनों एवं कारखानों में

भी उत्पादन क्षमता से बहुत कम होता है। अतः यदि इन देशों में उपलब्ध उत्पत्ति के साधनों का ही अनुकूलतम उपयोग किया जाये तो इससे उत्पादन बढ़ाने में सहायता और पूँजी उत्पाद अनुपात में कमी होकर देश के विकास को गति मिलेगी और परिणामस्वरूप पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि होगी।

(vi) अतिरिक्त जन-शक्ति द्वारा पूँजी निर्माण (Capital Formation Through Surplus Manpower):- प्रो. नर्कसे का मत है कि अर्ध-विकसित देशों में जन-शक्ति का एक बड़ा भाग बेरोजगार या अदृश्य-बेरोजगार रहता है और इसे पूँजी निर्माण में लगाया जा सकता है। उनका मत है कि इन राष्ट्रों में समस्त श्रम-शक्ति का लगभग 25 प्रतिशत भाग अदृश्य बेरोजगार रहता है। इस बेरोजगार श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है और यदि इन्हें अपने विद्यमान व्यवसायों से हटा लिया जाये तो भी उत्पादन में कोई कमी नहीं होती है। प्रो. नर्कसे का मानना है कि इन अतिरिक्त श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से निकालकर पूँजी निर्माण में लगाया जा सकता है।

(vii) सार्वजनिक उपक्रमों के लाभ (Profit from Public Enterprises):- अर्ध-विकसित देशों में अनेक व्यापारिक उपक्रम सार्वजनिक क्षेत्र में भी होते हैं। इन उपक्रमों से प्राप्त आय का उपयोग पूँजी निर्माण में किया जा सकता है।

(viii) संचित सोना एवं अन्य धातुओं को गतिशील करना (Mobilisation of Gold and other Hoardings):- विकासशील एवं अर्ध-विकसित देशों में परम्पराओं एवं रूढ़िवादिता के कारण जनता अपनी बचतों को स्वर्ण, चाँदी एवं अन्य आभूषणों के रूप में संग्रहीत करती है। इस अमूल्य सम्पदा को गतिशील बनाकर पूँजी निर्माण में लगाया जा सकता है।

(ix) प्राविधिक विधियों में सुधार एवं अंगीकरण (Improvement and Adoption of Technological Methods of Production):- विकसित देशों की भाँति अर्ध-विकसित देशों में प्राविधिक विधियों में सुधार एवं उन्हें अंगीकार करके उत्पादन एवं

उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। इससे जहाँ श्रम की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है, वहीं आय एवं बचतों में वृद्धि के द्वारा पूँजी निर्माण को भी प्रोत्साहन मिलता है।

(x) वित्तीय संस्थाओं का विस्तार (Expansion of Financial Institutions):- विकासशील एवं अर्ध-विकसित देशों में छोटी-छोटी बचतों को प्रोत्साहित एवं संकलित करने हेतु उपयुक्त वित्तीय संस्थाओं का होना आवश्यक है। ये संस्थाएँ हैं, व्यापारिक बैंक, बीमा कम्पनी, डाकघर, बचत बैंक, शेयर बाजार, सहकारी संस्थाएँ, राज्य द्वारा ऋण कार्यक्रम आदि ।

(xi) विदेशी ऋण एवं अनुदान (Foreign Loans and Grants):- पूँजी निर्माण की प्रक्रिया में विदेशी मुद्रा का अपना एक विशेष स्थान है। इससे जहाँ आन्तरिक साधनों को प्रोत्साहन मिलता है, वहीं बुनियादी सुविधाओं के विस्तार से विनियोग प्रेरित होते हैं। अर्ध-विकसित देशों को ऋण एवं अनुदान के रूप में विदेशी पूँजी प्राप्त होती है, और इस पूँजी का उपयोग आर्थिक विकास के विभित्र कार्यक्रमों में किया जाता है।

(xii) प्रत्यक्ष विदेशी व्यापारिक विनियोग (Direct Foreign Business Investment):- विकसित देशों द्वारा अर्ध-विकसित देशों में विदेशी प्रत्यक्ष व्यापारिक विनियोग भी किया जाता है। इस प्रकार के विनियोग से भी घरेलू पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है तथा आर्थिक विकास में तेजी आती है।

15.8 मानवीय पूँजी का अर्थ

मानव श्रम में पूँजी के निवेश की धारणा हाल ही में विकसित हुई है। इस धारणा के अनुसार जिस प्रकार उत्पादक कार्यों में पूँजी का विनियोग करके भौतिक पूँजी का निर्माण किया जाता है, ठीक इसी प्रकार मानवीय श्रम में भी पूँजी का विनियोग करके मानवीय पूँजी का निर्माण किया जाता है। श्रम का गुणात्मक पहलू भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि संख्यात्मक पहलू। यही कारण है कि किसी देश में श्रम की पूर्ति श्रमिकों की संख्या पर ही नहीं, वरन् उनकी गुणवत्ता या कार्यकुशलता पर भी निर्भर

करती है। विकसित देशों की आर्थिक सम्पन्नता का एक प्रमुख कारण उनके श्रमिकों की कार्यकुशलता है; इसके विपरीत, अर्ध-विकसित देशों की गरीबी का एक मुख्य कारण श्रम की न्यून उत्पादकता है।

प्रो. हार्बिसन (Prof. F.H.Harbinson) ने मानव पूँजी निर्माण की व्याख्या करते हुए लिखा है, "ऐसे व्यक्तियों की पूर्ति करना और उनकी संख्या में वृद्धि करना है जो कुशल, शिक्षित एवं अनुभवी हो और जिनकी देश के आर्थिक तथा राजनैतिक विकास के लिए नितान्त आवश्यकता हो। इस प्रकार मानवीय पूँजी-निर्माण, मानव-श्रम में विनियोग एवं उसके निर्माणकारी तथा उत्पत्ति के साधन के रूप में विकास से सम्बन्धित है।"

प्रो. शुल्ज (Prof. T. W. Schultz) ने मानवीय पूँजी निर्माण की विस्तृत प्रक्रिया की विवेचना की है। उनका मत है कि निम्न कार्यों में विनियोग करके मानवीय पूँजी में वृद्धि की जा सकती है -

(i) उन स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार जिनके द्वारा श्रमिकों की जीवन प्रत्याशा (Life expectancy) या औसत आयु में वृद्धि की जा सके।

(ii) उत्पादन की प्रक्रिया से सम्बन्धित समुचित प्रशिक्षण प्रदान करना ।

(iii) प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च-स्तरीय औपचारिक शिक्षा उपलब्ध कराना ।

(iv) विस्तार कार्यक्रमों के द्वारा कार्यरत जनशक्ति को प्रशिक्षण देना।

(v) रोजगार के अवसरों में परिवर्तन के साथ-साथ श्रमिकों की गतिशीलता में वृद्धि करना आदि।

15.9 मानवीय पूँजी निर्माण का महत्व

अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि भौतिक आर्थिक विकास पूर्णतः मानवीय पूँजी पर निर्भर करता है। इस सन्दर्भ में प्रो. शुल्ज (Schultz), प्रो. हार्बिसन (Harbinson), प्रो.

डेनिसन (Denison), प्रो. बैक्कर (Becker) एवं प्रो. कुजनेट्स (Kuznets) आदि के अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण हैं। विकासशील एवं अर्ध-विकसित देशों में आर्थिक विकास में मानव पूँजी निर्माण के महत्व को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है -

1. राष्ट्रीय आय में वृद्धि (Increase in National Income): आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि मानवीय पूँजी निर्माण से श्रम की दक्षता एवं कुशलता में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप उत्पादन एवं आय में वृद्धि होती है। अमेरिकी अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में किए गए अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि "शिक्षा पर लगाया गया एक डालर राष्ट्रीय आय में बाँधों, सड़कों, फैक्टरियों या अन्य पूँजीगत वस्तुओं पर लगाये गये एक डालर की तुलना में अधिक वृद्धि करता है।"

2. औद्योगिक विकास (Industrial Development): मानव पूँजी का किसी भी देश के औद्योगिक विकास में भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसका कारण यह है कि कुशल एवं दक्ष श्रम औद्योगिक विकास को गति प्रदान करता है। इस सम्बन्ध में प्रो. गैलब्रेथ (Galbraith) ने लिखा है, "औद्योगिक वृद्धि का अधिक बड़ा भाग पूँजी के विनियोजन के स्थान पर मनुष्यों में विनियोजन एवं सुधारों से प्राप्त होता है।" मानवीय पूँजी निर्माण से न केवल श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है, वरन् प्रबन्धकीय योग्यता एवं जोखिम उठाने की क्षमता में भी सुधार होता है। फलतः औद्योगिक उत्पादन एवं उत्पादकता में तेजी से वृद्धि होती है।

3. भौतिक पूँजी-निर्माण (Physical Capital Formation): भौतिक पूँजी निर्माण के लिए भी मानव पूँजी आवश्यक है। परम्परावादी अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने देश की स्थिर पूँजी के स्टॉक में "समस्त निवासियों की अर्जित योग्यताओं को सम्मिलित किया है।" इसी प्रकार प्रो. वैबलन (Veblen) का मत है कि "तकनीकी ज्ञान तथा कुशलता समुदाय के अभौतिक उपकरण हैं और इनके बिना उत्पादन के क्षेत्र में भौतिक पूँजी का कोई उपयोग नहीं है।" दूसरे शब्दों में, यदि किसी अर्थव्यवस्था में शिक्षा एवं तकनीकी ज्ञान का प्रसार नहीं होता है तो भौतिक पूँजी की उत्पादकता में वृद्धि करना सम्भव नहीं है।

4. उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के मध्य समन्वय (Coordination Between Different Factors of Production): मानवीय साधनों की सहायता से ही उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है। इसके साथ ही मानवीय पूँजी के द्वारा ही उत्पत्ति के अन्य साधनों का अनुकूलतम उपयोग सम्भव होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उच्च-स्तरीय प्रबंधकीय क्षमता ने ही बड़े पैमाने के उत्पादन को सफल बनाया है तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों को मूर्त रूप देकर मानव कल्याण में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया है।

5. चहुंमुखी विकास (Multi dimensional Growth): चाहे विकास आर्थिक क्षेत्र में हो या सामाजिक अथवा राजनैतिक या सांस्कृतिक क्षेत्र में, मानवीय पूँजी का सर्वोच्च स्थान है। प्रो. हरीसन एवं मायर (Prof. F.Harison and C.A.Myer) ने लिखा है, "यदि कोई राष्ट्र मानवीय साधनों का विकास करने में असमर्थ है तो वह दूसरे क्षेत्रों में भी अधिक विकास नहीं कर सकता, चाहे वह राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र हो या राष्ट्रीय एकता या आर्थिक कल्याण का उच्चस्तर ही क्यों न हो।"

6. उपभोग-स्तर में वृद्धि (Increase in Consumption-level): मानव श्रम उत्पत्ति का केवल साधन ही नहीं वरन् साध्य भी है, अर्थात जो उत्पादन किया जाता है, उसका वह उपभोग भी करता है। शिक्षा, प्रशिक्षण एवं स्वास्थ्य जैसे कार्यों में विनियोग करने से दक्षता के साथ-साथ ज्ञान के प्रति जागृति भी पैदा होती है जिससे उपभोग एवं जीवन-स्तर में सुधार होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि किसी भी देश के चहुमुखी विकास के लिए मानव पूँजी का महत्वपूर्ण स्थान है। विकासशील एवं अर्ध-विकसित देशों में धीमी प्रगति का एक प्रमुख कारण मानवीय

पूँजी में निवेश की कमी है।

15.10 मानवीय पूँजी निर्माण के लिये विनियोग के क्षेत्र

प्रो. शुल्ज (Prof. T.W.Scheltz) का मत है कि कौशल निर्माण हेतु जो विनियोग किया जाता है उसे ही मानवीय विनियोग कहा जाता है। मानवीय विनियोग के प्रमुख क्षेत्र निम्न प्रकार है:-

1. शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर विनियोग (Investment on Education and Training):- श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ाने में शिक्षा एवं प्रशिक्षण का विशेष महत्व है। शिक्षा के द्वारा ही तकनीकी का उपयोग सम्भव होता है और उत्पादन में वृद्धि होती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक प्रगति उन देशों में हुई है जहाँ शिक्षा का व्यापक विस्तार हुआ है। प्रो. रॉबर्ट सोलो (Prof. Solow) का मत है कि तकनीकी परिवर्तन शिक्षा के विकास के कारण होता है।

2. स्वास्थ्य सुविधाओं पर विनियोग (Investment on Health Facilities): श्रमिकों की कुशलता एवं उनकी उत्पादकता में अच्छे स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण स्थान है। श्रमिकों के स्वास्थ्य का उत्पादन से सीधा सम्बन्ध है। विकासशील देशों में व्यापक गरीबी के कारण श्रमिकों को पौष्टिक भोजन प्राप्त नहीं होता जिससे उनका स्वास्थ्य खराब रहता है। अतः यह आवश्यक है कि स्वास्थ्य सुविधाओं के साथ-साथ पौष्टिक भोजन की उपलब्धता पर विनियोग किया जावे। PER

3. मकानों की सुविधा पर विनियोग (Investment on Housing Facilities): श्रमिकों की कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता पर आवास स्थल एवं पर्यावरण का भी प्रभाव पड़ता है। यदि श्रमिकों को रहने के लिए स्वास्यूवर्धक आवास उपलब्ध होंगे, तो वे अच्छे प्रकार से कार्य कर सकते हैं। इसी कारण आवास सुविधाओं को उत्पादकता से सीधा सम्बन्ध माना जाता है।

15.11 मानवीय पूँजी निर्माण की समस्याएँ

विकासशील एवं अर्ध-विकसित देशों में मानव पूँजी निर्माण के प्रसंग में अनेक समस्याएँ विद्यमान हैं। इन समस्याओं का विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है-

(i) भौतिक पूँजी की उपलब्धता (Availability of Physical Capital):- जहाँ तक सैद्धान्तिक धरातल का प्रश्न है, प्रत्येक देश अपने नागरिकों को पूर्ण शिक्षित, तकनीकी दृष्टि से दक्ष एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से सुदृढ़ देखना चाहता है, किन्तु इन सबके लिए बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। चूँकि अर्ध-विकसित देशों में पूँजी की कमी होती है, अतः मानव पूँजी के निर्माण हेतु विनियोग करना इन देशों के लिए एक कठिन एवं जटिल समस्या है।

(ii) विदेशी पूँजी की आवश्यकता (Need for Foreign Capital):- मानव पूँजी निर्माण के लिए केवल स्वदेशी पूँजी की ही आवश्यकता नहीं होती, वरन् विदेशी पूँजी भी आवश्यक है। उन्नत एवं नवीन तकनीकी के साथ-साथ विशेषज्ञों की सेवाएँ भी आवश्यक होती हैं। इसके साथ ही उन्नत तकनीकी को चालू रखने, उसे देश की परिस्थितियों के अनुरूप बनाने एवं शोध की प्रक्रिया को चालू रखने की भी आवश्यकता होती है। इन सब बातों के लिए विदेशी पूँजी की आवश्यकता होती है, जिसका विकासशील एवं अर्ध-विकसित देशों में अभाव होता है।

(iii) मानव पूँजी का कुल स्टॉक (Total Stock of Human Capital):- एक देश के लिए मानव पूँजी का कुल कितना स्टॉक हो और विकास की किस अवस्था में किस प्रकार की मानव पूँजी की जरूरत रहती है, इसका निर्धारण एक अत्यधिक जटिल समस्या है। जहाँ तक विकसित देशों का प्रश्न है, वहाँ पर विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में मानव पूँजी की वृद्धि दर भौतिक पूँजी पर निर्भर रही है, किन्तु अर्धविकसित देशों ने अनेक क्षेत्रों में उन्नत एवं जटिल तकनीकी को अपनाया है। फलतः इन देशों में तकनीकी दृष्टि से दक्ष व्यक्तियों की अधिक आवश्यकता है।

(iv) शिक्षा मैं विनियोग का स्वरूप (Investment Structure in Education):- राष्ट्रीय आय का कितना भाग शिक्षा में विनियोजित किया जाना चाहिए और शिक्षा के विभिन्न स्तरों, यथा-प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा, पर अलग-अलग कितना भाग आवंटित किया जाना चाहिए, यह भी एक जटिल समस्या है। एशिया, अफ्रीका एवं

दक्षिणी अमेरिका के अनेक देशों में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा पर विशेष तथा माध्यमिक शिक्षा को कम महत्व दिया गया है।

(v) व्यापक मानव-शक्ति के आयोजन की आवश्यकता (Need for Comprehensive Manpower Planning):- सामान्यतः विकासशील एवं अर्ध-विकसित देशों में व्यापक मानव-शक्ति के आयोजन का अभाव है। इससे जहाँ कुछ क्षेत्रों में तकनीकी विशेषज्ञों एवं शिल्पकारों की कमी रहती है, वहीं अन्य क्षेत्रों में बेरोजगारी व्याप्त रहती है। इसके साथ ही कृषकों, श्रमिकों एवं स्वरोजगार में लगे व्यक्तियों को शिक्षित करने एवं उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि करने के बारे में कोई ध्यान नहीं दिया गया है। अतः व्यापक मानवीय पूँजी निर्माण कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्राम शिक्षा, कृषि शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, कार्यरत श्रमिकों को प्रशिक्षण जैसे कार्यक्रमों को उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अर्ध-विकसित देशों में मानव पूँजी-निर्माण हेतु भौतिक पूँजी का विनियोग करना एक जटिल समस्या है। भौतिक पूँजी की कमी एवं व्यापक मानव-शक्ति के आयोजन के अभाव में मानवीय पूँजी निर्माण के क्षेत्र में ठोस कार्य करना अपने-आप में एक चुनौती है।

मुख्य शब्द *15.12*

पूँजी निर्माण से संबंधित कुछ प्रमुख मुख्य शब्द निम्नलिखित हैं:

1. **पूँजी (Capital)**: वह धन या संसाधन जो उत्पादन के लिए निवेश किया जाता है, जैसे मशीनरी, भवन, उपकरण, और अन्य उत्पादक संसाधन।
2. **निवेश (Investment)**: वह प्रक्रिया जिसमें पूँजी का उपयोग किसी व्यवसाय, परियोजना या उद्योग के विकास के लिए किया जाता है।
3. **संचयन (Saving)**: उपभोक्ता या परिवारों द्वारा उनकी आय का वह हिस्सा जो खर्च नहीं किया जाता, बल्कि भविष्य में उपयोग के लिए बचाया जाता है।

4. **उत्पादन क्षमता (Production Capacity)**: किसी देश, उद्योग या संस्था की अधिकतम उत्पादन करने की क्षमता, जो पूँजी के निवेश से बढ़ती है।
5. **अवसंरचना (Infrastructure)**: उस बुनियादी संरचना का निर्माण जो आर्थिक गतिविधियों को सुगम और प्रभावी बनाती है, जैसे सड़कें, पुल, ऊर्जा आपूर्ति प्रणाली आदि।
6. **उधारी (Debt)**: वह धन जो किसी देश, संस्था या व्यक्ति को बाहरी स्रोतों से उधार लिया गया होता है, जिसका भुगतान भविष्य में करना होता है।
7. **मानव पूँजी (Human Capital)**: मानव संसाधन, यानी श्रमिकों की शिक्षा, कौशल और क्षमता, जो उत्पादन और विकास में योगदान करते हैं।
8. **वित्तीय संसाधन (Financial Resources)**: पूँजी निर्माण के लिए उपलब्ध वित्तीय साधन, जैसे बैंक ऋण, निवेश, सरकारी सहायता आदि।
9. **शुद्ध निवेश (Net Investment)**: कुल निवेश में से वह राशि जो पुराने पूँजी सामान (जैसे मशीनरी) के प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक नहीं होती है, केवल नई पूँजी निर्माण के लिए होती है।
10. **आर्थिक वृद्धि (Economic Growth)**: उत्पादन और सेवाओं के स्तर में निरंतर वृद्धि, जो पूँजी निर्माण से बढ़ती है।
11. **संचार और प्रौद्योगिकी (Communication and Technology)**: वह उपकरण और तरीके जो उद्योगों के लिए आधुनिक तकनीकी और सूचना का प्रसार करते हैं।
12. **बचत दर (Savings Rate)**: एक देश या परिवार के कुल आय का वह हिस्सा जो बचत के रूप में रहता है और निवेश के लिए उपलब्ध होता है।
13. **मूलधन (Principal)**: वह मूल धनराशि जो पूँजी निर्माण में निवेश की जाती है, बिना ब्याज के।
14. **वृद्धि दर (Growth Rate)**: किसी अर्थव्यवस्था, उद्योग, या क्षेत्र में उत्पादन, आय, या पूँजी की दर से वृद्धि को दर्शाने वाला अनुपात।

15. **अंतरराष्ट्रीय निवेश (Foreign Investment)**: एक देश में दूसरे देश से पूँजी का निवेश, जो उसके उद्योगों और अवसंरचना के विकास में सहायक होता है।

15.13 स्व-प्रगति परिक्षण प्रश्नों के उत्तर

पूँजी निर्माण से संबंधित स्व-प्रगति परिक्षण (Self-Assessment) प्रश्नों के उत्तर निम्नलिखित हैं। ये प्रश्न और उत्तर पूँजी निर्माण के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद करेंगे:

---

1. **पूँजी निर्माण क्या है**?

उत्तर:

पूँजी निर्माण एक आर्थिक प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों का संग्रह और उनका निवेश किया जाता है ताकि उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो सके। यह एक देश या संस्थान के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है, क्योंकि इससे नए उद्योग, प्रौद्योगिकी, और अवसंरचना का विकास होता है, जो दीर्घकालिक आर्थिक वृद्धि में योगदान करते हैं।

---

2. **पूँजी निर्माण के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं**?

उत्तर:

पूँजी निर्माण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. **आर्थिक विकास**: उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना।
2. **रोजगार सृजन**: नए उद्योगों के निर्माण से रोजगार के अवसर बढ़ाना।
3. **उत्पादन क्षमता में वृद्धि**: नई तकनीकी, मशीनरी और संसाधनों के माध्यम से उत्पादकता बढ़ाना।
4. **आर्थिक स्थिरता**: बाहरी उधारी पर निर्भरता कम करना।

5. **मानव संसाधन का विकास**: श्रमिकों के कौशल में सुधार करना और मानव पूँजी का निर्माण करना।

---

3. **पूँजी निर्माण में कौन-कौन सी प्रक्रिया शामिल होती है?**

उत्तर:

पूँजी निर्माण में मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रक्रियाएँ शामिल होती हैं:

1. **निवेश**: आर्थिक संसाधनों का निवेश करना, जैसे नए उद्योग, अवसंरचना, और प्रौद्योगिकी में।
2. **संचयन और बचत**: व्यक्तियों और संस्थानों द्वारा आय का वह हिस्सा जो खर्च नहीं होता, वह बचत के रूप में संचित किया जाता है।
3. **संसाधनों का उपयोग**: प्रभावी तरीके से संसाधनों का उपयोग किया जाता है ताकि उनका अधिकतम लाभ लिया जा सके।
4. **नई तकनीक और उद्योगों का निर्माण**: प्रौद्योगिकी और उन्नत उत्पादक उपकरणों के माध्यम से उद्योगों की क्षमता बढ़ाना।

---

4. **पूँजी निर्माण में मानव पूँजी का क्या योगदान है?**

उत्तर:

मानव पूँजी का योगदान पूँजी निर्माण में अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह किसी राष्ट्र की श्रमिक शक्ति के ज्ञान, कौशल और क्षमता को दर्शाता है। मानव पूँजी का विकास शिक्षा, प्रशिक्षण और अनुभव के माध्यम से होता है, जो उत्पादन क्षमता में वृद्धि और आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। जब श्रमिक उच्च गुणवत्ता के होते हैं, तो उद्योग और अर्थव्यवस्था अधिक प्रतिस्पर्धात्मक बनती है।

---

5. **पूँजी निर्माण के लाभ क्या हैं?**

उत्तर:

पूँजी निर्माण के कुछ प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं:

1. **आर्थिक विकास में वृद्धि**: पूँजी के निवेश से उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है, जिससे राष्ट्रीय आय बढ़ती है।
2. **रोजगार सृजन**: नई परियोजनाओं और उद्योगों के निर्माण से रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होते हैं।
3. **उद्योगों में प्रतिस्पर्धा का निर्माण**: पूँजी निर्माण से उद्योगों की प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ती है, जिससे वैश्विक बाजार में देश की स्थिति मजबूत होती है।
4. **आर्थिक आत्मनिर्भरता**: पूँजी निर्माण से देश को बाहरी ऋण की आवश्यकता कम होती है, जिससे आर्थिक स्थिरता मिलती है।
5. **समाजिक कल्याण में वृद्धि**: जब अर्थव्यवस्था मजबूत होती है, तो जीवन स्तर में सुधार होता है और समाज में समृद्धि बढ़ती है।

---

6. **पूँजी निर्माण के प्रमुख स्रोत कौन से हैं?**

उत्तर:

पूँजी निर्माण के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं:

1. **आंतरिक बचत**: व्यक्तियों और संस्थानों द्वारा उनकी आय का वह हिस्सा जो खर्च नहीं किया जाता और जो निवेश के लिए उपलब्ध होता है।
2. **विदेशी निवेश (Foreign Investment)**: दूसरे देशों से पूँजी का निवेश जो स्थानीय उद्योगों और अवसंरचना के विकास में सहायक होता है।
3. **सरकारी निवेश**: सरकार द्वारा सार्वजनिक अवसंरचना और विकास परियोजनाओं के लिए किए गए निवेश।

4. **कर्ज**: बैंक या अन्य वित्तीय संस्थाओं से लिया गया ऋण जो पूँजी निर्माण के लिए उपयोग होता है।

---

7. **पूँजी निर्माण और आर्थिक वृद्धि के बीच क्या संबंध है?**

उत्तर:

पूँजी निर्माण और आर्थिक वृद्धि के बीच गहरा संबंध होता है। जब पूँजी का निर्माण होता है, तो यह उत्पादन के साधनों (जैसे मशीनरी, प्रौद्योगिकी, और मानव संसाधन) में निवेश का कारण बनता है, जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है। इस वृद्धि से अधिक उत्पादन होता है, जो आर्थिक विकास की गति को तेज करता है। पूँजी निर्माण से समग्र रूप से आर्थिक समृद्धि, विकास और रोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं।

15.14 सार संक्षेप

पूँजी निर्माण का सार संक्षेप यह है कि यह प्रक्रिया संसाधनों का संग्रह और निवेश है, जिसका उद्देश्य उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना, आर्थिक विकास को बढ़ावा देना, और रोजगार के अवसर पैदा करना है। पूँजी निर्माण के माध्यम से देश की आर्थिक स्थिरता और समृद्धि सुनिश्चित होती है, क्योंकि इसमें उद्योगों, तकनीकी सुधार, अवसंरचना, और मानव संसाधन के विकास में निवेश किया जाता है।

इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं:

1. **आर्थिक विकास** - उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।
2. **रोजगार सृजन** - नए उद्योगों और सेवाओं से रोजगार के अवसर बढ़ते हैं।
3. **प्रौद्योगिकी में सुधार** - उन्नत तकनीक और उपकरणों का उपयोग होता है।
4. **संसाधनों का प्रभावी उपयोग** - अधिकतम संसाधनों का उपयोग किया जाता है।
5. **आर्थिक स्थिरता** - बाहरी उधारी पर निर्भरता कम होती है।

इस प्रकार, पूँजी निर्माण राष्ट्रीय समृद्धि, आर्थिक आत्मनिर्भरता और समाजिक कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

15.15 संदर्भ ग्रंथ

- कुमार, ए. (2018). *भारतीय अर्थव्यवस्था के सिद्धांत और अनुप्रयोग.* नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन।
- वर्मा, आर. (2020). *आधुनिक अर्थशास्त्र: सिद्धांत और व्यवहार.* मुंबई: हेमंत पब्लिशर्स।
- शर्मा, पी. (2021). *नवीन अर्थव्यवस्था का विकास और चुनौतियाँ.* पटना: प्रगति प्रकाशन।
- गुप्ता, एस. (2019). *पूँजी बाजार और निवेश का विश्लेषण.* जयपुर: इंडिया पब्लिशिंग हाउस।
- तिवारी, एन. (2022). *अर्थशास्त्र की भूमिका और प्रभाव.* वाराणसी: यूनिवर्सिटी प्रेस।

15.16 अभ्यास प्रश्न

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. पूँजी निर्माण क्या है ? विकासशील देशों में पूँजी निर्माण की नीची दर होने के क्या कारण है? व्याख्या कीजिए।

What is capital formation? Why is the rate of capital formation low in developing countries? Explain.

2. "एक अर्ध-विकसित देश में पूँजी की गरीबी है, फिर भी वहाँ पूँजी की माँग कम होती है।" क्यों? समष्टि अर्थशास्त्र तथा मुद्रा एवं बैंकिंग विवेचना कीजिए।

"There is poorness of capital in underdeveloped country, even then the demand of capital is less." Why? Explain.

3. पूँजी निर्माण से आप क्या समझते हैं? पूँजी निर्माण को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिए।

What do you understand by capital formation? Explain the factors effecting capital formation.

4. मानव पूँजी से आप क्या समझते हैं? आर्थिक विकास में मानव पूँजी के योगदान की व्याख्या कीजिए।

What do you understand by human capital? Explain the role of human capital in economic development.

5. आर्थिक विकास में मानव पूँजी निर्माण की विवेचना कीजिए। किसी विकासशील अर्थव्यवस्था में क्या इसकी भौतिक पूँजी से अधिक प्रधानता देनी चाहिए ?

Assess the role of human capital formation in economic development. Should it receive a higher priority than physical capital in a developing economy?

लघु-उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए -

1. मानवीय पूँजी निर्माण से आप क्या समझते हैं ?

2. पूँजी की माँग से क्या आशय है ?

3. पूँजी की पूर्ति किन तत्वों पर निर्भर रहती है ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्न प्रश्नों के चार-चार विकल्प दिये गये हैं। सही विकल्प पर निशान लगाइए -

1. मुद्रा-स्फीति के द्वारा पूँजी निर्माण से कौनसा प्रभाव सम्भावित है ?

(अ) विदेशी पूँजी की प्राप्ति

(ब) आयात प्रतिस्थापन

(स) विनियोग लागत में वृद्धि

(द) निर्यात प्रोत्साहन

2. अतिरिक्त जन-शक्ति द्वारा पूँजी निर्माण का सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया ?

(अ) रेगनर नर्कसे

(ब) डब्लू डब्लू रोस्टव

(स) केयर्न क्रास

(द) एडवर्ड नेविन

3. प्रदर्शन प्रभाव से क्या आशय है ?

(अ) अपनी उपलब्धियों को प्रदर्शित करना।

(ब) प्रचार के लिए प्रदर्शनियों का आयोजन करना ।

(स) उन्नत तकनीकी ज्ञान का प्रशिक्षण देना।

(द) विदेशी तौर-तरीकों की नकल करना।

4. मानवीय पूँजी निर्माण पर किस अर्थशास्त्री ने विशेष जोर दिया है ? -

(अ) एडवर्ड नेविन

(ब) कुजनेट्स

(स) रेगनर नर्कसे

(द) रोस्टव

5. 1 म्नलिखित में से कौनसा निवेश पूँजी निर्माण में सहायक नहीं है ?

(अ) उच्च शिक्षा में निवेश

(ब) चिकित्सालयों का निर्माण

(स) सिंचाई सुविधाओं का विस्तार

(द) औद्योगिक श्रमिकों का प्रशिक्षण

6. एक विकासशील देश में सर्वाधिक महत्व किसका है?

(अ) बाँधों का निर्माण

(ब) उद्योगों की स्थापना

(स) सड़कों का निर्माण

(द) शिक्षा में गुणात्मक सुधार

उत्तर - 1. (स), 2. (अ), 3. (द), 4. (ब), 5. (स), 6. (द)